ज्ञान सरोवर

भाग 3

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

श्रावण 1886 (अगस्त 1964)

मूल्य—साढ़े चार रुपये

निदेशक प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली-6, द्वारा प्रकाशित और
प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित

भूमिका

देश में हमारी अपनी सरकार के बनते ही उसका ध्यान जिन कामो की तरफ गया, उनमे से एक यह था कि नए और कम पढे लोगो के लिए ऐसी किताबें लिखवाई जाए, जिन्हे वे आसानी से पढ़ और समझ सकें और उनसे लाभ उठा सके। हमारे देश मे हजारो वर्ष से किताबो के बिना पढाई का रिवाज रहा है। पर अब कई कारणो से उस तरह की पढाई उतना काम नही दे सकती, जितना पहले देती थी। अब किताबो की माग और उनका प्रभाव दिन-दिन बढता जा रहा है। इसलिए आम लोगो के लिए ठीक तरह की किताबों का तैयार किया जाना और भी जरूरी हो गया है।

सब लोगों को पढ़ना-लिखना सिखाने की नई सरकारी नीति ने इस तरह की किताबो को जल्दी-से-जल्दी तैयार कराने की मांग को और बढ़ा दिया है। पढ़े-लिखे लोगों की गिनती देश मे बढ़ती जा रही है। अगर उन्हे अच्छी किताबे नही मिलेगी तो पढ़ाई-लिखाई के फैलने से देश का बल बढने की जगह हमारी कठिनाइयां बढ़ सकती हैं। इन नई किताबों के लिखवाने मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जहा उन्हें पढ़ कर लोगों को अपनी सामाजिक और आर्थिक हालत सुधारने मे मदद मिले, उनमें बुद्धि और विज्ञान की कद्र बढे और उनमे वैज्ञानिक मनोवृत्ति का विकास हो, वहा ऐसा भी न हो कि भारत की पुरानी सभ्यता मे जो अच्छी बाते है उन्हे वे भूल जाएं।

इस मांग को पूरा करने के लिए भारत सरकार ने जनसाधारण के लिए 'ज्ञान सरोवर' नाम से एक विश्वकोश लिखवाने की व्यवस्था की है। इस विश्वकोश की तैयारी मे यह ध्यान रखा गया है कि आम लोग इसे पढ़े तो आजकल की दुनिया मे जो नए-नए आर्थिक और राजनीतिक विचार पैदा हो रहे हैं, उनको समझने लगें और विज्ञान तथा तकनीक मे जो दिन-दिन बढ़ोतरी हो रही है उसे भी जान ले। इस तरह अपनी जानकारी बढ़ाकर

हमारे देश के लोग नए भारत के और अच्छे नागरिक बन सकेगे। इन सब बातो को इस विश्वकोश मे ऐसी भाषा मे बताने की चेष्टा की गई है, जो आम लोगो की भाषा है और जिसे सब आसानी से समझ सकते है। हमे आशा है कि यह विश्वकोश इन बातो को पूरा करेगा और हमारे देश के लोगो को इस तरह की बाते बताएगा, जिनसे वे अपनी पुरानी सभ्यता की सचाइयो को पूरी तरह समझते हुए आजकल के विज्ञान और वैज्ञानिक की कद्र करने लगे।

हुमायू कबीर

ज्ञान सरोवर—तीसरा भाग

विषय-सूची

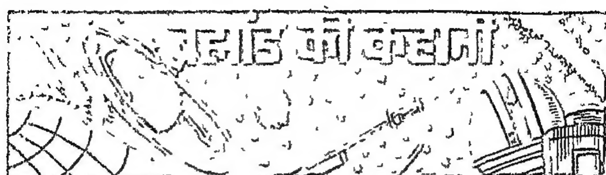
			पृष्ठ
1. ब्रह्माण्ड की कहानी			
शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि और दूसरे ग्रह		..	1
2. आदमी की कहानी			
सभ्यता का विस्तार	..	..	17
3 हमारी दुनिया			
धरातल के रूप	..	..	25
4 हमारे पड़ोसी			
(1) अरब देश	..	..	40
(2) तिब्बत	..	..	49
5 साहस और खोज की ओर			
हुएनसांग	..	..	57
6 संसार के महापुरुष			
(1) इखनातन	..	..	62
(2) कार्ल मार्क्स	..	..	69
7. देवी-देवताओं की कथाएं			
यूनानी और रोमन पौराणिक कथाएं		..	80
तीन गाथाएं			
(1) जियस की कहानी	..	..	85
(2) अफ्रोदीती की कहानी	..	..	88
(3) इरास और साइकी की कहानी		.	90
8. विश्व साहित्य			
(1) मराठी साहित्य	..	..	93
(2) गुजराती साहित्य	..	.	99
(3) कन्नड़ साहित्य	..	..	108
9. लोक-साहित्य			
(1) मराठी लोक-साहित्य	..	..	119

चिड़िया और कौआ 122
पुरखो की हजामत 124
(2) गुजराती लोक-साहित्य 128
नेक दुश्मन 131
(3) कन्नड लोक-साहित्य 137
सोने का कटोरा . .. 139
(4) जर्मन लोक-साहित्य . .. 145
रंग-रंगीला पिपहीवाला .. 148

10 जीव, जन्तु और पौधे

कीडे-मकौडे
(1) जुगनू . .. 156
(2) तिलचट्टा . .. 158
जाने-अनजाने पेड़
(1) लोकप्रिय जामुन 161
(2) उपयोगी कजी . .. 163
(3) सुनहरा अमलतास . . 166
(4) सर्वप्रिय शीशम . .. 168
(5) शानदार सेमल 170
(6) पारसी बकाइन . .. 173
पक्षियो की दुनिया . ..
(1) गौरैया . . 176
(2) पहाड़ी कबूतर . . 178
(3) चील . .. 180
पशु जगत की बातें
(1) घड़ियाल 182
(2) भारत के सांप .. 186
समुद्र का अजायबघर
(1) विचित्र जीव स्पंज 193

11 कृषि-विज्ञान
भारत की फसलें .. 199
12. रोग पर विजय
सार्वजनिक स्वास्थ्य .. 209
13 विज्ञान की बातें
समय पर विजय .. . 217
14 इंजीनियरी के चमत्कार
(1) स्वेज नहर . . 226
(2) पनामा नहर .. . 231
15. घरेलू उद्योग-धन्धे
(1) चमड़े का काम . . 238
(2) मिट्टी के बर्तन . . 247
16 सौन्दर्य की खोज में
(1) साची के स्तूप 256
(2) भारतीय नाच . . 264
17. राजनीति और अर्थशास्त्र
सहयोग और कल्याण . 274
18. खेल-कूद
(1) वालीबाल . .. 285
(2) ट्रैक ऐण्ड फील्ड . 291
19. कहानियां
(1) पञ्च परमेश्वर .. . 298
(2) खोया हुआ बालक .. . 311
20. नए भारत के निर्माता
(1) स्वामी दयानन्द 319
(2) रामानुजन . .. 326
21. नारी-लोक
(1) सुखी गृहस्थ जीवन 333
(2) ऊन की बुनाई 338
(3) कढ़ाई का काम 347



शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि और दूसरे ग्रह



प्राय सूर्योदय से कुछ पहले पूर्व मे अक्सर एक बहुत चमकीला तारा दिखाई देता है। उसकी चमक इतनी तेज होती है कि एक बार पहचान लेने पर उसे भुलाया नही जा सकता, और कभी-कभी तो उसकी रोशनी मे आदमी अपनी परछाई तक देख सकता है। उसका नाम 'शुक्र' है। लोग उसे 'सुकवा' और 'भोर का तारा' भी कहते है। उत्तर-प्रदेश के पूर्वी इलाके मे एक कहावत मशहूर है .

"सुकवा उग्गल, भइल विहान ।
खटिया छोड, हे जजमान ।।"

यानी, हे यजमान अब खाट छोडो, क्योकि शुक्र उग आया है, और सुबह हो गई है ।

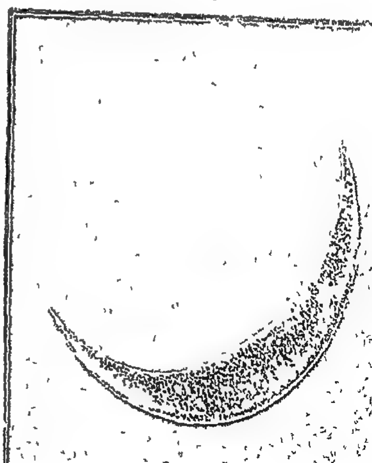
शुक्र मोटे हिसाब से सूर्य के चारो ओर एक गोलाई मे घूमता रहता है। इसी लिए सूर्योदय के अवसर पर अपने एक चक्कर के आधे समय वह सूर्य के ऊपर रहता है और आधे समय नीचे। जब वह ऊपर होता है तो सूर्य से पहले उगता है और पहले डूब जाता है, और जब नीचे होता है तब सूर्य के बाद उगता है और बाद मे डूबता है ।

शुक्र जब सूर्य से पहले उगता है तब वह प्रातःकाल पूर्व मे दिखाई देता है। इसी-लिए उसे 'भोर का तारा' कहते है। जब वह सूर्य के बाद उगता है, तब सूर्य के प्रकाश के कारण दिखाई नही देता। वैसी हालत मे वह दिन भर सूर्य के पीछे-पीछे पश्चिम की ओर चलता रहता है, और जैसे ही सूर्य डूबता है, वैसे ही दिखाई देने लगता है। शाम को दिखाई देने के कारण कुछ लोग उसे 'सांझ का तारा' भी कहते है। और समझते है कि 'साझ का तारा' 'सुबह के तारे' से अलग है। इस भूल की एक वजह यह भी है कि शुक्र से कुछ ही कम चमकीला 'बृहस्पति' नाम का एक दूसरा ग्रह है, और वह भी कभी-कभी सवेरे पूर्व मे और शाम को पश्चिम में दिखाई देता है। इनमे से जब एक सुबह और दूसरा शाम को दिखाई पडता है, तो देखने वाले अक्सर धोखा खा जाते है। वे 'भोर के तारे' और 'साझ के तारे' को अलग-अलग समझने लगते है। पर असल में 'भोर का तारा' और 'साझ का तारा' दोनो शुक्र ही हैं।

कभी-कभी उस समय जब सूर्य के चारो ओर घूमते हुए तिरछे देखने पर उसके बहुत पास दिखाई पडता है, तब वह सूर्य से कुछ ही मिनट पहले उगता है और उस के डूबने के कुछ ही मिनट बाद डूब जाता है। ऐसी दशा में वह न सुबह दिखाई देता है, न शाम को।

पृथ्वी और शुक्र दोनों ही सूर्य के चारो ओर घूमते है, इसलिए कभी-कभी यह होता है कि शुक्र, सूर्य और पृथ्वी के ऐसा बीच मे आ जाता है कि उस समय शुक्र हमे सूर्य के मुह पर एक काला धब्बा-सा दिखाई देता है, और हम उसे सूर्य पर चलता हुआ देख सकते है। जब कभी वह ठीक सूर्य के सामने पडता है तब उसे सूर्य के आर-पार की पूरी लम्बाई पार करनी पडती है। पर अक्सर वह सूर्य के किनारे के एक भाग को पार करता हुआ निकल जाता है। ज्योतिष के जानकारो ने

1889 में लिया गया शुक्र का चित्र



हिसाब लगाया है कि अगली बार सन् 2004 ई० में शुक्र सूर्य के सामने आकर उसको करीब-करीब बीच से पार करेगा । इस काम मे उसे कुछ ही घंटे लगेंगे ।

आंख से देखने में शुक्र इतना सुन्दर दिखाई देता है कि यूनानी लोगो ने उसका नाम 'वीनस' रख दिया था, जिसे वे सुन्दरता की देवी मानते थे ।

1874 और 1882 म सूय पर से शुक्र का मार्ग

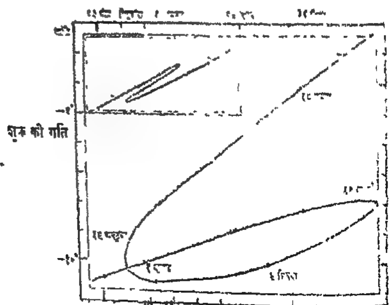
लेकिन दूरबीन से देखने पर शुक्र में न तो कोई सुन्दरता दिखाई देती है और न कोई और खास चीज । केवल उसकी बहुत चमकीली और सपाट सतह नजर आती है । इसकी वजह यह है कि शुक्र घने बादलो से ढका है । वे बादल धूप मे खूब चमकते हैं, और उनका घना सिलसिला ही शुक्र की सतह मालूम देता है । आज तक कोई यह नही देख पाया कि उन बादलो के उस पार क्या है । या यह कि शुक्र की भूमि कैसी है ? दूरबीन से देखने पर शुक्र मे भी चाद की तरह कलाए दिखाई देती है यानी शुक्र भी चाद की तरह घटता-बढता रहता है । वह कभी दूज के चाद की तरह हसिया जैसा, तो कभी आधा और कभी पूरा दिखाई देता है ।

दूसरे ग्रहो की तरह ही शुक्र की चाल भी आसमान मे तारो के बीच एक जैसी और बराबर एक ही ओर को नही दिखाई देती । सूर्य के खिचाव के घेरे मे फंसा होने के कारण मोटे तौर से वह बराबर गोलाई मे ही चलता रहता है, लेकिन चलती हुई जमीन से देखने पर वह कभी एक दिशा मे, कभी उल्टी दिशा मे, चलता हुआ जान पड़ता है । वह तारो के बीच आम तौर से पश्चिम से पूर्व की ओर चलता रहता है पर वह कभी-कभी रुक कर पीछे की ओर भी चलता जान पड़ता है और फिर रुक कर आगे की ओर बढता हुआ दिखाई देता है । यहा यह याद रहे कि तारो के हिसाब से चलने की बात हो रही है । पृथ्वी के हिसाब से तो ग्रह और तारे सभी पूर्व से पश्चिम की ओर चलते रहते है और एक दिन मे पूरा चक्कर लगा लेते है । यहां एक चित्र दिया जा रहा है, जिसमे यह दिखाया गया है कि सन् 1956 मे 1 जुलाई से 18 नवम्बर तक शुक्र अपने रास्ते पर किस तरह चला । इसे देखने से शुक्र का आगे-पीछे चलना साफ मालूम हो जाता

है। चित्र मे हर दस दिन के बाद शुक्र जितनी दूरी में चल गया है वह दूरी दिखाई गई है। चित्र को देखने मे पता चलता है कि शुक्र कभी धीरे-धीरे चलता है और कभी काफी तेज। इस चित्र को देख कर यह पता चलता है कि शुक्र 9 नवम्बर से 19 नवम्बर तक बहुत धीरे-धीरे चला और उन दस दिनो मे उसने बहुत कम दूरी तै की। लेकिन 8 नवम्बर से 18 नवम्बर के बीच वह तेज चल कर काफी आगे बढ़ गया।

शुक्र लगभग सात महीने मे सूर्य के चारो ओर एक चक्कर लगा लेता है। पर यह ठीक-ठीक नही मालूम कि उसे अपनी धुरी पर एक चक्कर लगाने मे कितना समय लगता है। कुछ लोगो ने अनुमान लगाया है कि वह भी अपनी धुरी पर पृथ्वी की ही तरह 24 घटे मे एक चक्कर लगाता है। पर दूसरे लोगो की राय मे बुध की तरह शुक्र का भी एक ही रुख हमेशा सूर्य के सामने रहता है। उसका दूसरा रुख कभी सूर्य के सामने नही आता।

पृथ्वी की अपेक्षा शुक्र सूर्य के अधिक निकट है। इसलिए वहा सूर्य की गर्मी और प्रकाश अधिक पहुचता होगा। पर चूकि शुक्र घने बादलो मे ढका हुआ है इसलिए यह भी सम्भव है कि वहा अधिक गर्मी न पडती हो और वहा भी पृथ्वी के जीव-जतुओ जैसे जीव-जतु रहते हो।



शुक्र की गति

पृथ्वी

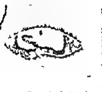
सूर्य से दूरी के हिसाब से ग्रहों में तीसरा नम्बर पृथ्वी का है, जिसके बारे में इस पुस्तक के पहले भाग में लिखा जा चुका है।

मंगल

आकाश में मामूली तारों से अधिक चमकीला एक लाल तारा दिखाई देता है, जो असल में तारा नहीं है, वह मगल ग्रह है। सूर्य से दूरी के हिसाब से वह चौथा ग्रह है। यह हमारी पृथ्वी का लगभग आधा है। उसके आर-पार की लम्बाई 4,216 मील है। यह सूर्य के चारों ओर लगभग दो साल में एक चक्कर लगाता है। मगर हमारी पृथ्वी की भांति यह भी अपनी धुरी पर 24 घंटे में ही एक चक्कर पूरा कर लेता है।

जिस प्रकार हमारी पृथ्वी का उपग्रह चन्द्रमा है, उसी प्रकार मगल के भी दो उपग्रह या चन्द्रमा है, जो हमेशा उसके चारों ओर चक्कर काटते रहते है। मगल के चन्द्रमा बहुत छोटे-छोटे है। उनके आर-पार की लम्बाई दस मील से अधिक नही है। उनमें आकर्षण शक्ति भी नाम भर की है। उन पर पहुच कर आदमी बहुत हल्का हो जाएगा। इतना हल्का कि यदि वह वहा से छलाग लगाए तो उसके पैर फिर उन चादो की सतह पर नही पड़ेंगे, बल्कि वह उन्हें पार करके न जाने आकाश में कहा-का-कहा खो जाए।

पृथ्वी (बाएं हाथ) के मुकाबले में मगल का आकार

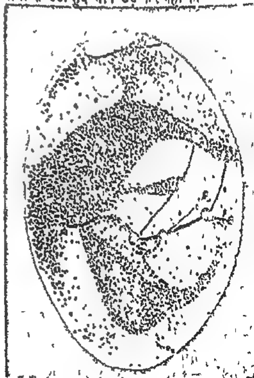


मंगल का दक्षिणी ध्रुव

बहुत बड़ी दूरबीन से देखने पर मगल नारंगी के रंग का एक बड़ा-सा गोला दिखाई देता है। मगर शायद उसके दोनो ध्रुव बर्फ में ढके है, इसलिए वे सफेद दिखाई देते है। जब वायुमडल बहुत साफ और स्थिर होता है तब हमे मगल पर काली-काली लकीरो का जाल-सा फैला हुआ दिखाई देता है। ये लकीरे लम्बी और सीधी मालूम होती है। मगर आम तौर से ये बडी-बडी दूरबीनो से भी साफ नही दिखाई देती, न ये मगल के फोटो में ही नजर आती है।

कुछ लोगो का खयाल है कि मगल पर नहरें है और वे नहरें ही हमें काली-काली लकीरो जैसी दिखाई देती है। उनका कहना है कि अगर वहा नदी-नाले होते तो वे काली लकीरे सीधी न दिखाई देकर, टेढी-मेढी दिखाई देती। इसलिए वे प्रकृति की बनाई हुई नही हो सकती, और उन्हे जरूर उन लोगो ने बनाया होगा, जो वहां रहते होगे। इन लोगो का यह भी कहना है कि सूर्य के परिवार के सभी ग्रह लगभग एक ही साथ पैदा हुए होगे। शुरू मे पृथ्वी, मगल, आदि सभी ग्रह सूर्य से छिटके हुए पदार्थ से बने होगे। इसलिए मगल भी शुरू-शुरू मे वैसे ही चमकता-दहकता रहा होगा जैसे शुरू मे पृथ्वी तपती-दहकती थी। पर चूकि मगल पृथ्वी से छोटा है और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से दूर भी है, इसलिए वह जल्दी ठडा हो गया होगा, और वहा पृथ्वी से पहले जीव-जतु भी पैदा हो गए होगे।

इसी तरह मगल पर का पानी भी पहले सूखा होगा। पृथ्वी पर तो, बहुत कुछ सूखने के बाद भी, अभी काफी पानी मौजूद है। पृथ्वी बड़ी है, इसलिए उसमें खीचने की शक्ति भी अधिक है। इस वजह से जो भाप पृथ्वी से उठती है वह बहुत दूर नही उड पाती। पर मगल छोटा है। इसलिए वहा पानी से उठी हुई भाप उड कर वहा की



1894 में बनाया गया मगल का एक चित्र

हवा के घेरे से बिल्कुल बाहर हो जाती होगी और धीरे-धीरे वहां पानी की कमी पड़ने लगी होगी। तब पानी की उस कमी को पूरा करने के लिए वहां के इंजीनियरों ने बड़ी-बड़ी नहरे बना कर मगल के उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवो से पानी लाने का प्रबन्ध किया होगा।

लेकिन आजकल के ज्योतिषियो की राय है कि मगल पर कोई नहर नही है। कही-कही धब्बे जरूर है, जो साफ नही दिखाई देते। उन्हे देर तक देखने की कोशिश मे आंखो को यह धोखा हो जाता है कि वहा लकीरें है। इस बात को सिद्ध करने के लिए एक ज्योतिषी ने एक कागज पर अलग-अलग, बहुत से छोटे-छोटे धब्बे लगा दिए और उसको बहुत दूर रख कर उसने लोगो से देखने को कहा। बहुत दूर रखे जाने के कारण कागज के वे नन्हे धब्बे दूरबीन से भी अलग-अलग नही दिखाई दिए। ऐसा लगा कि कागज पर लम्बी सीधी लकीरे खिची है। इस तरह उस ज्योतिषी ने साबित किया कि मगल पर जो काली लकीरे दिखाई देती है, वे लकीरे नही है, बल्कि मंगल की सतह के धब्बे है।

आजकल के ज्योतिषी यह भी नही मानते कि मंगल पर जीव-जंतु हो सकते है, क्योकि उनकी राय मे वहां की हालत ऐसी नही है जिसमे कोई जानवर जिन्दा रह सके।

इसमे कोई संदेह नही कि मगल बहुत ठंडा है। वह पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य से अधिक दूर है। पृथ्वी को सूर्य की जितनी गर्मी मिलती है, मगल को उसकी आधी भी नही मिलती। इसलिए मगल पर गर्मी की दोपहरी मे भी कम-से-कम उतनी ठंड होती होगी, जितनी भारत मे फरवरी के महीने मे सुबह-शाम होती है।

मगल पर हवा का घेरा भी इतना पतला होगा कि वहां सांस लेना नामुमकिन होगा। पृथ्वी के पांच ही मील ऊंचे पहाडों पर चढने मे आदमी को नाक मे हवा से भरा हुआ तोबड़ा बांध कर, नकली तरीके से सांस लेना पड़ता है। फिर मगल पर तो हवा इतनी पतली होगी जितनी पृथ्वी पर लगभग 11 मील की ऊंचाई पर होती है।

यह सही है कि जब मंगल के उत्तरी या दक्षिणी ध्रुव की बर्फ पिघलती दिखाई देती है, तब उसके निचले भाग की ओर हरियाली की लकीर-सी उभरती दिखाई देती है। इसका यह मतलब लगाया जाता है कि बर्फ पिघलने पर जब पानी ध्रुवो की ओर से बीच की ओर बहता है, तो वहां हरी काई, घास-पात या अनाज की फसलें उग जाती होंगी। लेकिन इसका कोई पक्का सबूत अभी तक नही मिला है।

हो सकता है कि मगल पर हम लोगों जैसे जीव न हों, क्योंकि वहां पानी की कमी है और सर्दी बहुत पड़ती है। पर हमारी पृथ्वी पर ऐसे भी जीव हैं, जो रेगिस्तान मे रहते हैं और लगभग बिना पानी के ही जीते हैं। ऐसे पौधे भी हैं, जो बर्फ मे भी ठडे जलवायु मे जीवित रहते हैं। इन सब बातों को देखते हुए इसमें इनकार नहीं किया जा सकता कि मगल पर जीव हो सकते है। कुछ भी हो, खोज जारी है, और खोज करने वाले कभी-न-कभी सचाई का पता लगा ही लेते हैं।

वृहस्पति

शुक्र की तरह वृहस्पति भी वहुत चमकीला ग्रह है। उसकी चमक शुक्र की चमक से थोडी ही कम है। उसे कहीं-कहीं गावो मे 'वीफै' कहते हैं। कभी-कभी लोग उसे ही शुक्र समझ वैठते है, क्योंकि दोनों की चमक मे वहुत कम अन्तर है। लेकिन दोनो का अन्तर समझ लेना वहुत सरल है। शुक्र या तो सूर्य के उगने से पहले घटे, दो घटे तक पूर्व मे दिखाई देता है या घटे, दो घटे तक सूर्य डूबने के वाद पश्चिम मे। वह न तो आधी रात मे दिखाई देगा और न वीच आसमान मे। इसके खिलाफ, वृहस्पति कभी-कभी आधी रात मे और वीच आसमान मे भी महीनों दिखाई पड़ता है। यह जरूर सच है कि वह कभी सुवह को पूर्व मे और कभी शाम को पश्चिम मे भी दिखाई देता है, पर रात के पहले पहर और आखिरी पहर और आसमान के पूर्वी या पश्चिमी भागो के अलावा दूसरे समय और दूसरे भागो मे भी वृहस्पति को चमकते देख कर, धीरे-धीरे शुक्र और वृहस्पति का अन्तर आसानी से समझ में आ जाता है। शुक्र केवल रात के पहले और आखिरी पहर में और केवल पश्चिमी और पूर्वी आकाश मे घटे, दो घटे दिखाई देता है।

हिसाव लगाने पर पता चलता है कि वृहस्पति ग्रहो मे सवसे वडा है। सूर्य से वृहस्पति की दूरी पृथ्वी और सूर्य के वीच की दूरी से लगभग पाच गुनी है। वृहस्पति की चमक भी, शुक्र को छोड कर, और सव ग्रहो से अधिक है। पृथ्वी से उसकी दूरी घटती-वढती रहती है। वृहस्पति गोल नही है। वह नारगी की तरह चपटा है। गणित से मालूम हुआ है कि वृहस्पति जिस चीज से वना है वह चीज वजन मे अपने ही वरावर

[illegible] है। इससे मालूम होता है कि बृहस्पति में गैस और दूसरी हल्की [illegible] है।

बृहस्पति की इन्ही धारिया छोटी-छोटी दूरबीनो से भी दिखाई देती है। पर बड़ी दूरबीनो से इन धारियो में कही-कही काली या सफेद चित्तिया भी दिखाई देती है। ये चित्तिया टिकाऊ नही होती। लगभग पन्द्रह दिन देखते रहने से ही पता चल जाता है कि ये बनती-बिगड़ती रहती है। कभी धारियो का एक हिस्सा टूट जाता है और फिर बन जाता है, जिससे पता चलता है कि हम बृहस्पति का ठोस रूप नही देख पाते। उसका ठोस रूप हमेशा घने बादलो से ढका रहता है। हम उस पर छाए बादलो की केवल बाहरी सतह ही देख पाते है। उस सतह पर नए-नए रग भी दिखाई देते है। कुछ धारिया कभी हल्की नीली और कभी लाली का पुट लिए हो जाती है। पर आम तौर से ये भूरी या सुरमई रंग की ही रहती है। अनुमान लगाया जाता है कि बृहस्पति पर मौसम के बदलने से ही बदलते हुए रग दिखाई देते है।

बृहस्पति पर दिखाई पड़नेवाली चित्तियो से पता चलता है कि वह भी अपनी धुरी पर घूमता रहता है। लगभग 10 घंटे में वह एक चक्कर लगाता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर 24 घंटे में एक बार घूमती है। इसलिए स्पष्ट है कि बृहस्पति की चाल पृथ्वी की चाल से बहुत ज्यादा तेज है और बृहस्पति पृथ्वी से बहुत बड़ा भी है। यही कारण है कि वह पृथ्वी के मुकाबले में बहुत चपटा हो गया है।

बृहस्पति के अपनी धुरी पर घूमने के बारे में एक अजीब बात यह है कि पूरा ग्रह समान तेजी से नही घूमता है। धारियो और उनके बीच की चमकीली पट्टियों के घूमने में अलग-अलग समय लगता है। अन्तर कुछ मिनटो का ही होता है, पर होता जरूर है। इससे भी पता चलता है कि हम बृहस्पति का ठोस रूप नही देख पाते।

पृथ्वी (दाएं हाथ) के मुकाबले
में बृहस्पति का आकार

बृहस्पति की बदलती धारियाँ

सन् 1857 में बृहस्पति पर एक बडी-सी लाल चित्ती दिखाई पडी थी । बीस साल बाद ज्योतिषियो के बीच वह चित्ती बहुत मशहूर हो गई । उसकी जाच बराबर होती रही, लेकिन उसके बारे में कुछ ठीक पता न लग सका । किसी साल उसका रग साफ लाल दिखाई देता था तो कभी वह आखो से ओझल हो जाती थी, और कुछ साल बाद फिर साफ दिखाई देने लगती थी । इससे यह अदाजा लगाया गया कि बृहस्पति की सतह से उभरा हुआ वह कोई ऊचा पहाड था जो बादलो को चीर कर ऊपर उभर आया था । लेकिन खोज के बाद यही मानना पडा कि बृहस्पति की धुरी पर इस लाल चित्ती के चक्कर लगाने की मुद्दत तै नही है, इसलिए वह चित्ती बादल का ही टुकडा होगी । लेकिन उसकी लम्बाई तीस हजार मील और चौडाई सात-आठ हजार मील है । अगल-बगल की धारिया उसकी वजह से ऊपर-नीचे हट गई है । जब वह चित्ती दिखाई नही देती थी तब भी धारियो के बीच की खाली जगह से मालूम होता रहता था कि वह गायब नही हुई है । बृहस्पति की सतह पर के दूसरे सब चिह्न बनते-बिगडते रहते है, लेकिन वह लाल चित्ती अभी तक बनी हुई है ।

बृहस्पति की रोशनी की जाच से पता चलता है कि वहा के हवा के घेरे में अमोनिया और मिथेन नाम की गैसे बहुत है । अमोनिया वही गैस है जो नौसादर और चूने में थोडा-सा पानी मिलाने से निकलती है और जिसकी महक इतनी तेज होती है कि सूघने पर आख-नाक से पानी आने लगता है । मिथेन वह गैस है जो पोखरो या दलदलो में सड़ी पत्तियो से निकलती है । बृहस्पति कितना ठडा है, इसका भी पता लगाया गया है । वहा का तापमान लगभग −140 डिग्री सेंटीग्रेड होगा । बर्फ का तापमान 0 डिग्री सेंटीग्रेड होता है और खौलते पानी का 100 डिग्री सेंटीग्रेड । −140 डिग्री सेंटीग्रेड

यह मालूम हुआ कि बृहस्पति बर्फ से भी कहीं अधिक ठंडा है। उस ठंडक में अमोनिया गैस भी जम जाएगी। इसी से समझा जा सकता है कि हमें जो कुछ दिखाई देता है वह जमे हुए अमोनिया के कणों का ढेर है।

बृहस्पति भीतर से ठोस है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर ठीक-ठीक नहीं दिया जा सकता। हो सकता है भीतरी भाग ठोस हो। लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि गैस और बर्फ की मिलावट गाढ़ी होती हुई बीच तक चली गई हो और भीतरी भाग में राब जैसी बर्फ वगैरह चीजों की बहुत गाढ़ी और बहुत ठंडी मिलावट हो। अगर उसका भीतरी भाग ठोस है तो उस ठोस भाग में पत्थर और धातुएं आदि होंगी। बृहस्पति के नाप के हिसाब से उसका ठोस भाग छोटा ही होगा। उस ठोस भाग के ऊपर बर्फ की मोटी तह होगी और उसके ऊपर गैस और जमी अमोनिया के कणों की गाढ़ी मिलावट होगी।

वह मिलावट गाढ़ी इसलिए होगी कि बृहस्पति की गैसें खूब दब गई होंगी। बृहस्पति का वजन बहुत होने की वजह से उसकी आकर्षण शक्ति भी बहुत अधिक होगी और आकर्षण शक्ति अधिक होने से गैसें दब जाती होंगी।

केवल चांद ही पृथ्वी का एक उपग्रह है, पर बृहस्पति के 11 उपग्रह हैं। अगर बृहस्पति पर आदमी होते तो उन्हें ग्यारह चांद दिखाई देते। उनमें 4 उपग्रह तो इतने बड़े हैं कि छोटी दूरबीन से भी वे हमें अच्छी तरह दिखाई दे जाते हैं। वे बृहस्पति का चक्कर

लगाते रहते है। उस चक्कर मे कभी उनमे से एक पीछे पड जाता है तो कभी दूसरा। कभी कोई बृहस्पति के पास आ जाता है तो कभी दूर। जब उनमे से दो उपग्रह एक ही ओर सबसे अधिक दूरी पर रहते है तो तेज निगाह वाले कोरी आख से भी उनको अलग देख सकते है। बृहस्पति के चार बडे उपग्रहो मे से तीन तो हमारे चन्द्रमा से भी बडे है, चौथा कुछ ही छोटा है।

शनि

पुराने जमाने मे जितने ग्रह मालूम थे, उनमे शनि ही सबसे धीमा चलने वाला था। सूर्य के चारो ओर एक चक्कर लगाने मे उसे लगभग तीस साल लगते थे। इसी वजह से भारत के ज्योतिषियो ने उसका नाम 'शनैश्चर' रखा। 'शनै' का मतलब होता है धीरे-धीरे, 'चर' का चलने वाला। शनैश्चर शब्द से ही शनि या सनीचर बना है।

शनि का रग कुछ-कुछ पीला है और उसकी चमक कुछ घटती-बढती रहती है। जिन दिनो वह आधी रात को बीच आसमान मे पहुचता है, उन दिनो उसकी चमक मामूल से ज्यादा होती है। इसकी वजह यह है कि उन दिनो शनि पृथ्वी के निकट रहता है, और ऐसा कभी-न-कभी हर साल होता है।

शनि सूर्य से लगभग 90 करोड़ मील दूर है, जबकि पृथ्वी से सूर्य की दूरी केवल 9 करोड मील है। इसलिए मोटे हिसाब से हम मान सकते है कि शनि पृथ्वी के चारो ओर चक्कर लगाता है।

दूरबीन से देखने पर पता चलता है कि शनि की शक्ल दूसरे ग्रहो से बिल्कुल भिन्न है। उसके बीच का भाग बृहस्पति के भाग की तरह नारगी जैसा कुछ चपटा गोल है। उस गोले को घेरे हुए चूडियो जैसी तीन चीजें है, जो मिल कर छोटी दूरबीन मे एक गोल चबूतरे की तरह दिखाई देती है। उन्हे 'शनि की चूडिया' कहते है। और उन सबकी सतहें एक ही सीध में है। अपनी चूडियो के कारण शनि बहुत सुन्दर दिखाई देता है।

शनि की बाहरी चूडी कम चमकीली है। उसके बाद वाली बीच की चूडी सबसे अधिक चमकीली है। तीसरी और आखिरी चूडी तो इतनी कम चमकीली है कि आज से लगभग 200 साल पहले तक उसकी चमक का हमें पता तक न था। बाहरी चूड़ी की चौडाई लगभग दस हजार मील है। उसके बाद लगभग दो हजार मील की खाली जगह है। आखिरी चूडी की चौडाई कोई ग्यारह हजार मील है। तीनों चूड़ियो की मोटाई कुल 10 मील के लगभग है, पर उनकी बनावट ऐसी है कि उनके आर-पार दिखाई देता है। आखिरी चूडी के आर-पार तो साफ दिखाई देता है। इसी से फोटो मे वह खुद साफ नही दिखाई देती।

शनि की चूडिया किसी ठोस या पिघलने वाली चीज से नही बनी है। वे अनगिनत रोडो, ढोको और जर्रों के ढेर से बनी है। ऐसा खयाल है कि वे ढेर बहुत दूर और काफी अलग-अलग है, पर हम चूकि उन्हे बहुत दूर से देखते है इसलिए वे एक चौडी गोल पट्टी जैसी दिखाई देती है। 1875 मे ब्रिटिश वैज्ञानिक मैक्सवेल ने गणित की सहायता से साबित किया कि अगर चूडिया ठोस होती तो शनि के आकर्षण की वजह से जरूर चूर-चूर हो जाती। ऐसा सम्भव है कि चूडिया शनि के जन्म के समय या उसके बाद किसी उपग्रह के चूर-चूर हो जाने से बनी हो। शनि के बीच वाला गोला बृहस्पति से भी अधिक चपटा है। उसके मध्य और ध्रुवीय व्यास क्रमानुसार 75,000 और 67,000 मील है (उसके आर-पार की नापे 75,000 और 67,000 मील है)।

शनि पानी से हल्का है और वह पृथ्वी से 750 गुना अधिक जगह घेरे है। अगर काफी चौडा और बडा पानी का कुड बना कर शनि को उसमे डाला जा सकता तो वह पानी पर दिखाई पडता।

शनि पर धारिया है जो बहुत साफ नही है। उनमे कभी इतने साफ धब्बे नही दिखाई देते है, जिनसे यह ठीक-ठीक मालूम किया जा सके कि शनि अपनी धुरी पर एक बार कितने समय मे घूमता है। तो भी ऐसे अवसर आते जरूर है जब धब्बे दिखाई पडे, और ऐसे ही अच्छे अवसरो पर देखने से पता चला है कि शनि लगभग सवा दस घटे मे अपनी धुरी पर एक बार घूमता है और शनि का चपटापन इस बात का प्रमाण है कि अपनी धुरी पर शनि तेजी से नाच रहा है। इस बात के भी प्रमाण मिले है कि बृहस्पति की तरह शनि के भी अलग-अलग भाग अलग-अलग समय पर घूमते है। शनि के बीच के भागो के घूमने का समय कुछ है, तो ध्रुवो वाले भागो के घूमने का समय कुछ।

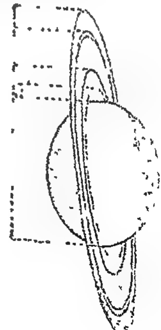


शनि

अदाजा लगाया जाता है कि शनि की बनावट भी बृहस्पति जैसी ही होगी। शायद उसके अन्दर का छोटा-सा केन्द्रीय भाग ठोस होगा, जिसके ऊपर बर्फ की मोटी तह होगी। फिर अमोनिया और मिथेन नाम की गैसों की गाढ़ी परत होगी, जिसमें जमी हुई अमोनिया के कण मिले होंगे। उसमें हाइड्रोजन गैस भी होगी। शनि बृहस्पति से अधिक ठडा है, क्योंकि बृहस्पति की अपेक्षा वह सूर्य से अधिक दूर है।

शनि के भी कम-से-कम 9 उपग्रह हैं। शनि के सबसे बडे उपग्रह के आर-पार का नाप लगभग 3,000 मील है। वह हमारे चन्द्रमा से काफी बडा है, क्योंकि हमारे चन्द्रमा की नाप लगभग 2,000 मील ही है। वह केवल हमारे चन्द्रमा से ही बडा नहीं, बल्कि सूर्य के कुटुम्ब का सबसे बडा उपग्रह है। उस पर हवा का घेरा भी है, जो दूसरे किसी उपग्रह पर नही है। कम वजन के पिंडो मे आकर्षण की अधिक शक्ति नही होती, इसलिए उन पर हवा के घेरे का होना सम्भव नही है। इसीलिए न हमारे चन्द्रमा पर हवा का घेरा है न बुध पर।

शनि के बाद तीन और छोटे-छोटे ग्रह है वारुणी (यूरेनस), वरुण (नेपच्यून) और यम (प्लूटो)। वे इतने छोटे है कि आख से दिखाई नही देते। वारुणी का पता



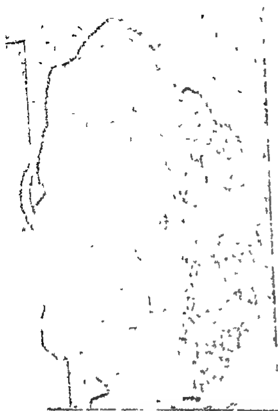
शनि की चूड़ियां

सन् 1781 ई० में लगा था, वरुण का 1846 में और यम का 1930 में। वे शनि से भी धीमे चलते हैं। यहां तक कि यम सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगाने में करीब-करीब ढाई सौ साल ले लेता है। उसके मार्ग का व्यास शनि के मार्ग के व्यास से 4 गुना बड़ा भी है।

दुमदार तारे या 'कमेट' भी सूर्य ही के कुटुम्ब के हैं। लेकिन वे सूर्य के चारों ओर गोलाई में चलने के बदले बहुत लम्बे अण्डाकार रास्ते में चलते हैं। सूर्य उस रास्ते में एक कोने में पड़ जाता है। दुमदार तारे हमें तभी दिखाई देते हैं जब वे सूर्य के पास आ जाते हैं। अधिकतर दुमदार तारे इतने लम्बे रास्ते पर चलते हैं कि न वे कभी लौट कर आए हैं और न यह समझा जाता है कि वे लौट कर आएंगे। लेकिन कुछ दुमदार तारे बार बार लौट कर आते देखे गए हैं। उनमें एक बहुत प्रसिद्ध तारा 'हैली' दुमदार तारा है, जो हर पचहत्तर साल बाद लौटा करता है। दुमदार तारों में जो दुम जैसी चीज़ दिखाई देती है वह सूर्य की गर्मी और रोशनी की वजह से निकली गैस है। जब दुमदार तारे सूर्य से बहुत दूर रहते हैं तो या तो उनकी दुम होती ही नहीं, या बहुत छोटी होती है।

दुमदार तारे का सिर कोई बड़ा-सा ठोस पिंड नहीं होता। वह ढोकों और रोड़ों का ढेर होता है, जो एक-दूसरे से बहुत पास होते हैं। उनमें से कुछ रोड़े पीछे छूट जाते हैं या दूसरे पिंडों के खिंचाव के कारण इधर-उधर भटक जाते हैं। जब पृथ्वी चलते-चलते

हैली दुमदार
तारा



किसी रोडे के पास पहुच जाती है या रोडा पृथ्वी के पास आ जाता है तो पृथ्वी के खिचाव की वजह से वह रोडा पृथ्वी की ओर बहुत तेजी से गिरता है। उस समय वह पृथ्वी से रगड खाने के कारण इतना गर्म हो जाता है कि उसमे चमक पैदा हो जाती है और उसमे से निकली गैसें जल उठती है। तभी वह हमे टूटते तारे या लूक के रूप मे दिखाई देता है। अधिकतर टूटते तारे या लूक हवा के घेरे मे ही जल कर भस्म हो जाते है। लेकिन जो बडे होते है उनका बचा-खुचा भाग पत्थर के बहुत भारी ढोको की शक्ल मे पृथ्वी पर आ गिरता है। ऐसे बहुत से ढोके दुनिया के अजायबघरो मे और दूसरी कई जगहो पर मौजूद है और देखे जा सकते है।

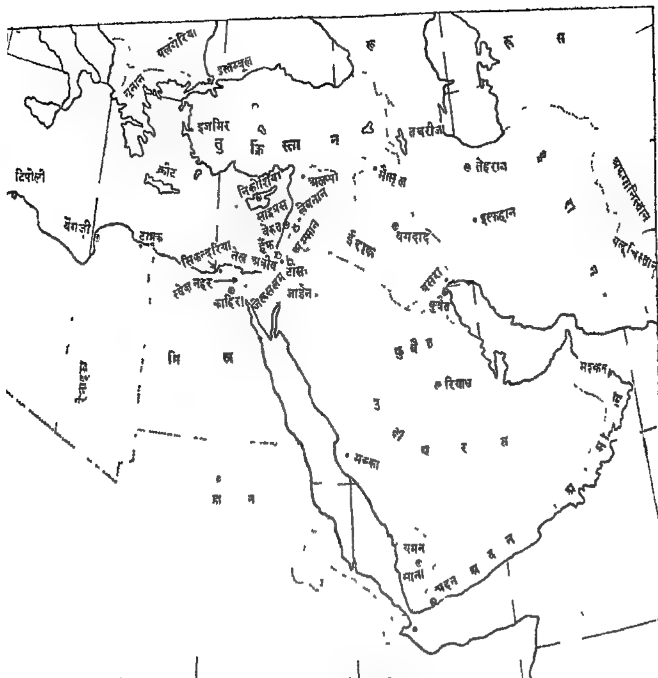


सभ्यता का विस्तार



जब हम इतिहास के बारे मे सोचते है, तो हमारा ध्यान तुरन्त भिन्न-भिन्न देशो और जातियो की ओर जाता है। उनमे भी सबसे पहले और सबसे अधिक हमारा ध्यान अपने देश और अपनी जाति की ओर जाता है। किन्तु मानवता को इस प्रकार अलग-अलग देशों और जातियो मे बाट कर देखने से एक हानि यह होती है कि बहुत-सी अच्छी और सच्ची बाते हमारी आंखो से ओझल हो जाती है। हर सभ्यता ने दूसरी सभ्यता को क्या दिया और उससे क्या लिया, इसकी असलियत हमारी समझ मे नही आती। इसलिए देखना यह चाहिए कि कुल ससार मे सभ्यता किस तरह फैली और इसके फैलने में किस जाति ने क्या विशेष भाग लिया।

मानव-सभ्यता का विस्तार देखने के लिए पश्चिम एशिया बहुत उपयुक्त जगह है। पश्चिम एशिया मे फिलस्तीन, शाम, ईराक, अरब और तुर्की के देश शामिल है। तुर्की का पश्चिमी सिरा यूरोप से मिल जाता है। फिलस्तीन और अरब के पश्चिम में मिस्र है। पश्चिम एशिया से आसानी से यूरोप और अफ्रीका जाया जा सकता है। इसी तरह ईरान और अफगानिस्तान होकर भारत पहुचना, और ईरान के उत्तर की ओर मुड कर तुर्किस्तान होते हुए चीन तक पहुच जाना भी आसान है। यूरोप और अफ्रीका के बीच भूमध्य सागर है, जो अधिक चौडा नही है। प्राचीन काल से ही इस सागर के रास्ते व्यापार होता रहा है। अरब और अफ्रीका के बीच मे लाल सागर है,



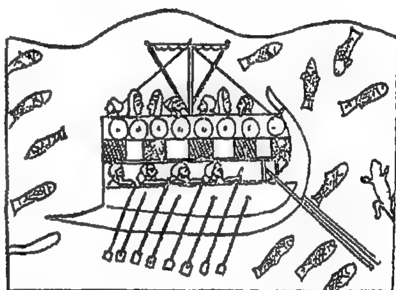
पश्चिम एशिया

जिससे होते हुए हिन्द महासागर मे आ सकते है। इस तरह पश्चिम एशिया एक बहुत बडा चौराहा है, जिस पर खडे होकर हम ससार मे सभ्यता के फलने-फूलने के सिलसिले को देख सकते है।

मानव सभ्यता के शुरू के केन्द्र मिस्र, ईराक और सिध थे। वहा सौदागरो के काफिले दूर-दूर तक इधर-उधर आया-जाया करते थे। खुश्की पर सौदागरी माल पहले जानवरो और फिर छकडो पर लद कर आता-जाता था। समुद्र के रास्ते माल लाने और ले जाने के लिए पहले छोटी-बडी नावें होती थी। फिर, पाल वाली बडी-बडी नावे बनने लगी, जो अधिक दूर-दूर तक जा सकती थी। ये ही उन दिनो जहाज कहलाते थे। मोहनजोदडो (सिंध) से सौदागरो के काफिले भारत के दक्षिणी सिरे तक तो

जाते ही थे, वे पश्चिम की ओर ईराक और मिस्र तक भी पहुच जाते थे। शाम और फिलस्तीन के किनारो पर फिनिशी नाम की एक जाति रहती थी, जो व्यापार मे बहुत चतुर थी। उस जाति के लोग पश्चिम एशिया के देशो का बढिया माल यूरोप की बंदरगाहो मे पहुंचाते थे, और यूरोप से कच्चा माल पश्चिम एशिया के शहरो को ले आते थे। कहते है कि उन लोगो ने अफ्रीका का पूरा चक्कर भी लगाया था। इसी तरह अरब

फिनिशी जहाज



और ईराक के सौदागर भी बडा हौसला रखते थे। वे समुद्र के किनारे-किनारे मलाबार, श्रीलका, जावा, सुमात्रा और चीन तक पहुचते थे। आजकल भी चीन के लगभग सभी बडे-बडे व्यापारिक केन्द्र समुद्र के किनारे है। परन्तु चीन का भी अधिकतर व्यापार पश्चिम एशिया से खुश्की के रास्ते होता था। पुराने जमाने मे जब चीनियो ने रेशम के कीडे पालना और रेशम तैयार करना शुरू किया, तो उनका व्यापार पश्चिम एशिया के रास्ते यूरोप के देशो मे भी खूब फैला। इस तरह अनेक देशो और कई महाद्वीपो का व्यापारिक केन्द्र होने के कारण, पश्चिम एशिया मानव सभ्यताओ का चौराहा बन गया था। जल और स्थल के बडे-बडे मार्गो द्वारा ही सभ्यता फैली, और सौदागरी के माल के साथ-साथ एक देश से दूसरे देश मे पहुची।

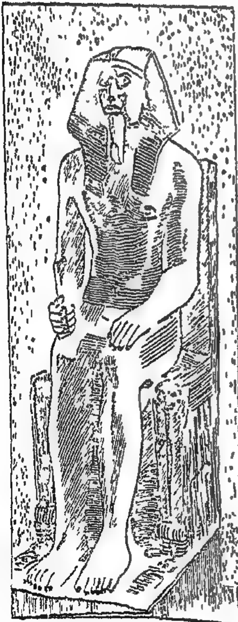
सभ्यता फैलाने मे व्यापार के मार्गो ने वही काम किया है, जो मनुष्य के शरीर के अन्दर रक्त का सचार करने मे धमनिया करती है। दुनिया मे जितने साम्राज्य बने, वे व्यापार के मार्गो से ही बने। उनमे से कुछ साम्राज्य खुश्की के रास्ते कायम हुए और कुछ जलमार्गो से। जो साम्राज्य खुश्की के रास्ते कायम हुए वे बहुत लम्बे-चौडे थे, क्योकि खुश्की के मार्गो को दूर-दूर तक सुरक्षित रखने के लिए साम्राज्य को भी



मिस्र का 3,800 वर्ष पुराना भित्ति चित्र

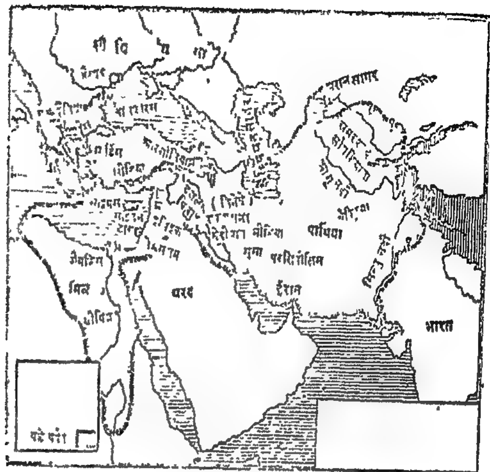
दूर-दूर तक फैलाना भी आवश्यक होता था। यही, कारण है कि ईरान और ईराक में बड़े-बड़े साम्राज्य कायम हुए, क्योंकि व्यापार के मार्गों पर वे दूर-दूर तक कब्जा कर सकते थे। इसके विपरीत, जहाजों से कायम हुए साम्राज्यों के केन्द्र वदरगाह होते थे, और वदरगाहों को सुरक्षित रखने के लिए साम्राज्य को फैलाने की जरूरत नही होती थी और न यह उतना आसान ही होता था, इसलिए भूमध्य सागर के किनारे जो साम्राज्य बने, उनके लिए वदरगाहो पर अधिकार रखना ही काफी होता था।

व्यापार के रास्तों से बहुत-सी मानव-जातिया जीवन-निर्वाह के साधन ढूंढती हुई इधर-उधर फैलती गई। प्राचीन सुमेरी और मिस्री लोग इसी प्रकार दूसरे इलाको से आ-आकर सुमेरिया और मिस्र में आबाद हुए थे। मिस्र मे वेनी हसन नाम के कस्बे के पास एक स्थान पर शुरू मे आई किसी घुमक्कड जाति के बनाए हुए लगभग 3,800 साल पुराने भित्ति चित्र पाए गए है। अब से कोई 4,000 वर्ष पहले वे जातिया, जिनको आर्य कहते है, दक्षिण पूर्वी यूरोप, पश्चिम एशिया ईरान और भारत में आकर वसी थी। आर्य जाति के लोग शुरू मे खानावदोश थे, और उन जातियो से, जो पहले से उन देशो मे आबाद थी, उनकी वरावर लडाई होती रहती थी।



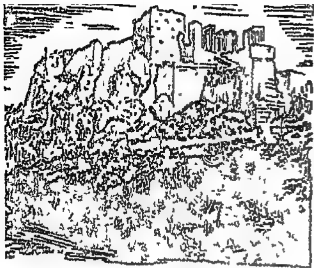
मिस्र का एक फराऊन

दारा का साम्राज्य



दुनिया का सबसे पहला साम्राज्य मिस्र में कायम हुआ, जो उत्तर में भूमध्य सागर तक और दक्षिण में नील नदी के किनारे-किनारे फैला हुआ था। फराऊन कहलाने वाले प्राचीन मिस्री सम्राटों ने व्यापार के मार्गों का सहारा लेकर धीरे-धीरे पूर्व में शाम तक अपना अधिकार बढ़ा लिया। फिर एक जमाना आया जब आर्यों के एक कबीले ने उन्हीं व्यापारिक मार्गों पर चल कर खुद मिस्र पर अधिकार कर लिया। उस कबीले के लोगों ने लगभग २०० वर्ष तक वहां राज किया। बाबुल में भी कई साम्राज्य कायम हुए, जिनमें सबसे बड़ा साम्राज्य असुर कहलाने वाली एक जाति ने कायम किया था। वह साम्राज्य किसी समय काबुल से फिलस्तीन तक फैला हुआ था।

किन्तु ऊपर जिन साम्राज्यों का जिक्र किया गया है, उनमें सबसे बड़ा कयानी साम्राज्य था। कयानी साम्राज्य को साइरस नाम के एक ईरानी बादशाह ने अब से कोई ढाई हजार वर्ष पहले कायम किया था। साइरस का असली ईरानी नाम 'कुरू' था। यूनानियों ने उसे 'साइरस' कहना शुरू कर दिया। साइरस के साम्राज्य में पश्चिम एशिया, शाम, मिस्र, अफगानिस्तान और सिंध की घाटी भी शामिल थी। साइरस के कोई लड़का न था, इसलिए उसका विशाल साम्राज्य दारा को मिला जो साइरस के खास सलाहकारों में से था। इससे पता चलता है कि उस समय के लोग उन सभी देशों के व्यापारिक मार्गों से परिचित थे, क्योंकि उन सभी देशों को मिला कर एक साम्राज्य बनाने और उन देशों के लोगों के आर्थिक और सामाजिक जीवन को एक सूत्र में पिरो कर संगठित करने की बात तभी ध्यान में आ सकती थी।



एथेन्स का एक्रोपोलिस

जिस समय ईरान का कयानी साम्राज्य उन्नति कर रहा था, उसी समय दक्षिण-पूर्वी यूरोप के देश यूनान मे एक नए ढंग के नगर राज्यो की स्थापना हो रही थी। यूनान के उन नगर राज्यो, मे एथेन्स का राज्य इतिहास में सबसे प्रसिद्ध राज्य है। वहा राज्य के कई तरीके चला कर उनका प्रयोग किया गया और अन्त मे गणतन्त्री राज्य का तरीका सबसे अच्छा माना गया। जब एथेन्स के लोगो ने अपना व्यापार पूर्वी भूमध्य सागर मे फैलाया, तब कयानी सम्राटो से उनकी मुठभेड हुई। उस मुठभेड मे एथेन्स वाले जीते। फल यह हुआ कि एथेन्स की सभ्यता ने बहुत उन्नति की। एथेन्स का किला बहुत ऊची सतह पर बना था। किले की ऊचाई 150 फुट थी। कयानी साम्राज्य के इस प्रकार कमजोर हो जाने से यूनान के बादशाह सिकन्दर ने, यूनानी सभ्यता फैलाने के विचार से, उन सब देशो पर अधिकार कर लिया, जो पहले कयानी साम्राज्यो मे शामिल थे। उसके बाद सिकन्दर भारत विजय करने के विचार से सेनाए लेकर व्यास नदी के किनारे तक पहुच गया।

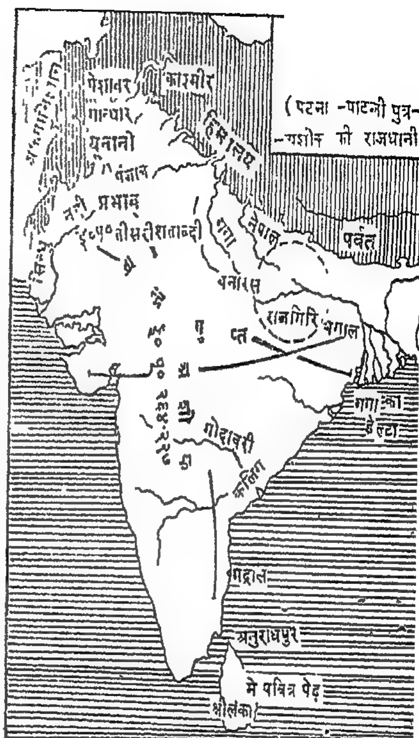


सिकन्दर

भारत मे आर्य कहलाने वाली जाति अब से कोई 4,000 वर्ष पहले आकर बस गई थी। कहा जाता है कि सिंध की प्राचीन भारतीय सभ्यता को इन्ही लोगो ने आकर मिटाया था। ये आर्य पहले पजाब मे बसे, फिर धीरे-धीरे पूर्व की ओर बढे, और अन्त मे उन्होने गगा-यमुना के मैदान को अपना केन्द्र बना लिया। आर्यो को नागरिक जीवन पसन्द न था, इसलिए उन्होने राज्यो की स्थापना नही की। उनका इतिहास हमें बहुत कम मालूम है। फिर भी व्यापार उन्नति करता रहा। सिकन्दर के आक्रमण के बाद मगध मे मौर्य-राज्य कायम हुआ। वह भारत का सबसे

बड़ा साम्राज्य था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने गंगा-जमना और सिंध के पूरे मैदान पर कब्जा करके सिकन्दर के सेनापति से अफगानिस्तान का भी एक भाग छीन लिया।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पोते अशोक के समय में दक्षिण को छोड़ कर पूरे भारत का एक राज्य बन गया था। अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए बहुत-सी आज्ञाएं जारी कीं। उसने ईरानी सम्राटों की तरह व्यापारी मार्गों की ओर भी बहुत ध्यान दिया, और उनके दोनों तरफ छायादार पेड़ लगवाए।

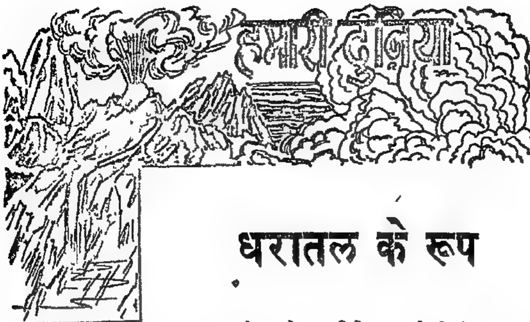


अशोक का साम्राज्य

जिस समय अशोक भारत में यह सब कुछ कर रहा था, उसी समय चीन का सम्राट शीह-ह्वांग-तीह अपने देश को संगठित कर रहा था। उसने उत्तर की खाना-बदोश जातियों से अपने देश को बचाने के लिए एक बहुत लम्बी दीवार बनवाई, जो अभी तक मौजूद है। चूंकि चीन के पढ़े-लिखे लोग उन दिनों पुरानी किताबों के हवाले दे-देकर देश में फूट पैदा करते थे, इसलिए उसने सभी पुरानी किताबें इकट्ठी करके जलवा दीं। लड़ाई बन्द करने के विचार से उसने लोगों से हथियार छीन कर गलवा दिए। उसने सारे देश में नाप और तौल का एक नियम बना दिया। उसने व्यापार की उन्नति के लिए भी तरह-तरह के काम किए। उसने यह आज्ञा भी जारी की कि सब गाड़ियों के धुरों की लम्बाई एक-सी होनी चाहिए, जिससे गाड़ियां सभी रास्तों पर आसानी से आ-जा सकें और वे देश के एक भाग से किसी भी दूसरे भाग में पहुंच सकें।

इस तरह उस जमाने मे साम्राज्यो के द्वारा मनुष्यता का सगठन हुआ । मनुष्यता का सगठन एक दूसरे तरीके से भी हुआ, यानी धर्म और उसके नियमो के जरिए । धर्मो का आरम्भ और प्रचार एक बहुत ही मनोरजक विषय है, जिस पर हम आगे चल कर प्रकाश डालेगे ;



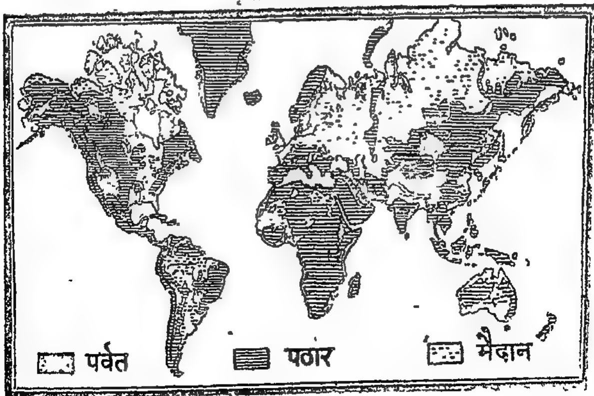


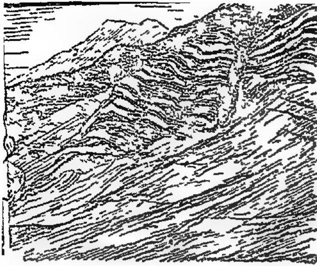
धरातल के रूप

इस धरती के तल पर तरह-तरह के एक-से-एक विचित्र दृश्य देखने को मिलते हैं। कहीं ऊंचे-ऊंचे पर्वत हैं, तो कहीं ऊबड़-खाबड़ पठार। कहीं दूर-दूर तक फैले हुए घने जंगल हैं, तो कहीं लहलहाते हुए हरे-भरे उपजाऊ मैदान। कहीं मीलों तक फैले रेगिस्तान हैं, तो कहीं ऊंची-नीची ढलुवा चट्टानें और गहरी घाटियां। कहीं अथाह सागर हिलोरे मार रहा है, तो कहीं बारहों महीने बर्फ से ढके रहने वाले मैदानी और समुद्री हिस्से हैं। पर मानव जीवन के लिए धरती के तल का मैदानी भाग सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। धरती के तल का कुल विस्तार लगभग 1970 लाख वर्गमील है। इसका लगभग 29 प्रतिशत भाग ही ऐसा है जो पानी से नहीं ढका है। बाकी सब पानी में डूबा हुआ है।

धरती के तल को अच्छी तरह से समझने के लिए यह जान लेना जरूरी है कि बिल्कुल शुरू-शुरू में धरती बहुत ही गर्म और चमकती हुई गैस का गोला थी। धरती के अन्दर पाए जाने वाले खनिज पदार्थ, कंकड़, पत्थर, जल आदि उस गैस में मौजूद थे। धीरे-धीरे गैस का वह गोला ठंडा होने लगा। उस समय न तो पानी था, न कोई जीव-जंतु।

पृथ्वी का भौगोलिक चित्र



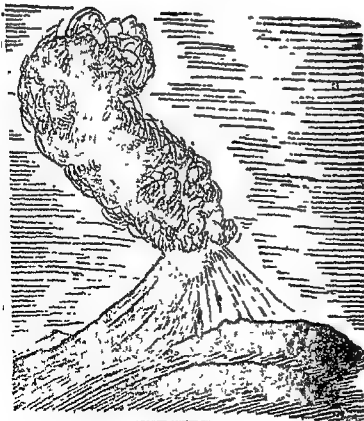


खुश्की और समुद्र की बनावट

जब गैस का वह गोला काफी ठंडा हो गया तो जहां उसने एक ओर ठोस धरा का रूप धारण किया, वहां दूसरी ओर उसने पानी का रूप भी धारण किया। इस पानी से धरातल मे जो नए बडे-बडे गड्ढे बने थे, वे भर गए। इस प्रकार सागर और महासागर बने। ठंडे होकर ठोस होने की इस क्रिया मे धरातल मे झुर्रियां पड गई। इन झुर्रियो के ऊंचे भाग पहाड़ और पठार आदि बन गए, और गहराई वाले भाग घाटियां।

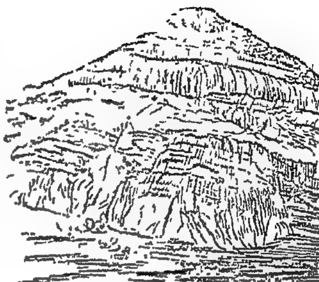
परन्तु ठोस धरती का भीतरी भाग अभी तक गर्म है और वहां गैसे मौजूद हैं। इस प्रकार जो गैसे ठंडी नही हुई वे आज भी पृथ्वी को वायुमण्डल के रूप मे घेरे हुए हैं। पृथ्वी का ठोस पिण्ड जिन वस्तुओ से बना है, उन्हे हम चट्टान कहते हैं। पृथ्वी के ठंडे होने से जो चट्टाने शुरू-शुरू मे बनी, वही असली चट्टाने है। सबसे प्राचीन चट्टाने आग से पैदा होने के कारण प्राथमिक और आग्नेय चट्टाने कहलाती है। संसार के ज्यादातर खनिज पदार्थ इन्ही गहरी हरी या कत्थई रंग की कडी और दानेदार चट्टानो मे पाए जाते हैं। संसार के पुराने पठार भी इनसे ही बने हैं।

आग्नेय चट्टानें



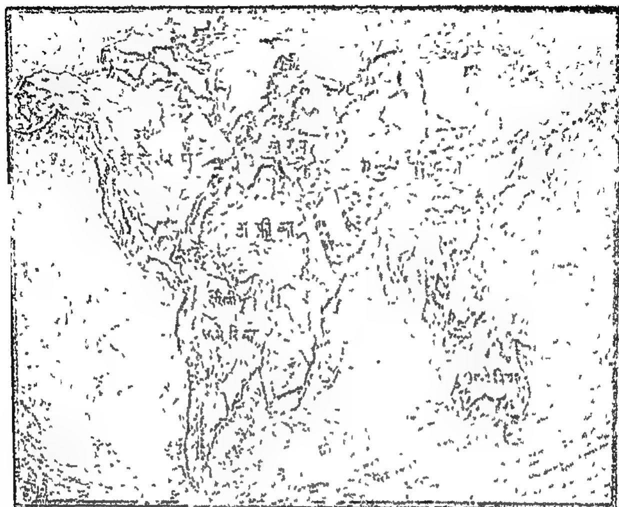
दूसरे प्रकार की चट्टाने परतदार है। ये प्राथमिक चट्टानो या आग्नेय चट्टानो के टूटने-फूटने से बनी है, और परत-पर-परत जमती गई है। संसार के बडे-बडे मैदान तथा ऊंचे-ऊंचे नए मोड़दार पर्वत उन्ही से बने है। तीसरे प्रकार की चट्टाने वे है जो पृथ्वी के भीतर की गर्मी और दबाव के कारण परतदार और प्राथमिक चट्टानो के आकार मे परिवर्तन होने से बनी है, जैसे खड़िया और चूने का पत्थर

बदल कर संगमरमर, नीला मिट्टी और सलेटी पत्थर बन जाता है या मुलायम कोयले से कड़ा कोयला या हीरा बन जाता है।


परतदार चट्टानें

धरती के ऊपर की सतह ऊंची-नीची है। यह कहीं मुलायम है, कहीं कड़ी, कहीं एक रंग की है, तो कहीं दूसरे रंग की। धरती पर अनेक प्रकार की चट्टानें होने के कारण ही ऐसा होता है। विभिन्न महाद्वीपों की रूप-रेखा को देखने से पता चलता है कि आज से लाखों साल पहले ये सब एक ही स्थल खण्ड के भाग थे, जो बाद में फट कर या टूट कर एक-दूसरे से अलग हो गए। नक्शे को देखने से साफ मालूम होता है कि अगर अमरीकी और अफ्रीकी महाद्वीपो को एक-दूसरे से अलग करने वाले अतलान्तिक महासागर को उनके बीच से हटा कर यूरोप और अफ्रीका से मिला दिया जाए तो अफ्रीका के बाहर को निकले हुए उत्तर-पश्चिमी कंधे और खांचे अमरीका तथा यूरोप दोनों महाद्वीपों के कंधों तथा खांचों में लगभग ठीक-ठीक बैठ जाएंगे। इसी आधार पर भू-वैज्ञानिकों ने यह नतीजा निकाला कि पृथ्वी के विशाल खण्ड कभी एक थे, पृथ्वी के भीतर होने वाली प्रतिक्रियाओं के कारण टूट कर तैरते हुए वे एक-दूसरे से हट गए और धीरे-धीरे उनके बीच हजारों मील चौडी एक खाई बन गई। इस खाई में जल भर कर महासागर बन गया।

धरती की सतह सब कहीं समतल या सपाट नहीं है। वह कहीं मीलों ऊंची है, तो कहीं केवल कुछ सौ फुट ही। भूमि की ऊंचाई की माप समुद्र की सतह से की जाती है। नक्शे में धरती के विभिन्न भागों की अलग-अलग ऊंचाइयां दिखाई जाती हैं। समूची धरती का 20 प्रतिशत भाग 600 फुट से भी कम ऊंचा है, लगभग 20 प्रतिशत भाग 600 से 1,500 फुट और 20 प्रतिशत भाग 1,500 से 3,000 फुट ऊंचा है। बाकी 30 प्रतिशत 3,000 से 6,000 फुट और 10 प्रतिशत भाग 6,000 फुट से भी अधिक ऊंचा है। यदि पर्वतमालाओं तथा पठारों को नष्ट-भ्रष्ट करके धरती के सारे स्थल भाग को किसी प्रकार समतल और सपाट कर दिया जाए, तो



अगर नई और पुरानी दुनिया को मिला दिया जाए

स्थल की औसत ऊंचाई केवल आधा मील के लगभग रह जाएगी। इसी प्रकार यदि पानी वाले भागो के तल को भी समतल कर दिया जाए, तो समुद्रो की औसत गहराई लगभग ढाई मील रह जाएगी।

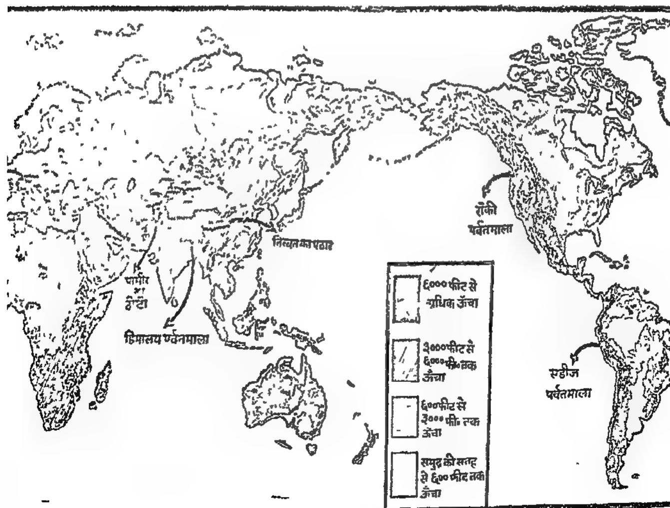
पृथ्वी के धरातल का जो रूप पहले था, वह अब नही है। इसी प्रकार जो रूप आज है, वह आगे नही रहेगा। धरातल का रूप सदा बदलता रहता है। नदिया कठोर तथा कोमल चट्टानो को घिसाती तथा काटती, और टूटे-फूटे टुकडो को बहा कर समुद्र मे इकट्ठा करती रहती है। इन्ही से फिर चट्टानो का निर्माण होता है, और वे ही पहाडो, पठारो तथा मैदानो के रूप मे समुद्र मे से उभर आते है। दूसरी ओर, पृथ्वी की भीतरी शक्तिया भी उन्हे तोड-फोड कर समतल बनाती रहती है, और उन

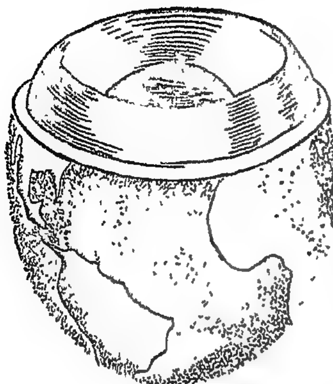
टूट-फूट होने से पृथ्वी में नए-नए भागों का निर्माण होता रहता है। यह सिलसिला सदा ही चलता रहेगा।

पर इन सब परिवर्तनों के होते हुए भी धरती की रूप-रेखा के मुख्य ग्रग पर्वत, पठार ग्रौर मैदान ही रहेंगे। हो सकता है कि जहा ग्राज पर्वतमालाए है वहा रेगिस्तान बन जाए, ग्रौर जहा रेगिस्तान है वहा उपजाऊ जमीन निकल ग्राए तथा बस्तिया ग्राबाद हो जाए। अब हमें स्थल के तीन मुख्य ग्रग—पर्वत, पठार ग्रौर मैदान—ग्रौर इनके भिन्न-भिन्न रूपों को भी समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

पर्वत पृथ्वी तल के उन भागों को कहते है जो समुद्र की सतह से प्राय: 3,000 फुट से ग्रधिक ऊचे होते है। पर्वतों की ऊची चोटियो का विस्तार बहुत कम होता है। ग्रधिकतर पहाड़ धरती के गर्भ मे होने वाली भीतरी हलचल के कारण बनते है। कुछ

भूमि की सतह की ऊंचाई दर्शाने वाला चित्र





धरती के बीच की शक्तिया

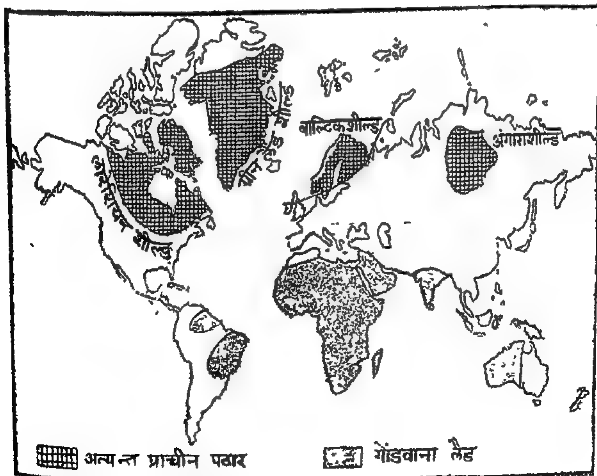
ऐसे भी पर्वत हैं जो हवा, पानी और बर्फ जैसी बाहरी शक्तियों के प्रभाव से बनते हैं। बनावट के आधार पर पर्वतों की पांच मुख्य किस्में मानी जाती हैं। इनमें से तीन मोड़दार पर्वत, अवरोधी पर्वत और गुम्बदनुमा पर्वत भूगर्भ की हलचलों के कारण बने हैं। बाकी दो अवशिष्ट पर्वत और समतल पर्वत पृथ्वी की बाहरी शक्तियों के कारण बने हैं। मोड़दार किस्म के पर्वत पृथ्वी की भीतरी शक्तियों की हलचल के कारण मुडने से बनते है। जब कोई परतदार चट्टान दो चट्टानों के बीच होती है और एक तरफ की चट्टाने भीतरी हलचल के कारण उसको ढकेलती है और दूसरी तरफ जब अच्छी तरह जमी दूसरी अत्यन्त कठोर चट्टान उसे रोकती है तब बीच की परतदार मुलायम चट्टान मे सलवटे पड जाती है। इस प्रकार कुछ भाग धनुष की शक्ल मे ऊपर उठ जाते है। ससार मे इस तरह बने पर्वत बहुत अधिक और ज्यादा पुराने नही है। इसीलिए उन्हे नवीन मोडदार पर्वत कहा जाता है। ऐसे पहाडो मे कई समानान्तर पर्वतमालाए पाई जाती है, और उनकी ऊचाई भी बहुत अधिक होती है। हिमालय, आल्प्स, राकीज तथा एडीज ऐसी ही पर्वतमालाए है। उनके बनने से पहले उनके स्थानों पर लम्बे, सकरे और गहरे सागर थे, जिन्हे 'टिथीज' कहा जाता है। इन सागरो मे नदिया मिट्टी आदि लाकर जमा करती रहती है और उनका पेंदा मुलायम परतदार मिट्टी से भरता रहता है। एक समय 'टिथीज' के उत्तरी किनारे का अगारा प्रदेश दक्षिणी किनारे के गोडवाना प्रदेश की ओर सरकने लगा। तब टिथीज के उत्तर का सारा प्रदेश अगारा प्रदेश मे शामिल था और गोडवाना प्रदेश में आस्ट्रेलिया, दक्षिणी भारत, अरब और अफ्रीका के पठार शामिल थे। लेकिन इस

मोडदार पर्वत



सरकने का फल यह हुआ कि मिट्टी की मोटी परत में बल पडा और बीच की परतदार चट्टानो में सिकुडनें पड गई। चट्टानें मुडने और ऊपर उठने लगी। इस प्रकार यूरोप की आल्प्स और भारत की हिमालय पर्वतमालाए पैदा हुई। अमरीका के पश्चिमी तट पर फैली राकीज और एंडीज पर्वतमालाएं भी इसी प्रकार बनी। हिमालय की सबसे ऊची चोटी एवरेस्ट करीब 29,141 फुट यानी लगभग पाच मील ऊची है। राकीज और आल्प्स की सबसे ऊची चोटिया क्रमश 23,000 और 15,000 फुट ऊची है। नवीन मोडदार पर्वत बडे ऊबड़-खाबड होते है। उनमे कई स्थानो पर ज्वालामुखी भी पाए जाते है।

दूसरे प्रकार के पर्वत अवरोधी कहलाते है। वे पृथ्वी की भीतर की क्रियाओ और परिवर्तनों के कारण चट्टानों में दरार पड जाने से बनते है। उन दरारो के आसपास के क्षेत्र कभी नीचे धस जाते है और कभी ऊपर उभर आते है। जब किसी

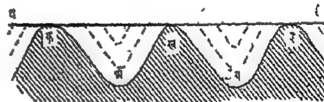




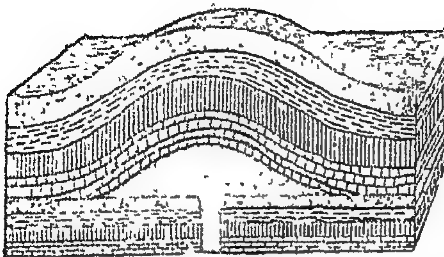
अवरोधी पर्वत

स्थलखण्ड का एक भाग नीचे दब जाता है और दूसरा भाग स्थिर रह जाता है, या कोई भाग भूगर्भ की हलचलो के कारण ऊपर उठ आता है और उसके आसपास की भूमि पहले जैसी ही रह जाती है, तो इस प्रकार ऊचे उठे भाग को अवरोधी पर्वत कहते है। भारत के पश्चिमी घाट और विन्ध्याचल पर्वत, तथा यूरोप का ब्लैक फारेस्ट इसी प्रकार के पर्वत है। इसी प्रकार धरती की सतह ऊपर-नीचे होने से दरारे बन जाती है। जब दो दरारो के बीच का भाग नीचे धस जाता है और आसपास के भाग ऊचे रह जाते है, तो नीचे धस जाने वाले भाग को 'रिफ्ट' या 'दरार' घाटी कहते है। प्राचीन काल मे अफ्रीका की महान दरार घाटी इसी प्रकार बनी थी, जो पश्चिम एशिया के 'डैड' या मृत सागर से फिलस्तीन तथा जोर्डन की घाटियो से होती हुई, पूर्वी अफ्रीका की रुडोल्फ, न्यासा और टागानिका झीलो तक लगभग 4,000 मील की लम्बाई मे फैली हुई है। दरार घाटियो मे कही-कही झीले भी बन जाती है। इन को 'रिफ्ट लेक' या 'दरार झील' कहते है।

दरार घाटी



जब पृथ्वी के भीतर से पिघला हुआ लावा, गैस आदि पदार्थ ऊपर निकलने का प्रयत्न करते है और उन्हे निकलने का रास्ता नही मिलता, तब उनके धक्के से धरती के कुछ भाग ऊपर उठ आते है। ये उभरे हुए भाग गुम्बदनुमा पर्वत कहलाते है। अमरीका के ऊटा राज्य का हेनरी पर्वत इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। चौथे



गुम्बदनुमा पर्वत

प्रकार के पर्वत सचय पर्वत कहलाते है। हवा मे उडते हुए मिट्टी के कण धीरे-धीरे पृथ्वी की सतह पर लगातार जमा होते रहते है। इससे अवसर जगहो पर धरातल ऊंचा होता रहता है और कही तो वह इतना ऊंचा होता जाता है कि पहाड बन जाता है। इस प्रकार बने पर्वतो को सचय पर्वत कहते है। जापान के फजीयामा जैसे ज्वालामुखी पर्वत लावा-पदार्थों के इकट्ठा होने से बने है। रेगिस्तानो मे हवा के द्वारा जमा होने वाले रेत के कणो से बने ऊंचे-ऊंचे टीले भी सचय पर्वतमालाओ मे ही गिने जाते है। हवा, पानी आदि प्रकृति की शक्तिया जब किसी पठारी प्रदेश के मुलायम भाग को घिस कर नष्ट कर देती है, और केवल उसके बीच का ऊचा और कड़ा भाग बच रहता है, तो वह एक पर्वत का रूप धारण कर लेता है। ऐसे पर्वत को अवशिष्ट पर्वत कहते है। भारत के पूर्वी घाट और मालवा के पहाड, स्काटलैण्ड के पर्वत तथा स्पेन के सियरा पर्वत इसी प्रकार बने है।

पर्वत मनुष्य के विकास मे अनेक प्रकार से सहायक भी होते है और बाधक भी। पहाड़ी प्रदेशो की भूमि पथरीली और ऊंची-नीची होती है। वहा मिट्टी की परते बहुत पतली होती है। इसलिए वहा खेतीबाडी का काम करना बहुत कठिन होता है। इसीलिए वहा पहाडी प्रदेशो की जन-सख्या भी बहुत कम होती है। कही-कही ढलानो पर चरागाह भी होती है, जहां पशु चरा कर लोग अपना जीवन बिताते है। इसके अलावा ससार के भिन्न-भिन्न भागों मे पर्वतो की ढलानो पर बड़े-बडे वन पाए जाते है, जिनकी लकडी तरह-तरह के कामो मे इस्तेमाल होती है। बहुत से पर्वतो पर बहुमूल्य खनिज पदार्थ भी मिलते है। पर्वतो का देश के जलवायु पर भी भारी प्रभाव पडता है। यदि भारत के उत्तर मे हिमालय न होता तो मानसूनी हवाए सीधे मध्य

तथा उत्तरी एशिया मे पहुच कर पानी बरसाती, और भारत एक रेगिस्तान बन जाता। हिमालय पर्वत जाडो मे उत्तरी एशिया मे आने वाली बेहद ठडी हवाओ से भी भारत की रक्षा करता है। पर्वतो का बारिश मे तो गहरा सम्बन्ध है ही, छोटी-बडी अनेक नदिया भी उन्ही से निकलती है। साथ ही वे अपने साथ मिट्टी लाकर मैदानो को उपजाऊ भी बनाती है। इन नदियो से सिचाई होती है, बिजली पैदा की जाती है, और यातायात का भी काम लिया जाता है। पर्वत यातायात मे बाधक होते है, पर व बाहरी हमलो से देश की रक्षा भी करते है। इसके अलावा चूकि पहाडी प्रदेशो के दृश्य मनोहर और वहा का जलवायु स्वास्थ्य के लिए लाभदायक होता है, इसलिए लोग वहा मैदानो की प्रचड गर्मी से बचने और अपनी सेहत सुधारने के लिए जाते है।

पठार धरातल के उन भागो को कहते है जो पहाड से कम और मैदानो से अधिक ऊचे होते है। इनकी सतह प्राय एक-सी ऊची पर ऊबड-खाबड होती है। पठार की ढाल चारो ओर होती है। आम तौर से समुद्र की सतह से 1,000 से 3,000 फुट तक ऊचाई वाले भूभाग को पठार कहते है। पर कई पठार पहाडो मे भी ऊचे है। ससार के अधिकाश पठार समुद्र से लगभग 2,000 फुट की ऊचाई पर है। पर ऐसे पठार भी है, जो समुद्र की सतह से 10,000 से 12,000 फुट तक ऊचे है, जैसे तिब्बत और बोलेविया के पठार। ससार के सबसे विस्तृत पठार बहुत पुरानी कडी चट्टानो के बने है। ऐसा समझा जाता है कि वे पृथ्वी के पैदा होने के साथ ही बने थे। इस प्रकार के पठारो के तीन बडे चबूतरे—लौरेशियल ढाल अथवा कनाडा का पठार, बाल्टिक ढाल अथवा स्कैडेनेविया का पठार, और अगारा ढाल अथवा साइबेरिया का पठार—कनाडा, यूरोप और एशिया के महाद्वीपो के उत्तर मे फैले हुए है। एक और विशाल प्राचीन पठार, जिसका नाम गोडवानालैण्ड है, दक्षिण मे फैला हुआ था। आस्ट्रेलिया का पश्चिमी पठार, दक्षिण भारत का पठार, अरब का पठार, अफ्रीका का पठार और ब्राजील का पठार उसी विशाल पठार के बचे-खुचे भाग है। किसी-किसी पठार के चारो ओर पर्वतमालाए होती है। उन्हे पर्वत प्रान्तीय पठार कहते है। ससार के ऊचे-ऊचे पठार इसी प्रकार के है। ऐसे कई पठार पर्वतो से इस तरह घिरे हुए है कि उनकी नदियो का निकास भीतर की ओर ही होता है। हिमालय और क्युनलुन पर्वतो के बीच मे 12,000 फुट की ऊचाई पर तिब्बत का पठार तथा दक्षिणी अमरीका मे 10,000 से 15,000 फुट की ऊचाई पर बना बोलेविया का

पठार, इसी किस्म के पठार है। मैक्सिको, मंगोलिया, कोलम्बिया, और बिलोचिस्तान के पठार भी ऐसे ही पठार है।

पीडमांट पठार ऊचे पर्वतो और मैदानो के बीच अथवा मैदान और समुद्र के बीच किसी ऊचे पर्वत के सहारे फैले होते है। दक्षिणी अमरीका मे पैटेगोनिया का पठार इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। पूर्वी अमरीका मे अपेलेचियन पर्वत के पूर्व का पठार और इटली के पठार भी इसी कोटि मे आते है। जो पठार समुद्र के किनारे या मैदानी भूमि मे एकदम ऊचे होते है, वे महाद्वीपीय पठार कहलाते है। इन पठारो के सिरे पर पर्वत नही होते। वे लावा के फैलने या पृथ्वी के धरातल के ऊपर उठने से बनते है। इनकी ऊचाई समुद्र की सतह या मैदानो से एकदम शुरू होती है। अफ्रीका, दक्षिणी भारत, अरब और स्पेन के पठार महाद्वीपीय पठारो के उदाहरण है। कभी-कभी मैदान-का-मैदान ही ऊपर उठ जाता है, या पर्वत की घाटियो मे लावा भर जाने से एक ऊचा समतल मैदान उभर आता है।

कटावदार पठार



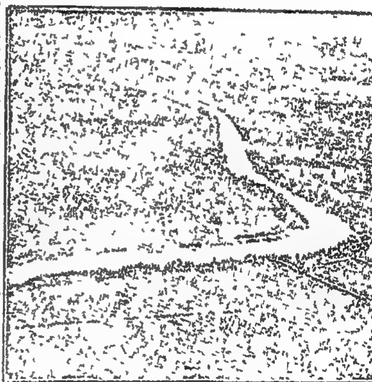
जिन पठारो पर अधिक वर्षा होती है या तेज नदिया बहती है, उन पर पानी के बहाव से गहरी और तग घाटिया बन जाती है, जिससे पठार कट जाते है। ऐसे पठारो को कटावदार पठार कहते है। वेल्स और स्काटलैण्ड के पठार इसी प्रकार के है। अधिकतर पठारो का निर्माण पहाडी प्रदेशो के घिसने तथा कटने से होता है। कभी-कभी वे घिसते-घिसते बेहद नीचे हो जाते है। ऐसे नीचे पठारो को 'पैनीप्लेन' कहते है। सूखे प्रदेशो के पठारो मे वर्षा बहुत कम होती है। इस कारण उनकी सतह मे टूट-फूट नही होती। वे समतल ही रहते है। कही-कही पृथ्वी के पिण्ड की दरारो से लावा निकलता है, जो आसपास की भूमि पर फैल कर कत्थई या गहरे रग की ठोस तह के रूप मे जम जाता है। लावा की इस जमावट से भी

पठार बन जाते हैं। उत्तर-पूर्वी [illegible] और [illegible] के पूर्वी पठार [illegible] हैं। ग्रीनलैण्ड और एटार्कटिका [illegible] पठारों के उदाहरण हैं।

खनिज सम्पत्ति की दृष्टि से पठारों का बहुत महत्त्व है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, बोलीविया और भारत के पठारों में क्रमशः सोना और तांबा, टीन और मैंगनीज आदि खनिज पदार्थ पाए जाते हैं। इसी प्रकार, अन्य प्राचीन पठारों में भी बहुत से बहुमूल्य खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं। उष्ण कटिबन्ध के पठारों का जलवायु ऊंचाई के कारण मैदानों से अच्छा होता है। [illegible] उस भाग के कई पठारों पर यूरोपियन लोग जाकर बस गए। इस तरह अंगोला, पूर्वी अफ्रीका और टागानिका के पठारों का अच्छा विकास हुआ। उष्ण कटिबन्ध के पठारों पर सवाना (बड़ी घास) के मैदान पाए जाते हैं। उनका अभी बहुत कम विकास हुआ है। पर कई स्थानों पर अच्छी गायें होती हैं और जानवर पाले जाते हैं। आस्ट्रेलिया तथा पेटेगोनिया जैसे शीतोष्ण जलवायु के पठारों पर छोटी घास के मैदानों में भेड़े पाली जाती हैं, और ऊन तथा मांस के व्यापार से इन पठारी प्रदेशों को काफी आय होती है।

मैदान पृथ्वी के उन भागों का नाम है जो नीचे और समतल होते हैं। उनकी ऊंचाई समुद्र की सतह से 1,000 फुट तक होती है। आम तौर से ऐसे मैदान चौरस होते हैं। क्षेत्रफल के लिहाज से मैदानों का विस्तार सबसे अधिक है, क्योंकि मैदान धरती के अधिकाश भाग पर फैले हुए हैं। चट्टानों के घट-घट कर नीची भूमि बन जाने और नीची भूमि मे चट्टानों का चूरा जमा होने से मैदान बनते हैं। सब मैदान एक-से नही होते। वे कई तरह के होते हैं। सबसे पहले तो वे मैदान हैं, जिन्हें नदियों ने पर्वतों तथा पठारो को काट-छाट कर बनाया है। इस प्रकार के मैदानों को 'पेनीप्लेन' कहते हैं। फिनलैण्ड के मैदान, हडसन की खाड़ी के चारो तरफ के मैदान, मध्य रूस के मैदान, पूर्वी इग्लैण्ड के मैदान, फ्रास में पेरिस के मैदान, दिल्ली के पश्चिम में अरावली के कटने-छटने से बने हुए मैदान, और यूगोस्लाविया में चूने की चट्टानों के कटने-छंटने से बने हुए कास्ट के मैदान ऐसे ही मैदान हैं। पर ससार के अधिकाश मैदान नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी से बने है। उन्हे दुमट मिट्टी के मैदान कहते हैं। नदिया दुमट मिट्टी को अपने साथ बहा कर लाती और मार्ग मे जमा करती रहती है, जिससे मैदान बन जाते है। ऐसे मैदान अत्यन्त उपजाऊ होते है। वे शुरू मे कम चौड़े और ढालू होते है। पर ज्यो-ज्यो नदी नीचे समतल भू-भाग की ओर बढती जाती है, वे अधिक चौड़े और सपाट होते जाते है।

नदी मे बाढ आने के समय ऐसे मैदान और भी चौड़े हो जाते हैं, और उपजाऊ मिट्टी बाढ़ के समूचे क्षेत्र मे बिछ जाती है। नदी ज्यो-ज्यो पुरानी होती जाती है, त्यो-त्यो उसकी घाटी चौडी होती जाती है। इस प्रकार घाटी का एक किनारा दूसरे किनारे से मीलो दूर हो जाता है, और बीच मे नदी के साथ बह कर आई मिट्टी से बने लम्बे-चौडे समतल मैदान बन जाते हैं। गगा और सिध के मैदान, ईराक मे दजला और फरात के मैदान, उत्तरी चीन के मैदान, दक्षिणी अमरीका मे लाप्लाटा का मैदान और आस्ट्रेलिया के मर्रे डालिग के मैदान इसी तरह के हैं। जब नदी समुद्र मे गिरने लगती है तो वह अपने साथ लाई हुई मिट्टी वही जमा कर देती है। इस प्रकार एक तिकोना डेल्टा बन जाता है। पर सारी नदिया डेल्टा नही बनाती। डेल्टाई मैदानो पर हर साल मिट्टी जमा होती रहती है। इस कारण ये मैदान बहुत उपजाऊ और बहुत घने आबाद होते हैं। कई जगह डेल्टाई भागो मे नदियो की धाराएं मिट्टी को एक ओर फेक देती है, जिससे एक प्रकार की छिछली-सी झील बन जाती हैं। इसे लैगून कहते है। नील नदी के डेल्टा मे ऐसी बहुत-सी झीले पाई जाती है। जब नदी अपनी निचली घाटी मे से गुजरती है, तब उसकी चाल बहुत धीमी हो जाती है, और उसमें काटने-छांटने की शक्ति नही रह जाती। इस कारण नदी का मार्ग टेढ़ा-मेढा हो जाता है। नदी अपने इस टेढे मार्ग के कारण कही-कही धनुष या घोडे की नाल के आकार की झीले बना देती है।



निचली घाटी में से गुजरती नदी

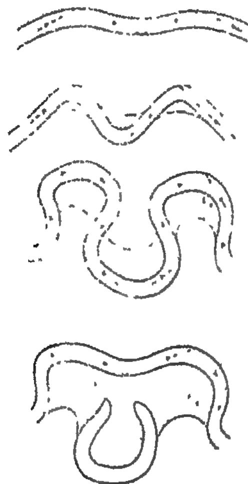
कुछ मैदान प्राचीन झीलों के भर जाने से भी बने है। जब कोई नदी किसी झील मे प्रवेश करती है, तो वह अपने साथ लाई हुई मिट्टी और कूड़ा-कर्कट आदि झील की तलहटी मे जमा कर देती है। इस प्रकार धीरे-धीरे झील भर जाती है और उसकी जगह एक मैदान बन जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि झील की तलहटी भूगर्भ की हलचलो के कारण ऊपर उभर आती है, और उसकी जगह

मैदान बन जाते हैं। कश्मीर की घाटी, हंगरी का मैदान, कनाडा के प्रेरीज और अमरीका के मैनीटोवा के मैदान इसी प्रकार बने हैं।

यूरोप तथा एशिया के उत्तरी मैदान तथा कनाडा के विस्तृत मैदान हिम-नदियो द्वारा लाई हुई रेत, बालू तथा कंकड़-पत्थर के जमा होने से बने हैं। ऐसे मैदानो मे जगह-जगह मीठे पानी की अनेक छोटी-छोटी झीलें भी पाई जाती हैं। कभी-कभी पृथ्वी की गति के कारण समुद्र का उथला भाग समुद्र की सतह के ऊपर उठ आता है, अथवा समुद्री लहरो या समुद्र मे गिरने वाली नदियो द्वारा लाई हुई मिट्टी के तट पर जमा होते रहने के कारण बहुत समय बाद किनारे पर मैदान बन जाते हैं। अमरीका के फ्लोरिडा के मैदान तथा भारत के दक्षिण-पश्चिमी तट के मैदान इसी प्रकार बने हैं। कुछ मैदान ज्वालामुखी विस्फोट के समय निकलने वाले लावा के जमने से बने हैं। ज्वालामुखी के विस्फोट मे निकली हुई राख, लावा आदि आसपास की ऊंची-नीची भूमि को समतल बना देती है, और इस प्रकार अत्यन्त उपजाऊ मैदान बन जाते हैं। इटली मे नेपल्स के पास के मैदान विसूवियस ज्वालामुखी की राख और लावा से ही बने हैं। दक्षिण भारत मे काली मिट्टी का क्षेत्र, अमरीका का वाशिंगटन क्षेत्र, और जावा के मैदान इसी प्रकार बने हैं। पृथ्वी के रेगिस्तानी हिस्सो मे कई स्थानो पर रेत के विस्तृत मैदान पाए जाते हैं। हवा मे उड कर दूर-दूर तक रेत के फैलते रहने से कई जगह बालू के टीले बन जाते हैं। लीबिया और अरब के मैदान ऐसे ही रेगिस्तानी मैदान हैं। पानी की कमी के कारण ऐसे मैदान उपजाऊ नही होते। वहा केवल नखलिस्तानो मे कुछ पैदावार होती है। उत्तर-पश्चिमी चीन का लोयस का मैदान भी कुछ इसी प्रकार का है। वहा मिट्टी पहले नदियो द्वारा लाई गई थी, लेकिन अब हवा द्वारा जमा होती रहती है।

मैदान शुरू से ही मनुष्य की लीला-भूमि रहे है। ससार की तीन चौथाई से अधिक आबादी मैदानो मे ही बसी हुई है। ससार की प्राचीन सभ्यताओ का जन्म तथा विकास भी मैदानो मे बहने वाली नदियो की घाटियो मे ही हुआ। जैसे सिंधु, नील, दजला और फरात की घाटियो की सभ्यताए। इसी कारण मैदानो को 'सभ्यता का पालना' कहा जाता है। समतल तथा उपजाऊ होने के कारण मैदान ही मुख्य रूप से खेतीबाडी का घर होते हैं। वर्षा कम होने पर मैदानो मे आसानी से और कम खर्च मे सिंचाई के साधन बनाए जा सकते हैं। नदियो का बहाव भी उनमे धीमा होता है, इस कारण नावें तथा

[illegible] आसानी से [illegible] चल सकते हैं। मैदानों में रेलों और सड़कों का जाल भी सहज ही बिछ जाता है। जिन मैदानों के निकट कोयला, दूसरे खनिज पदार्थ तथा कच्चा माल पाया जाता है, वहां उद्योग-धंधों के केन्द्र बन गए हैं, और बड़े-बड़े नगर बस गए हैं।



धनुषाकार झील का प्रादुर्भाव

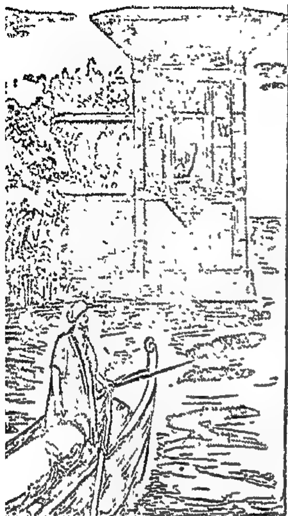


(1)

अरब देश

पश्चिम एशिया म अरव देश भारत का करीवी पडोसी है। भूमध्य सागर से लेकर अरव सागर तक और लाल सागर से लेकर फारिस की खाडी तक यह देश फैला हुआ है। इस चौहद्दी के अन्दर सऊदी अरब, ईराक, शाम, कुवैत, लेबनान, जोर्डन और यमन की आजाद अरव रियासतें हैं। ये सब रियासतें आज सयुक्त राष्ट्र सघ की सदस्य हैं। इनके अलावा वहरीन, कतार, और दक्षिण अरव फेडरेशन की रियासतें भी, जो न पूरी तरह आजाद हैं न पूरी तरह गुलाम और जो एक हद तक अग्रेजो के मातहत हैं, विशाल अरव देश मे शामिल हैं। इन सब प्रदेशों के रहने वालो का खान-पान रहन-सहन एक-सा है। ये सभी विशाल अरव कौम के अंग हैं।

अरबो को अपनी भाषा और अपनी भाषण शक्ति पर अभिमान था। वे अपने देश को 'अरव' और वाकी दुनिया को 'अजम' यानी 'गूगा' कहते थे। यह एक तरह से सही भी था। अरव देश ने 'अलिफ लैला' नाम का वह महान ग्रन्थ दिया, जो अव विश्व-साहित्य का भाग वन चुका है। 'अलिफ' का अर्थ हजार और 'लैला' का अर्थ रात है। 'अलिफ लैला' ग्रन्थ एक हजार कहानियो का सुन्दर सग्रह है। ससार की लगभग सभी भाषाओ मे उसका अनुवाद हो चुका है। 'अलिफ लैला' की कहानियो से भी वहुत पहले अरव देश ने एक दो नही वल्कि वहुत से पैगम्बरो को जन्म दिया, जिनमें हजरत इब्राहीम, हजरत मूसा, हजरत ईसा, और



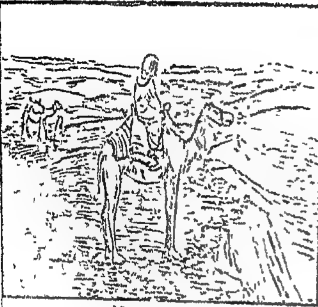
अलिफ लैला से एक दृश्य

हजरत मुहम्मद के चलाए हुए धर्म आज भी संसार मे फैले हुए है। भारत के इसराइली, यहूदी, ईसाई और मुसलमान इन्ही धर्मो के मानने वाले है।

यह एक दिलचस्प बात है कि तीन ओर, बल्कि चारो ओर पानी से घिरे होने के बावजूद अरब अधिकतर एक बडा रेगिस्तान है। बीच-बीच मे पानी और हरियाली के टुकडे है, जिन्हे 'नखलिस्तान' कहते है। सबसे बडा और अच्छा नखलिस्तान यमन मे है, जहा बढिया-से-बढिया अगूर और अनार तक होते है। देश के बाकी हिस्सो का सबसे बडा मेवा खजूर है। दूर-दूर तक चले जाइए, पानी का कही निशान तक नही मिलता। वहां न अधिक अनाज पैदा हो सकता है, और घास-चारे की कमी के कारण न अधिक पशु ही पाले जा सकते है। यही वजह है कि वहा के निवासी अपने डेरे उठाए पानी और हरियाली की खोज मे जगह-जगह घूमते फिरते थे। इन्ही मे से कुछ लोग, हजरत ईसा से साढे तीन

हजरत मूसा पहाड से नीचे उतरते है





रेगिस्तान का एक दृश्य

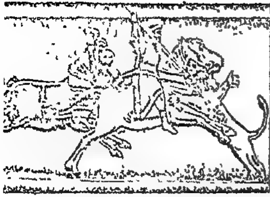
[illegible] साल पहले पानी और हरियाली की खोज में भटकते हुए [illegible] [illegible] जिस भाग [illegible] कहलाता है और जहां दजला और फिरात नाम की दो बड़ी नदियां बहती हैं। यहां जितना पानी बह रहा था उतना पानी उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। सबने वहीं अपने डेरे डाल दिए और वहीं बस गए। आगे चल कर ईराक में इन लोगों ने असूर और बाबुल जैसी महान सभ्यताओं की नींव डाली और उनको परवान चढ़ाया। इन सभ्यताओं को संसार की पहली सभ्यताएं माना जाता है और उनके खण्डहर बगदाद में [illegible] आज भी अपने सिरजने वालों के गुण गा रहे हैं।

उसी तरह की दूसरी शाखाओं ने अपने घरों से निकल कर शाम, फिलस्तीन, मिस्र और हब्श (इथियोपिया) आदि में अपनी बड़ी-बड़ी बस्तियां बसाईं और उन जगहों पर अपनी सभ्यता के गहरे निशान छोड़े। इंजील, तौरेत (यहूदियों की पुस्तक) और कुरान में हमें उन धर्म सभ्यताओं का हाल मिलता है। इनमें से मिस्र और हब्श अफ्रीका महाद्वीप में हैं।

हजरत मुहम्मद से पहले के ठेठ अरब निवासियों का खास प्रदेश हेजाज था, जिसमें मक्का और मदीना के शहर हैं। वे सैकड़ों छोटे-बड़े कबीलों या बिरादरियों में बंटे हुए थे। इन कबीलों में आए दिन लड़ाइयां होती रहती थी

ऊंट की पीठ पर सजा हुआ अरब का घर





बाबुल सभ्यता के अवशेष

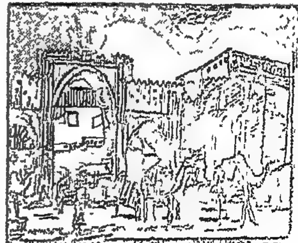
और बात-बात पर तलवारे खिच जाती थी। जान लेना और जान देना उनके लिए बहुत मामूली बात थी। उनमे और भी तरह-तरह के बुरे रिवाज थे। उदाहरण के लिए वे खासकर बडे घरो के बहुत से लोग, अक्सर अपनी लडकियो को पैदा होते ही जिन्दा गाड देते थे, जिससे उन्हे किसी को अपना दामाद न बनाना पडे। पुराने राजपूतो की तरह वे भी किसी को दामाद बनाना अपनी आन के खिलाफ समझते थे। अरब देश की उन दिनो यह हालत थी कि जहा कही पानी के सोते होते थे वहा खजूर के पेड मिलते थे, और थोडी-बहुत खेतीबाडी भी हो सकती थी। ऐसी जगहो पर कुछ लोग बस जाते थे और अपनी बस्ती को चारो ओर दीवारो से घेर लेते थे, जिससे दूसरे कबीले के लोग, जो पानी और हरियाली की खोज मे घूमा करते थे, उनकी हरी-भरी बस्ती पर हमला करके उसे अपने अधिकार मे न कर ले। पूरे देश मे केवल दो बडे शहर थे—मक्का और मदीना। छठी सदी ईस्वी मे, हजरत मुहम्मद के पैदा होने के समय, मदीने की आबादी पन्द्रह हजार और मक्के की पच्चीस हजार थी। मक्का व्यापार की भी एक बडी मडी था। सबसे बढ कर यह कि मक्का अरबो का एक बडा तीर्थ था। अरब लोग दूर-दूर से हर साल मक्का पहुचते थे। वहा एक बहुत बडा मेला लगता था, तरह-तरह के अखाडे जमते थे, और बडे-बडे पाले होते थे। उस अवसर पर मक्के मे कवियो का खास तौर से मुकाबला होता था। बडे-बडे कवि देश भर से आते थे, और जो उस मैदान मे बाजी मार लेता था, उसकी कविता सारे देश मे गूजने लगती थी। वही उनका 'राष्ट्र कवि' बन जाता था।



मक्का का एक दृश्य

हजरत मुहम्मद ने मक्का शहर के एक साधारण घराने मे सन् 570 ई० मे जन्म लिया था। उनका हाल 'ज्ञान सरोवर' के पहले भाग मे लिखा जा चुका है। उनके चलाए हुए नए मजहब ने अरबो की काया पलट कर दी। वही अरब,

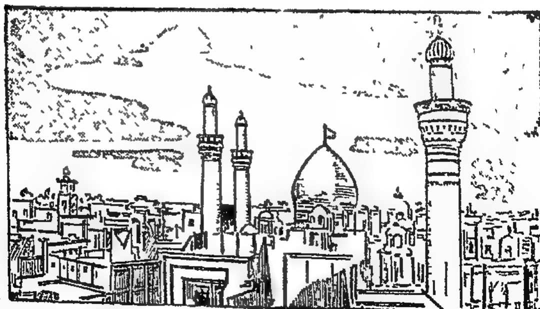
मदीना का एक दृश्य



जो छोटी-छोटी बातो पर एक-दूसरे की जान के ग्राहक और खून के प्यासे हो जाते थे, हजरत मुहम्मद की तालीम से एक गुंथे हुए राष्ट्र की तरह आपस में मिल-जुल कर रहने लगे। आपस की दुश्मनी और वैर की जगह उनके दिलो में सबके लिए प्रेम पैदा हो गया, और आत्मविश्वास की एक नई भावना उनके अन्दर उभरी। हजरत मुहम्मद के धार्मिक आन्दोलन ने अपने देश पर ही नही, सारे संसार पर प्रभाव डाला। हजरत मुहम्मद का धर्म उनकी जिन्दगी में ही सारे देश में फैल गया। सन् 632 ई० में वह परलोक सिधारे। उनके बाद तीस बरस बीतते-न-बीतते, अरब के अलावा ईरान, आर्मीनिया, मिस्र, उत्तर अफ्रीका और स्पेन तक अरबो की हुकूमत फैल गई। इनमें से अधिकतर देशो में अरबी बोली जाने लगी, और उनकी सभ्यता बदल कर अरब सभ्यता के सांचे में ढल गई। यही कारण है कि मिस्र और उत्तर अफ्रीका के देशो की भाषा आज भी अरबी है और वहा के रहने वाले अपने को अरब कहते है। अरबो ने दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की। देखते-देखते वे तुर्किस्तान, मंगोलिया और चीन तक पहुच गए, जहां आज भी मुसलमानो की बहुत बडी आबादी मौजूद है।

बगदाद, जो आज ईराक की राजधानी है, सातवी सदी ई० में पहली बार अरब साम्राज्य की राजधानी बना। उस जमाने में बगदाद दुनिया के सबसे अधिक प्रगतिशील नगरो में था। और बातो के अलावा वहा यूनानी और संस्कृत भाषाओ की बडी-बडी पुस्तको के अनुवाद किए गए और अनेक विषयो पर नई-नई पुस्तके लिखी गई। खासकर विज्ञान और तिब (यूनानी चिकित्सा-पद्धति) के मैदान मे अरबो ने नए-नए प्रयोग किए, जिनसे सारे संसार को भारी लाभ पहुचा। बगदाद के

बगदाद का एक दृश्य



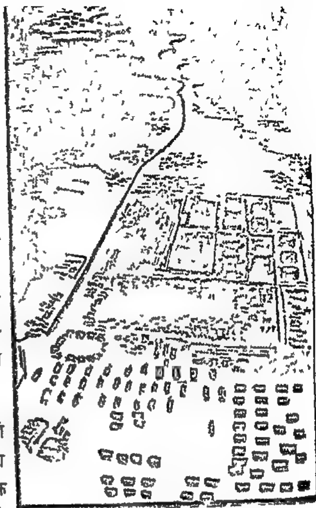
मशहूर सम्राट् हारूँ रशीद का सन् 809 ई० में देहान्त हुआ। उसके कुछ अरसे बाद बगदाद की भी अवनति शुरू हो गई।

जब सन् 1914 ई० की बड़ी जंग शुरू हुई, उस समय सारे अरब देश पर तुर्कों का झंडा फहरा रहा था। तुर्कों ने अरब देश को अलग-अलग सूबों में बांट रखा था। हर सूबे को वे लोग 'विलायत' कहते थे, और हर विलायत का एक वाली या गवर्नर होता था। अरबों के साथ तुर्कों का व्यवहार देर तक अच्छा न रह सका। बीसवीं सदी शुरू होने से पहले अरबों ने तुर्कों की गुलामी से छुटकारा पाने की कोशिशें शुरू कर दीं।

सन् 1914 ई० के महायुद्ध में तुर्कों ने जर्मनी का साथ दिया और मित्र राष्ट्रों यानी अंग्रेजों, फ्रांसीसियों, और रूसियों के विरुद्ध लड़ाई का ऐलान कर दिया। उस समय हेजाज की विलायत में तुर्कों की तरफ से शरीफ हुसैन वहां का हाकिम था। शरीफ हुसैन तुर्क नहीं, अरब था। मक्का हेजाज की राजधानी थी। मक्का में ही काबा था और काबा की रखवाली भी शरीफ हुसैन के सुपुर्द थी। यह बहुत बड़े सम्मान की बात थी। शरीफ हुसैन तुर्कों की गुलामी के जुए को उतार फेंकना चाहता था। अंग्रेजों ने इससे लाभ उठाया और अरबों को तुर्कों के खिलाफ विद्रोह करने के लिए तैयार कर लिया।

मित्र राष्ट्रों ने शरीफ हुसैन से यह सन्धि कर ली कि भूमध्य सागर से लेकर अरब सागर तक, और लाल सागर से फारिस की खाड़ी तक एक अरब राज्य रहेगा और यह सारा देश आजाद होगा। लेकिन लड़ाई खत्म होने के बाद उन्होंने उसे बहुत-से भागों में बांट कर उसके कई अर्ध-स्वतन्त्र राज्य बना दिए और उन पर अंग्रेजों और फ्रांसीसियों की प्रभुता कायम कर दी।

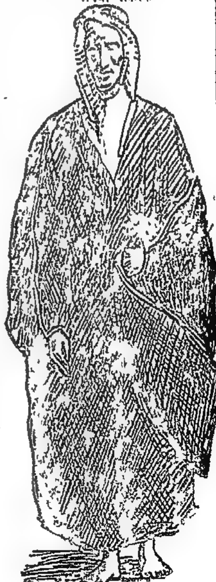
बात यह थी कि अरब देश पर अंग्रेजों की दृष्टि बहुत पहले से थी, जिसके दो मुख्य कारण थे। एक तो यह कि भारत और दूसरे एशियाई देशों का दरवाजा स्वेज अरब के किनारे था। दूसरे, वहां की तेल की दौलत पर अंग्रेजों की बहुत दिनों से आंख थी। वैसे तो अरब देश अधिकतर रेगिस्तान है, और उसमें सिवा खजूर के और कुछ बहुत कम पैदा होता है, पर इस देश को प्रकृति ने मिट्टी के तेल की बहुत बड़ी दौलत दी है। आज अरब देश में ईराक, सऊदी अरब, कुवैत, बहरीन आदि में दूध की नहीं तो पेट्रोल की नदियां अवश्य बह रही हैं। वहां के शासकों को इससे आए साल खरबों रुपये की आमदनी होती है।



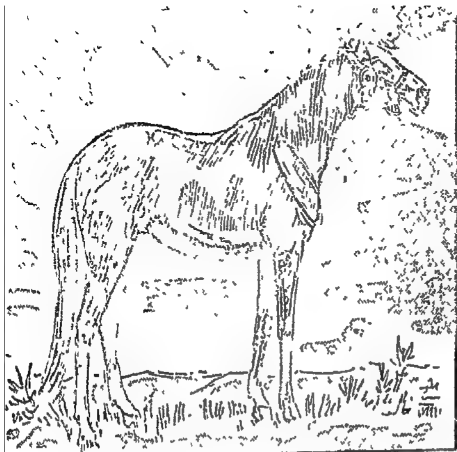
तेल पाइप

आज अरब देश मे 7 आजाद रियासतें हैं ईराक, सऊदी अरब, यमन, कुवैत, शाम, जोर्डन और लेबनान । अदन पर अंग्रेजो का अधिकार है। पूर्व मे बहरीन और अन्य छोटी-छोटी रियासते है । उन पर भी अंग्रेजो का जबरदस्त असर है।

दूसरे रेगिस्तानी देशो की तरह अरबो का जीवन भी शुरू से बिल्कुल सीधा-सादा रहा है। अरब लोग आम तौर से टखनो तक लम्बा कुर्ता पहनते है, जिसके ऊपर उतना ही लम्बा एक कपडा होता है, जिसे वे अबा कहते है । अबा आम तौर से ऊट के बालो से बुना हुआ होता है। सिर पर एक बडा-सा चौकोर रख कर वे उसे ऊट के बालो की एक दोहरी रस्सी से कस लेते है । यह पहनावा उनको गर्मी मे रेगिस्तान की गर्म रेत और जाडो मे तेज ठडी हवा दोनो से बचाता है। औरतो का भी यही पहनावा है। उनके बदन पर अबा की जगह एक लम्बी काली चादर होती है, जो कही-कही कुर्ते का भी काम दे देती है।


अरबी पोशाक

अरबी घोडे दुनिया मे प्रसिद्ध है और एक समय अरबो की आमदनी का सबसे बडा साधन रहे है। आज भी अरबो को घोडे का अच्छा पारखी और माहिर समझा जाता है। वे अच्छे घुड़सवार भी होते है। लेकिन उनका सबसे बडा साथी ऊट है, जिसे रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है। ऊट जाडो मे पचीस दिन और गर्मियो मे पाच-पाच दिन तक बिना पानी पिए रह सकता है। खजूर के अलावा, ऊटनी का दूध अरबो का मुख्य भोजन है। ऊट के बालो



अरबी घोडा

से वे अपने कपडे और तम्बू बुनते है। उसकी खाल से वे घोडे और ऊटो की काठी और दूसरी चीजे वनाते है।

अतिथि का सत्कार करना अरबो का सबसे वडा गुण है। जब कोई अतिथि उनके घर आ जाता है तो उसका सत्कार करने मे वे कुछ उठा नही रखते। और अगर उनके पास कुछ और नही होता तो वे अपने ऊट तक को, जो उनके जीवन का सबसे वडा सहारा होता है, मेहमान के लिए जिवह कर देते है। जब तक मेहमान घर मे रहता है, उसकी इज्जत को वे अपनी इज्जत समझते है, और अगर कोई उस पर किसी तरह का हमला करता है तो उसके वचाव के लिए वे अपनी जान तक दे डालते है।

अरबो का सामाजिक जीवन भारत से कई वातो मे मिलता है, जैसे मर्द रोजी कमाते है और औरते गृहस्थी के कामो की जिम्मेदार होती है। शादी-व्याह की रस्मे वहुत सादी और भारतीय मुसलमानो की रस्मो से मिलती है। औरते आम तौर पर वुर्का ओढती है। घर के काम-काज के सिलसिले मे वे वाहर निकलती है, पर वुर्का ओढ कर।

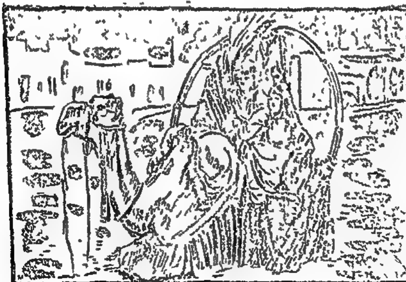
अरबो का जीवन अव तेजी से वदलता जा रहा है। खानावदोशी की जगह अव वे एक जगह वस कर रहने के आदी होते जा रहे है। इसका वडा कारण यह है कि गरीव अरवो को, जो अव तक पानी और भोजन की खोज मे फिरा करते थे, तेल के कारखानो मे अव अच्छी मजदूरी मिलने लगी है। इसके साथ ही, उनके रहन-सहन का स्तर भी ऊचा होता जा रहा है।



अरब खानाबदोश

अरब लोग प्रायः नखलिस्तान में कबीले बना कर रहते हैं। ये लम्बे, गोरे, मजबूत और मेहनती होते हैं। अरब स्त्रियां भी मेहनत से जी नहीं चुराती, बल्कि अपना काम बड़ी बुद्धिमानी और मुस्तैदी से करती हैं। हर घर में एक मुखिया होता है, जिसकी बात घर के सभी लोग मानते हैं। पूरी बस्ती का भी एक मुखिया होता है जिसे वे शेख कहते हैं। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक मामलों में बस्ती के सब लोग अपने शेख की राय मान कर चलते हैं। भारतवासियों के साथ अरबों का सम्बन्ध आज पूरी मित्रता का सम्बन्ध है।

पालकी में बैठीं अरब औरतें



(2)

तिब्बत



भारत के बहुत से रहने वाले दलाई लामा और पचेन लामा के नामो को जानते होगे। दलाई लामा तिब्बत के शासक थे और पचेन लामा वहा के सबसे बड़े धार्मिक नेता या पुरोहित है। पुराने तिब्बतियो का विश्वास था कि हर दलाई लामा मरने के तुरन्त बाद फिर किसी बच्चे के रूप मे जन्म लेता है। इसलिए दलाई लामा के मरने पर देश के कोने-कोने से सभी नए पैदा हुए बच्चो का पता लगा कर उनकी सूची तैयार की जाती थी। फिर देश के बड़े-बडे लामा और राज्य के अधिकारी कई दिन तक प्रार्थना करते थे। उसके बाद सबकी राय से तीन बच्चो के नाम सूची मे से चुन लिए जाते थे और अलग-अलग पर्चियो पर तीनो नाम लिख कर उन पर्चियो को एक सोने के बर्तन मे डाल दिया जाता था। उस बर्तन को खास उसी काम के लिए पुराने समय मे किसी सम्राट् ने बनवाया था। इसके बाद तिब्बत के बहुत से लोग जमा होकर सात-आठ दिन तक प्रार्थना करते थे। तब यह जानने के लिए कि कौन बच्चा दलाई लामा का अवतार है, एक आदमी आख मूद कर उस बर्तन मे से एक पर्ची निकाल लेता था। उस पर्ची पर जिस बच्चे का नाम होता था, उसी को 'दलाई लामा' मान लिया जाता था।

तिब्बत के इतिहास की पुरानी बातो की जानकारी अब भी बहुत कम है। पर जहा तक मालूम हो सका है, वहा के सबसे पुराने राजा 'बोन' कहलाते थे। वे टोने-टोटकों मे विश्वास करते थे और अनेक रहस्यपूर्ण देवी-देवताओ को मानते थे। उन्ही

राजाओ मे से एक राजा ने दो विवाह किए थे। उसकी दोनो रानिया बौद्ध धर्म को मानती थी। कहा जाता है कि उन्ही के प्रभाव से राजा, दरबारियो और सारी प्रजा ने भी बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था।

आठवी शती के अन्त मे 'पद्मसम्भव' नाम के एक भारतीय तिब्बत बुलाए गए। पद्मसम्भव ने वहा बौद्ध धर्म का बड़ा आन्दोलन चलाया। परन्तु उन्होंने शीघ्र ही यह समझ लिया कि तिब्बत के लोग बौद्ध धर्म के असल रुप को स्वीकार नही करेंगे। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म के साथ वहा के पुराने पूजापाठ को भी जोड दिया। इस प्रकार तिब्बत मे बौद्ध धर्म का वह रूप चल पडा जिसे हम 'लामा पथ' कह सकते हैं।

लामा पथ चलाने वाले को तिब्बत मे 'गुरु रिम्पोच' यानी महान् गुरु कहते हैं। वे उसे 'चेनरेजी' का अवतार मानते हैं, और उसकी पूजा करते हैं। 'चेनरेजी' उस देवता का नाम है, जिसे वहा के लोग अपने देश का सिरजनहार और रक्षक समझते है। लामा पथ के अनुसार 'आदि बुद्ध' यानी ससार मे सबसे पहले जन्म लेने वाले बुद्ध, हर तरह से पूर्ण हैं। ससार की कोई भी बात उनसे छिपी हुई नही है। उनके पांच रुप हैं, जिन्हें 'ध्यानी बुद्ध' कहा जाता है। 'ध्यानी बुद्ध' बहुत ही सूक्ष्म और पवित्र माने जाते हैं। उन पाच 'ध्यानी बुद्धो' की पाच सन्ताने हुई, जिन्हे 'ध्यानी बोधिसत्व' कहते हैं। प्रत्येक 'ध्यानी बोधिसत्व' को एक ब्रह्माड का सिरजनहार और कर्ता-धर्ता माना जाता है। दलाई लामा भी 'ध्यानी बोधिसत्व' के एक अवतार माने जाते हैं। इसीलिए उन्हे ससार के सब अधिकार प्राप्त होते हैं और उन्हे तिब्बत का एकछत्र शासक माना जाता है।

शक्तिशाली मगोल राजा, 'अल्तिला खा' ने सन् 1571 ई० मे तीसरे महान् लामा को दलाई की उपाधि दी थी। 'दलाई' का अर्थ है समुद्र। तब से शासन करने वाले तिब्बत के हर लामा को 'दलाई लामा' कहा जाता है।

लगभग 100 वर्ष बाद पाचवे 'दलाई लामा' ने समूचे तिब्बत का राजा होने का ऐलान किया। उनके इस दावे को चीन के सम्राट् ने भी स्वीकार कर लिया। उन्ही पाचवे दलाई लामा ने अपने प्रिय और पूज्य गुरु को 'पचेन रिम्पोच' की उपाधि दी। 'पचेन रिम्पोच' का अर्थ है 'महान् पवित्र गुरु'। पचेन रिम्पोच को दलाई लामा ने ध्यानी बुद्ध का अवतार भी मान लिया। इसलिए पचेन रिम्पोच का वारिस भी वही होता है, जिसको उनका अवतार मान लिया जाता है। पचेन रिम्पोच



दलाई लामा

को ही 'पंचेन लामा' भी कहते हैं। 'पचेन रिम्पोच' या 'पचेन लामा' धर्म और दर्शन के मामले मे दलाई लामा से बड़ा होता है। पर उसे राजकाज के मामलो मे कोई अधिकार नही होता । यही कारण है जो 'पचेन लामा' की स्थिति अक्सर डावाडोल रहती है । यहा तक कि पिछले 'पचेन लामा' को सन् 1923 ई० मे चीन भागने के लिए मजबूर होना पडा था। उनकी मृत्यु भी वही हुई। मौजूदा पचेन लामा को भी चीन के लोगो ने ही 'तशील लुम्पो' के मठ मे पिछले पचेन लामा का उत्तराधिकारी बनाया था । वर्तमान दलाई लामा तिब्बत के चौदहवे दलाई लामा हैं।

चारो ओर पहाडो से घिरा हुआ तिब्बत ससार का एक बहुत ऊचा पठारी प्रदेश है । उसका क्षेत्रफल हमारे देश के क्षेत्रफल से दो-तिहाई से कुछ कम, लगभग साढे सात लाख वर्गमील है। वहां की कुल आवादी 60 और 70 लाख के बीच है, और हमारे देश की आवादी लगभग 44 करोड है। तिब्बत के अधिकतर लोग दक्षिणी और पूर्वी इलाको मे रहते है। पश्चिमी भाग मे आवादी बहुत ही कम है।

तिब्बत का अधिकतर भाग समुद्र के धरातल से 16,000 फुट की ऊचाई पर है । इसलिए वहा सर्दी खूब पड़ती है । उत्तर-पश्चिमी भाग मे तो लगभग सारे साल बर्फ जमी रहती है। गर्मी के दिनो मे ऊचे पठार के कारण वहा तेज और सख्त धूप होती है। दक्षिण-पूर्वी भाग मे सर्दी कुछ कम होती है। मानसूनी वादल हिमालय को पार नही कर पाते, इसलिए तिब्बत मे वर्षा नही होती । केवल गर्मी के दिनो मे दक्षिण-पूर्वी इलाके मे थोडी वर्षा हो जाती है।

तिब्बत को प्राकृतिक बनावट के हिसाव से तीन भागो मे वाट सकते हैं। देश के उत्तरी भाग मे लगभग 16,000 फुट की ऊचाई पर चाग ताग के पठार है। उनके



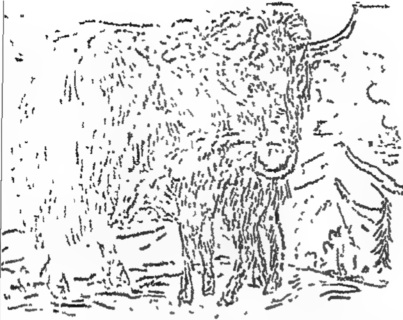
पंचेन लामा

उत्तर मे 'क्युनलुन' के पर्वत है और दक्षिण मे 'सागपो' नाम की नदी बहती है। यहा बहुत सी झीलें है, जिनका पानी खारा है। झीलो के खारी पानी से नमक बनाया जाता है। उस इलाके मे जगल नही है, हा कही-कही घास जरूर पैदा होती है। ठडे जलवायु के कारण उस भाग मे पशु बहुत कम है, इसलिए घास की थोडी उपज भी काफी होती है। कही-कही मूली और आलू के खेत भी उस भाग में दिखाई देते है, पर अनाज नही पैदा होता। इसलिए खाने के लिए दक्षिण-पूर्वी मैदानो से जो लाया जाता है। वहा के रहने वाले अधिकतर खाना-बदोश है, जो याक और भेडो के झुड लिए चरागाहो की खोज में घूमा करते है। याक हमारे यहा के बैल जैसा एक पशु होता है, जो हल चलाने तथा सामान ढोने के कम आता है।

मैदानी इलाका

उत्तरी पठार के दक्षिण का इलाका मैदानी है। उसमे सिंधु, सतलुज और सागपो नदिया बहती है। तिब्बती भाषा मे 'सागपो' का अर्थ है, 'पवित्र करने-वाला'। धार्मिक दृष्टि से हमारी गगा की भाति ही तिब्बत मे सांगपो नदी पवित्र मानी जाती है। वही सागपो नदी जब भारत की सीमा मे दाखिल होती है तो वह 'ब्रह्मपुत्र' कहलाने लगती है। उस नदी के विषय मे दो बाते बडी ही दिलचस्प है। एक तो यह कि उसकी सहायक नदिया उसकी उल्टी दिशा से यानी पूर्व से पश्चिम की ओर बह कर उसमे मिलती है। दूसरी यह कि 12,000 फुट की ऊचाई पर बहते हुए भी यह नदी इतने धीमे-धीमे बहती है कि उसमें बडी आसानी से नाव चला सकते है।

तिब्बत की नावे हमारे यहा की नावो जैसी नही होती। तिब्बत के मल्लाह बांस या लकडी के ढाचे पर याक की खाले मढ कर अपनी नाव बनाते है। कुछ लोग वृक्षो की लचीली और मजबूत टहनियो को बट कर उनसे भी नाव तैयार कर लेते है।



याक

ल्हासा, गिगात्सी और जियात्सी, इस भाग के प्रसिद्ध नगर हैं। यह तिब्बत का मुख्य भाग है। यहीं पर दलाई लामा और सरकारी कर्मचारी लोग रहते हैं।

चांग तांग और चीन के बीच का इलाका

चाग ताग के पठार तथा खास चीन के वीच कुछ पहाड़ और घाटिया है। वहा एवाग हो, याग्त्सी, क्यांग, मीक्यांग और सालवीन नदियां वहती हैं। पहली दो नदियां चीन और वाकी दोनो स्याम और वर्मा मे वहती हुई चली जाती है। याग्त्सी, क्यांग, मीक्यांग और सालवीन तिब्वत मे एक-दूसरे से लगभग सट कर वरावर-वरावर वहती है। उस इलाके के कुछ जिले औरो के मुकावले मे सभ्यता मे आगे वढ़े हुए है। 'दरगी' वहा का सबसे अधिक सभ्य जिला है।

तिब्वत वहुत ऊंचा-नीचा देश है, इसलिए वहा रेले नही है। सवारी के लिए आम तौर से टट्टू और खच्चर काम मे लाए जाते है। माल ढोने का काम कुलियो और याक से लिया जाता है। ऊचे-ऊंचे पहाड़ो मे अलग-अलग दर्रे हैं। यात्री और व्यापारी उन्ही मे से होकर आते-जाते हैं। हाल ही में चीन की नई जनवादी सरकार ने तिब्वत से वरावर सम्वन्ध वनाए रखने के लिए तिब्वत से चीन तक एक नई सडक वनवाई है।

दलाई लामा का महल



तिब्वत में खनिज पदार्थ वहुत मिलते हैं। सोना, चादी, तांबा, लोहा आदि लगभग सभी तरह की धातुएं वहां पाई जाती हैं। परन्तु अभी उनके निकालने का कोई खास प्रवन्ध



घोडे पर सवार एक तिब्बती

नही हो सका है। देश के दक्षिण-पूर्वी और बीच के भागो मे गेहू, जौ, मटर, कपास और कही-कही मक्का और चावल भी पैदा होते है। इस इलाके मे जगल भी है, जिनमे चीड, अखरोट, वास तथा दूसरी कीमती लकडिया मिलती है। जानवरो मे आमतौर से भेड़ और बकरिया बहुत पाली जाती है, इसलिए ऊन की कताई-बुनाई का काम वहा का एक खास घरेलू धधा है।

तिब्बत के निवासी शक्ल-सूरत और आदतो मे बहुत कुछ साइबेरिया के मैदानो (स्टेपीज) के चरवाहो से मिलते है। उनमे सर्दी और भूख सहने की शक्ति बहुत होती है। वहां के सभी निवासी किसी-न-किसी रूप मे किसी मठ या विहार से सम्बन्धित होते है।

तिब्बती पुरुष ठिगना होता है। अक्सर उसका कद 5 फुट 5 इच होता है। केवल पूर्वी तिब्बत मे पौने छ फुट कद के आदमी मिलते है। औरतो का कद और भी छोटा होता है। औरतो का सिर ऊपर से चपटा और लम्बा होता है, और उनके बाल लम्बे, काले और किसी-किसी के घुघराले भी होते है। उनकी आखे भूरी, नाक मोटी और चपटी, नथुने चौडे, गाल की हड्डी उठी हुई, दात मजबूत मगर ऊचे-नीचे, कान बडे और उठे हुए, हथेली गोल, कधे चौड़े और पाव के पजे छोटे और चौडे होते है। पुरुषो और स्त्रियो दोनो के शरीर का रग हल्का भूरा होता है।

पुरुषो और स्त्रियो, दोनो की पोशाक एक लबादे जैसी होती है, जिसमे पूरी गर्दन और कलाई तक हाथ ढके रहते है। आम तौर से पुरुषो का लबादा घुटनो तक और स्त्रियो का टखनो तक होता है। पर रईसो और पुरोहितो के लबादे भी टखनो तक होते है। गर्मियो मे मामूली आदमी सूती कपडे और बडे आदमी रेशमी लबादे बनवाते है। जाडो मे लबादे के अन्दर भेड की खाल का अस्तर लगा दिया जाता है। मध्य तिब्बत मे स्त्रियां भडकदार चूनरी जैसी पोशाक भी पहनती है। इधर कुछ दिनो से वहा कमीज और पाजामे का रिवाज भी चला है, लेकिन तिब्बती कमीज-पाजामे की काट यूरोप के ढग की नही होती। तिब्बती लोगो के जूते कपडे,

चमडे या ऊन के बने होते हैं। वे लोग रंग-बिरंगे जूते बहुत पसन्द करते हैं।

दूध से बनी हुई चीजें, मांस, जौ का आटा, पनीर और चाय उनका रोज का खाना है। आपस के व्यवहार में वे अदब-कायदों का बहुत ध्यान रखते हैं। छोटे और बड़े सबसे बातचीत करने के कुछ नियम होते हैं, जिनका पालन सबको करना पडता है।

तिब्बत में रमते हुए व्यापारियों का एक वर्ग है। वे काले याक (तिब्बती बैल) के बालो के बड़े-बड़े तम्बू लिए घूमते रहते हैं। उत्तर में जाकर वे झीलों से नमक निकालते हैं, पूर्व की ओर चीन के भिन्न-भिन्न भागों में जाकर चाय का व्यापार करते हैं और दक्षिण की ओर से भारत में आकर ऊन, खाल तथा चीनी रेशम की तिजारत करते हैं। वाल्मीकि रामायण में चीनांशुक (चीनी रेशमी कपड़ा) को बड़ा पवित्र माना गया है।

तिब्बती लोग केवल उन्हीं पहाड़ो के नाम रखते हैं जिनकी वे पूजा करते हैं। कोमलहारी पहाड़ (देवताओं का पहाड) बहुत पवित्र माना जाता है। यह पहाड 'तुना' और 'फारी' के मैदानों के साथ-साथ पचास मील तक चला गया है। उसी तरफ और भी कई ऐसे पहाड़ हैं जिनकी पूजा की जाती है।



तिब्बती स्त्रियां

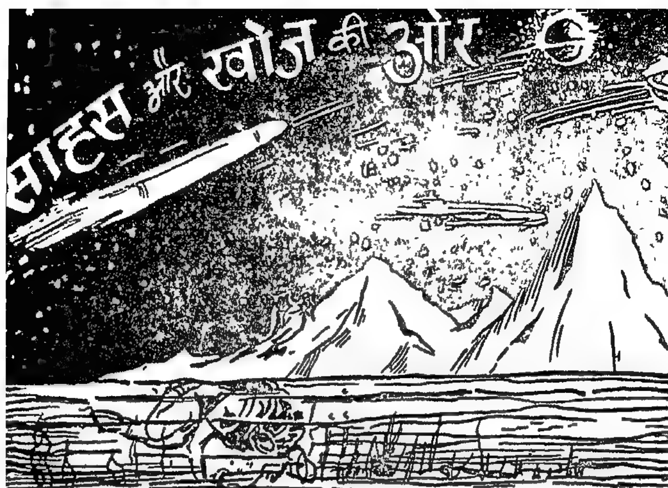


खेतों में काम करती तिब्बती स्त्रियां

तिब्बत के मेले बहुत प्रसिद्ध हैं। कुछ मेले धार्मिक और कुछ मौसमी होते हैं। धार्मिक मेलों में लामा लोगों का बड़ा सम्मान किया जाता है। बड़े लामा पूजा में सबसे आगे रहते हैं। पूजा के बाद नाच होता है। नाच में लामा लोग भी भाग लेते हैं। लोग तरह-तरह के स्वांग बना कर नाचते हैं। स्वांगों में अधर्म और अन्याय पर धर्म और न्याय की विजय दिखाई जाती है। मेले के अन्तिम दिन आटे का एक पुतला बना कर लामा लोग उसके आगे-पीछे नाचते हैं। उस नाच में राक्षस को मारने का स्वांग रचा जाता है। तिब्बती नाचों में तरह-तरह के बाजे भी बजते हैं। उनमें से कोई-कोई बाजे नौ फुट से भी अधिक लम्बे होते हैं। मेलों में स्त्री-पुरुष सभी एक साथ भाग लेते हैं।

तिब्बत बहुत पुराने समय से चीन का एक भाग रहा है। वहां के शासक चीन के सम्राट् को कर देते रहे हैं। उसके बदले में चीन के सम्राट् पर तिब्बत की रक्षा की जिम्मेदारी होती थी। सन् 1950 ई० में चीन की नई सरकार ने फौज भेज कर तिब्बत को सीधा अपने अधिकार में ले लिया।

अब तिब्बत पर दलाई लामा का शासन नहीं रहा। दलाई लामा इस समय भारत में रहते हैं और हजारों तिब्बती भारत भाग आए हैं। तिब्बत अब चीन का एक प्रदेश है।



हुएनसांग

बौद्ध धर्म के मानने वालो के लिए भारत उतना ही पवित्र देश है जितना कि मुसलमानो के लिए अरब या ईसाइयो और यहूदियो के लिए फिलस्तीन। इसलिए दूसरे देशो के बौद्ध मतावलम्बी भारत की यात्रा के लिए बहुत पहले से आते रहे है। हुएनसांग की भारत-यात्रा भी इसी सिलसिले की एक कड़ी थी।

हुएनसाग एक चीनी यात्री था। वह बौद्ध धर्म को मानता था। वह सातवी सदी ईसवी के शुरू मे भारत आया था। बौद्ध धर्म के बारे मे जो प्रश्न उसके दिल में उठे, उनको हल करने के लिए उसने यह यात्रा की थी। उसने उस समय के भारत का आखो देखा हाल लिखा है। हुएनसाग से भी पहले सन् 400 ईसवी मे फ़ाहियान नाम का एक और चीनी यात्री भारत आ चुका था। चीन से भारत आने वाला वह शायद पहला यात्री था। उसने भी अपनी भारत-यात्रा का हाल लिखा है। उसकी यात्रा का हाल पढ कर हुएन-साग के दिल में भारत आने की इच्छा और बढी।

सन् 603 ई० मे चीन के हुनाग सूबे के एक बौद्ध घराने मे हुएनसाग का जन्म हुआ था। 13 साल की उम्र में उसने बौद्ध मत की दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षु बन गया। तब ही से

उसने बौद्ध धर्म की पुस्तकें पढनी शुरू कर दी। उन दिनों चीन में 'सु' राजकुल का अन्त होने पर जो उथल-पुथल मची, उसके कारण हुएनसांग इधर से उधर मारा-मारा फिरता रहा। इसी भाग-दौड में एक जगह उसे फाहियान की वह पुस्तक मिल गई जिसे पढ कर उसके दिल में भारत आने और बौद्ध धर्म को समझने का विचार पैदा हुआ। पर चीन मे उन दिनों जो राजा था, उसे हुएनसांग का यह इरादा पसन्द न आया और उसने उसे भारत जाने की आज्ञा नही दी। लेकिन हुएनसांग भी अपनी धुन का पक्का था। वह लाचू पहुचा। लाचू चीन का एक शहर था, जहा तिब्बती व्यापारियों का आना-जाना रहता था। हुएनसांग ने उन व्यापारियो को बौद्ध मत की पुस्तकें पढने को दी और उनको भारत की यात्रा करने का अपना इरादा भी बताया। उन लोगो ने उसकी यात्रा के लिए आवश्यक प्रबन्ध कर दिया। इस तरह हुएनसांग सन् 629 ई० में भारत की ओर चल पडा। गोबी के विशाल रेगिस्तान और उत्तर एशिया के देशों को पार करता हुआ हुएनसांग उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत मे दाखिल हुआ।

भारत के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि यह देश तीन ओर समुद्र से और उत्तर मे बर्फीले पहाडो से घिरा हुआ है। इसका उत्तरी भाग चौडा और दक्षिणी भाग सकरा है, जैसे आधा चद्रमा। हुएनसांग के बयान के अनुसार उस समय भारत 70 प्रदेशों मे बटा हुआ था। उसने इन सब भागो का इकट्ठा और अलग-अलग हाल पूरे ब्यौरे के साथ दिया है। हुएनसांग की यात्रा-वर्णन से उस युग की जो बाते हमें मालूम होती हैं, उनमें से कुछ नीचे दी जाती है।

शहरो और बडे-बडे गावो, दोनो के चारो ओर ऊची और चौड़ी दीवारें खडी की जाती थी। उनमे जाने के लिए बडे-बडे फाटक होते थे। वधिक, मछेरे, नचनिए, जल्लाद, भगी और इसी तरह के दूसरे लोग अछूत माने जाते थे। उनके घर आबादी के भीतर ही होते थे, लेकिन उन्हे हमेशा सडक के बाई ओर ही चलना पडता था। घर कच्ची ईंटो और खपरैल से बनाए जाते थे और मिट्टी में गोबर मिला कर दीवारो पर पलस्तर कर दिया जाता था।

बैठने और आराम करने के लिए, क्या राजा और क्या प्रजा, सभी लोग चटाई इस्तेमाल करते थे। बडे आदमियो की चटाइया कामदार होती थीं। राजा की गद्दी पर बहुमूल्य ओहार डाला जाता था। उसमे हीरे, जवाहर और मोती टंके रहते थे।

अधिकतर लोग धोती, लुगी और चादर की तरह के बिना सिले कपडे पहनते थे। फूलदार या कढे हुए कपड़ो की किसी को चाह न थी। मर्द कमर के चारो ओर

धोती लपेटते थे। औरतें साडी पहनती थी, जिससे उनका सारा शरीर ढका रहता था। उत्तर भारत मे, जहा जाडा अधिक होता है, बडी पहनने का रिवाज था। कुछ लोग खड़ाऊं पहनते थे, मगर अधिकतर लोग नंगे पांव ही आते-जाते थे। लोग सफाई का खास तौर से ध्यान रखते थे। दातुन, स्नान, और भोजन के बाद कुल्ला आम तौर से सब करते थे।

शिक्षा आम थी और सात साल की उम्र से शुरू होती थी। हिन्दू धर्म-शास्त्रो की शिक्षा केवल ब्राह्मणो को ही दी जाती थी। बौद्ध मत मानने वालो के लिए शिक्षा का अलग प्रबन्ध था। देश भर मे बौद्धों के 18 बड़े-बड़े विद्यालय थे।

लोग आम तौर से ईमानदार, सच्चे और नेक थे। लेन-देन मे किसी तरह का छल-कपट न था। न्याय करने मे वे सचाई से काम लेते थे। लोगो मे चालबाजी और मक्कारी बिल्कुल न थी। सब लोग बात के धनी होते थे। लोगो की रोजमर्रा की बातचीत मे लोच और रस होता था। राजकीय कानूनो की पाबन्दी का बडी सख्ती से पालन किया जाता था। किसान अपनी पैदावार का केवल छठा भाग मालगुजारी के रूप मे देते थे। बाकी कर नाम मात्र को थे। व्यापारी मामूली चुगी देकर पानी और खुश्की के रास्ते चाहे जहा से माल लाते और ले जाते थे।

हुएनसांग ने भारत के जिन राजाओ के नाम लिखे है, उनमे राजा हर्षवर्द्धन का नाम खास है। हर्षवर्द्धन बौद्ध धर्म का मानने वाला था, परन्तु उसकी प्रजा अधिकतर हिन्दू थी। हर्ष की राजधानी कन्नौज थी, जो आज भी उत्तर प्रदेश का एक प्रसिद्ध शहर है। हर्ष कवि और लेखक भी था। उसकी राजधानी मे कवियों और लेखको का जमघट रहता था। धर्म के सम्बन्ध मे उसने अपनी प्रजा को पूरी आजादी दे रखी थी। वह अपनी हिन्दू प्रजा के त्योहारों और मेले-ठेलो मे बढ-चढ कर हिस्सा लेता था। हर्षवर्द्धन के समय मे भी प्रयाग में उसी तरह कुम्भ का मेला लगता था जैसे आज लगता है। हुएनसाग ने यह मेला देखा था। उसने लिखा है कि प्रयाग हर्षवर्द्धन के राज्य मे था। हर्ष सारे भारत के लोगों को इस मेले मे आने का न्योता देता था। जो लोग मेले मे जाते थे, वे सब राजा हर्षवर्द्धन के मेहमान होते थे। उनके भोजन आदि का सारा प्रबन्ध राज्य की ओर से किया जाता था। लगभग एक लाख आदमी दोनो समय भोजन करते थे। उनमे साधारण लोग भी होते थे और राजे-महाराजे भी।

हुएनसांग ने कुछ बाते ऐसी भी लिखी है, जो बहुत ही अजीब और अनहोनी मालूम होती है। इस तरह की एक बात अपराध की जाच और छानबीन के बारे मे है।

इसके लिए अपराधी को एक बोरे में बंद करके और उस बोरे से पत्थर बांध कर उसे पानी में फेंक दिया जाता था। अगर अपराधी डूब जाता और पत्थर तैरता रहता तो उसका अपराधी होना मान लिया जाता था, और अगर अपराधी पानी पर तैरता रहता और पत्थर डूब जाता तो अपराधी बेकसूर समझा जाता था। उसी तरह, लोहे की एक चादर को आग में तपा लिया जाता था। उस पर अपराधी को बैठा दिया जाता था। अगर अपराधी पर आग का कोई असर न होता तो उसे बेकसूर समझा जाता था, लेकिन अगर उसके बदन पर आग का असर होता तो समझा जाता था कि वह अपराधी है।

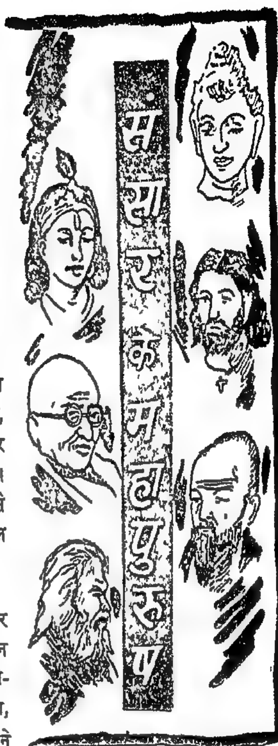
हुएनसांग 629 ई० में अपने देश से भारत-यात्रा के लिए निकला था। 17



हुएनसांग

वर्ष के बाद वह अपने देश को वापस लौटा। वापसी मे वह कश्मीर के ऊंचे पहाड़ पार करके काशगर और खुतन होता हुआ चीन पहुंचा। उस समय चीन मे 'ताग' खानदान का राजा सी-आन-फ़ो राज कर रहा था। उसने इस महान् यात्री का चीन मे शानदार स्वागत किया, जो भारत की मधुर स्मृति के साथ-साथ और भी बहुत से बहुमूल्य उपहार भारत से अपने देश ले गया था। इन उपहारो मे बौद्ध धर्म की 24 पुस्तको के अलावा महात्मा बुद्ध की 5 मूर्तियां भी थी—दो सोने की, एक चांदी और दो चन्दन की।

(1)



इखनातन

इखनातन वह पहला राजा था जिसने स्वय अपना एक धर्म चलाया। उसका नाम सुलेमान, अशोक, हारुअल-रशीद और शार्लमान आदि ससार के दूसरे बुद्धिमान राजाओ के साथ लिया जाता है। इखनातन का जन्म इन सब राजाओ से पहले ईसा से लगभग तेरह सौ साल और आज से कोई 33 सौ साल पहले हुआ था।

इखनातन ने जग नही जीता, लडाइया नही लडी, और न उसने अपना राज्य बढाने के लिए इसान का खून बहाया। उसने कमजोर इसानो को नही, बल्कि ऐसी देवी-देवताओ और उनके शक्तिशाली पुजारियो को जीता, जिन्हे जीतना असम्भव समझा जाता था। मिस्र के पुराने धर्म मे अनगिनत देवी-देवताओ की पूजा होती थी। इखनातन ने देवी-देवताओ के उस लश्कर को मिटा कर एक नया धर्म चलाया। सबसे बडी बात यह है कि उसने अपना धर्म तब चलाया जब वह केवल पन्द्रह साल का लडका था।

जब केवल पन्द्रह साल के एक लडके के कारण बडे-बडे शक्तिशाली पुजारियो का रौब उखडने लगा, तो उन्होने उसको पागल और दीवाना कहा। मगर न वह पागल था, न दीवाना। वह दीवाना था तो सचाई का।

इखनातन बडे घराने का बेटा था। मिस्र का राजा तीसरा आमेनहोतेप उसका पिता था, उसकी नसो मे शायद सीरिया के मितन्नी आर्यो का खून बहता था। उसकी मा का नाम तीई था। उसकी रगो मे जगली जातियो का रक्त बहता था। इससे यह समझा


इखनातन

जा सकता है कि इखनातन की आत्मा में जो बेचैनी और तड़प थी, वह स्वाभाविक थी। दो खून और दो ताकतें मिल कर उस बालक में उमड़ रही थी। शायद यही कारण था कि वह केवल पन्द्रह साल की उम्र में एक शानदार मजहब चलाने में सफल हुआ। उसका तूफानी जीवन केवल 26-27 साल की उम्र में खत्म हो गया। पर अपने जीवन के 13वें से लेकर 26वें वर्ष तक के 13 वर्षों में ही उसने वह कर दिखाया जो सौ-सौ बरस जीने वाले न कर सके।

इखनातन ने होश सम्भालते ही मिस्र के पुराने इतिहास पर नजर डाली। उसने अपने पुरखे फराऊनों के लम्बे इतिहास का भी परिचय प्राप्त किया। उसने देखा कि देवी-देवताओं की बढ़ती हुई संख्या और उनके पुजारियों की बढ़ती हुई शक्ति के सामने उसके पुरखे 'फराऊन' किस प्रकार बेबस और तुच्छ बनते गए। यह देख कर उसके जी को गहरी चोट पहुंची। जब भी वह सोचता, देवी-देवताओं की वह भीड़ और उस भीड़ के कारण फैली हुई गड़बड़ी उसे बौखला देती। वह चाहता था कि पुजारियों की मनमानी और अन्धविश्वासों की बजाय देश में एक समझदारी का धर्म और उसके साथ ईमानदारी फैले। उसे पता था कि उसके पुरखों ने सारे मिस्र और उत्तर अफ्रीका से लेकर पश्चिम एशिया में सीरिया, फिलस्तीन और ईराक तक का भाग जीत कर अपने राज में मिला लिया था। वे सब देश एक शासन की छाया में शान्ति से रहते थे। यह बात उसके मन में बैठ गई और उसने अपने उसी युग को फिर वापस लाना चाहा।

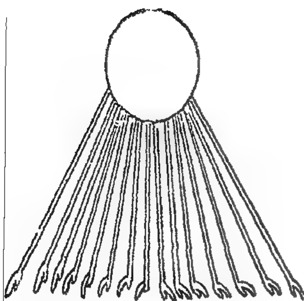
उसने सोचा, जैसे नील नदी के विकास की जगह से लेकर फिलस्तीन और सीरिया तक एक ही फराऊन का राज है, वैसे ही देवताओं की झूठी भीड़ की जगह फराऊनी साम्राज्य के समूचे ओर-छोर में क्यों न एक ही देवता की पूजा हो। पर वह एक देवता कौन हो ? वह सोचता रहा। अन्त में एक दिन सोचते-सोचते उसकी दृष्टि

देवी-देवताओं की भीड़ को पार करके, आकाश में चमकते-दमकते गोले की ओर गई। उसकी आंखों में चमक पैदा हुई और उसने सूर्य को अपना देवता बना लिया।

पुरानी जातियों के विश्वास में सूरज के गोले का हमेशा एक खास स्थान रहा है। उसे जानने-पहचानने की कोशिश सभी जातियों ने की। यूनानियों का प्रोमेथियस् उसी को जानने के लिए उड़ा था और अपने पंख झुलसा कर धरती पर लौटा था। इस प्रकार उसको यह जानकारी तो हो गई कि सूरज का गोला बहुत ही गर्म है। पर वह यह न जान सका कि सूरज के पीछे कौन सी शक्ति है। फिर भी इतना तो वह समझ ही गया कि उसके पीछे कोई-न-कोई शक्ति है जरूर। आज से हजारों साल पहले के उपनिषदों का भी यही विचार था। वे सूरज के गोले को ब्रह्म की आंख कहते थे।

उपनिषदों के ऋषियों की तरह, लेकिन उनसे लगभग एक हजार साल पहले, इखनातन को भी कुछ ऐसा ही लगा कि सूरज के गोले के पीछे जरूर कोई शक्ति छिपी है। इखनातन के दिल में यह बात बैठ गई कि प्रकृति की सबसे बड़ी सचाई सूरज के गोले के पीछे की वह सत्ता है, जिसे हम नहीं जानते। पर किसी चीज को न जानना उसके न होने का सबूत नहीं हो सकता। शक्ति की पूजा तो हो ही सकती है, चाहे उसकी मूर्ति न बन सके। उसने सोचा, भले ही वह शक्ति हमारी समझ के बाहर हो, हमारी बुद्धि भले ही उस तक न पहुच पाए, लेकिन, चमकते-दहकते सूर्य के रूप में उसकी ज्योति तो दुनिया में बरस ही रही है। इस तरह सूर्य के गोले के पीछे की सत्ता इखनातन के विश्वास की दैवी शक्ति बनी, और उसी को उसने पूजा। उसने उस शक्ति को 'अतन' नाम दिया।

पर दैवी शक्ति को जान लेना और बात है, और उस जानकारी को दूसरों में फैलाना और बात है। जब सचाई का बोध होता है तब यह सवाल उठता है कि उस सचाई की जानकारी को अपने तक ही रखा जाए या उसे दुनिया में फैलाया जाए। बुद्ध को जब 'बोध' हुआ था, तब यही सवाल उनके सामने भी उठा था, और उन्होंने उसे दूसरों में फैलाना तय किया था। इतना ही नहीं, बल्कि बौद्ध धर्म में अकेले निर्वाण पाने की कोशिश को समझदारों ने 'हीनयान' कहा, यानी छोटा वाहन, जिस पर कोई एक खास मनुष्य ही सवार होकर निर्वाण का पथ पार कर सकता है। बोधिसत्व ने कहा था कि जब तक 'निर्वाण' एक भी मनुष्य, बल्कि एक भी तुच्छ कीट की पहुंच से बाहर रहेगा, तब तक



अतन

मैं निर्वाण नहीं लूंगा। इस विचार को 'महायान' यानी बड़ा वाहन कहा गया, जिसमें सवार होकर दुनिया के सभी मनुष्य 'निर्वाण' पा सकें।

कहते हैं कि जो पाता है, वह देता भी है। इखनातन ने भी पाया था और पाई हुई चीज को अपने तक ही रखना उसे स्वार्थ लगा। उसने तय किया कि वह देकर रहेगा, मगर मिस्र की दुनिया में उस नई सचाई को फैलाना आसान न था। सामने अन्धविश्वासों, रीति-रिवाजों, देवताओं और उनके शक्तिशाली पुजारियों की मजबूत दीवारें थीं, पर उनसे भी मजबूत था इखनातन का विश्वास और उसका इरादा। इसलिए उसने पुजारियों से लोहा लेना तय किया। नए विचारों ने पुराने विश्वासों पर चोट की। नए और पुराने के बीच घमासान युद्ध छिड़ गया।

इस लड़ाई में एक औरत ने इखनातन की जी-जान से सहायता की। उसका नाम था नेफरतीति। वह पहले इखनातन की बहन थी, बाद में पत्नी बनी। इखनातन के पास एक ही हथियार था—सूर्य के पीछे की जो सत्ता थी, उसकी जानकारी। उस हथियार पर उसे पूरा भरोसा था। और उसने उसका भरपूर इस्तेमाल भी किया। इखनातन उस हथियार से पुराने देवताओं की भीड़ छाटने लगा। पुराने देवता गिरने लगे। यहां तक कि रूहों और दोजख का देवता ओसिरिस भी न बच सका। इन पुराने देवताओं में 'रा' और 'आमेन' ऐसे नाम थे जिनका मतलब भी सूर्य ही होता था और जिनकी पूजा सदियों पहले से मिस्र में होती आई थी। इसलिए वे लाखों लोग, जो 'रा' और 'आमेन' को मानते थे, उनकी समझ में नहीं आया कि एक नए सूर्य देवता 'अतन' की क्या जरूरत है और उसे क्यों माना जाए? आम लोगों को इसका सूक्ष्म भेद बताना कठिन था कि 'अतन' स्वयं वह देवता नहीं है, जो दुनिया की हर चीज में रह रहा है, जो एक है, और जिसके परे कुछ नहीं है, जो अपनी ही ज्योति से प्रकाशित है, बल्कि 'अतन' उस देवता का, उस सत्ता का एक रूप है।

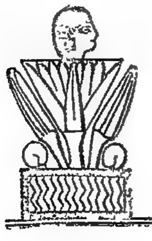


इखनातन पत्नी और बच्चों के साथ

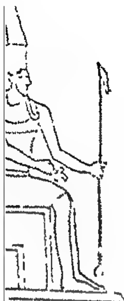
शंकराचार्य के 'अद्वैत ब्रह्म', इजील के नबियो के 'एकेश्वरवाद', मुहम्मद के 'ला एलाह इल्लल्लाह' जैसे धार्मिक विश्वासो से सदियो पहले इखनातन लगभग वैसे ही विचारो के बीज बो रहा था, और वह भी केवल पन्द्रह साल की आयु मे। पन्द्रह साल की आयु में इखनातन ने 'अतन' के 'एकेश्वरवाद' का आन्दोलन चलाया। इतिहास मे वह पहला व्यक्ति था, जिसने एक भगवान को सभी जड और चेतन चीजो के जन्म-मरण का कारण माना। उसका धर्म पहला धर्म था, जिसने दुनिया को एक भगवान का विश्वास दिया।

मिस्र के पुराने राजाओ की राजधानी का नाम थीव्स था। इखनातन ने सूर्य के नाम पर अपनी नई राजधानी बसाई, जिसका नाम 'अखेतेतन' पड़ा। उस राजधानी के बाहर वह कभी न निकला, क्योकि उसने अशोक से भी हजार बरस पहले यह तय कर लिया था कि देश जीतने और लडाई लडने के लिए राजधानी से बाहर नही जाएगा। दूर के प्रान्तो मे बगावते हुई, पर वह अपनी जगह से नही हिला। वह चुपचाप अपने नए धर्म का प्रचार करता रहा।

जब इखनातन ने अपने नए धर्म का प्रचार किया, तो पुराने देवताओ के पुजारियो ने ऐलान किया कि इखनातन काफिर है। जवाब मे इखनातन ने उनकी माफिया छीन ली, उनको बेघर कर दिया और उनके देवताओ को दिए गए इलाके भी ले लिए।



रा

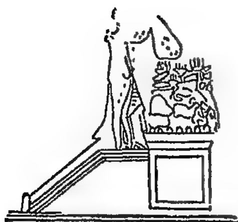

आमेन

इसमें सन्देह नही कि इखनातन मे जबरदस्त कट्टरता थी और उसने काफी सख्ती से काम लिया। उसने अपने पूरे राज्य मे पुराने देवताओं की पूजा बन्द कर दी, उनके मन्दिर उजाड़ दिए। उसने हर जगह लेखो मे से अपने देवता 'अतन' के दुश्मन 'आमेन' नाम के देवता का नाम मिटवा दिया। यहा तक कि उसके बाप के नाम आमेनहोतेप मे जो 'आमेन' लगा हुआ था, उसने उसे भी मिटा दिया।

एक भगवान या एक खुदा को मानने वाला वह पहला मजहब, जिसे इखनातन ने चलाया था, तेरह साल तक कायम रह कर उसकी मृत्यु के बाद खत्म हो गया। इखनातन के दुश्मनो ने उसे मिटा दिया। पर इखनातन का नया धर्म, धर्म के इतिहास मे अमर हो गया। अपने देश के धार्मिक विचारो और विश्वासो मे सुधार करने के अतिरिक्त, इखनातन ने और भी कई बड़े-बड़े काम किए। उस समय और देशो की तरह मिस्र के राजा लोग भी एक खास ढग का जीवन बिताते थे। कोई राजा बिना सवारी के महल से बाहर नही निकलता था। इखनातन ने ऐसे रिवाजो को तोड़ फेका। वह मामूली प्रजा की तरह रहने लगा। वह अपनी तीन वर्ष की बच्ची की उगली पकड कर मिस्र की गलियो मे घूमा करता। अगर कोई उससे पूछता तो वह कहता कि क्या राजा आदमी नही होता। उसने दूर के इलाको, सीरिया आदि मे रहने वाली अपनी फौजों को वापस बुला लिया। जब मन्त्रियो ने बताया कि ऐसा करने से राज्य के वे इलाके आपके अधिकार से निकल जाएगे, तो उसने उत्तर दिया—"हमे किसी प्रदेश पर वहा के रहने वालों की इच्छा के विरुद्ध राज करने का अधिकार नही है। जबरदस्ती किसी पर राज नही करना चाहिए।" यद्यपि कही-कही इससे बगावतें भी हुईं, पर इखनातन अपने इरादे से नही हटा।

इखनातन कवि भी था और उसने अपने देवता सूर्य की शोभा का वर्णन करने के लिए कविताएं भी लिखी। ये उपनिषदो की कविताओ से कम चमत्कारी नही थी। ये सुनने और पढने वालो के दिलो मे बैठ जाती थी। इखनातन की लिखी हुई कविता की कुछ पंक्तिया तेल एल-अमरना की चट्टानो पर खुदी मिली हैं। इनमे से कुछ ये हैं :—

जब तू पश्चिमी आकाश के पीछे डूब जाता है,
दुनिया अन्धेरे मे छिप जाती है, मुर्दो की तरह,
हर शेर तब अपनी मांद से निकल पड़ता है,



इखनातन का पूजा स्थान

साप अपने बिलो से बाहर आ जाते है, डसने लगते है;
अन्धेरे का राज फैल चलता है, सन्नाटा दुनिया
पर अपनी काया डालता चला जाता है ।
चमक उठती है धरती, जब तू आसमान मे निकल पड़ता है,—
जब तू आसमान की चोटी पर अतन की आख से दिन मे देखता है,
अन्धेरा लुप्त हो जाता है ।
जब तेरी किरणे फैलने लगती है, इंसान मुस्करा उठता है,
जाग उठता है, अपने पैरो पर खड़ा हो जाता है, तू ही उसे जगाता है ।
अपने शरीर को वह धो डालता है, कपडे पहन लेता है,
फिर उगते हुए तेरे लाल गोले को हाथ उठा कर पूजता है,
तेरे आगे सिर नवाता है ।

× × ×

नावें नील की धारा में चल पडती है, धारा के साथ भी, विरुद्ध भी ।
सडकें और पगडडिया खुल पड़ती है, कि तू उग चुका है ।
तेरी किरणो को छूने के लिए नदी की मछलिया उछल पड़ती है,
तेरी किरणें फैले हुए समुद्र की छाती में कौध जाती है ।
तू ही मां के गर्भ मे बच्चे को सिरजता है,
आदमी मे आदमी का बीज रखता है,
तू ही कोख मे बच्चे को प्यार से पालता है, जिससे वह रो न पडे,
तू ही धाय है, कोख के बालक के लिए ।
और तू ही जिसे सिरजता है उसमे सास डालता है,
और जब वह मां की कोख से धरती पर गिरता है,
(तू ही) उसके गले में आवाज डालता है,
उसकी जरूरते पूरी करता है ।

× × ×

तेरे कामो को भला कौन गिन सकता है ?
और तेरे काम हमारी दृष्टि से ओझल है, दृष्टि से परे ।

ओ मेरे देवता, मेरे एक देवता, जिसकी शक्ति का कोई दावेदार नहीं।
[illegible] अपनी इच्छा के अनुसार।

× × ×

तू मेरे दिल में बसा है, तुझे कोई दूसरा जानता भी नहीं,
[illegible] तेरा बेटा अखनातन, जान पाया है तुझे।
और तूने ही उसे इस योग्य बनाया है कि वह तेरी हस्ती को जान ले।



(2)
कार्ल मार्क्स

इतिहास में ऐसा तो अनेक बार हुआ है कि आत्मा और परमात्मा, पाप और पुण्य की बातें बताने वाले महान् पुरुषों और पैगम्बरों के विचार सारे संसार में फैले, और दुनिया के कोने-कोने में लाखों मनुष्य उनके भक्त और शिष्य बने। पर राज-काज और रोटी-कपडे की बात बताने वाले महापुरुषों में कार्ल मार्क्स के सिवा आज तक कोई और ऐसा नहीं हुआ, जिसके विचार सारे संसार में फैले हो, और जिसके मानने वाले लगभग हर देश में हों, और करोड़ो की संख्या में हों।

कार्ल मार्क्स ने ही कम्युनिस्ट विचारधारा को जन्म दिया था। उन्होने कम्युनिस्ट रीति-नीति का ब्यौरा तैयार किया और कम्युनिस्ट संगठन की नीव डाली। आज दुनिया



ट्रिएर नगर, जहां मार्क्स का जन्म हुआ

के एक-तिहाई भाग मे कम्युनिस्ट सरकारे है, और जहा कम्युनिस्ट सरकारें नही है, वहा भी मार्क्स के विचारो का कुछ-न-कुछ असर है।

मार्क्स का जन्म जर्मनी के ट्रिएर नगर में 5 मई सन् 1818 ई० को हुआ था। मार्क्स के पिता की गिनती अच्छे वकीलो मे थी। 12 वर्ष की आयु मे मार्क्स अपने शहर के विद्यालय मे भर्ती हुए। अन्तिम परीक्षा में पास होने के लिए एक लेख लिखना पड़ता था। मार्क्स ने भी एक लेख लिखा। उसका विषय था "अपना व्यवसाय चुनने पर एक युवक के विचार"। वह लेख अब भी मौजूद है। उसे पढ़ने से पता चलता है कि सत्रह साल की कच्ची आयु मे भी मार्क्स के विचार कितने पक्के थे। उन्होंने उस लेख में लिखा था कि "बिना स्वार्थ के मानवता की सेवा करना ही जीने का उद्देश्य है।" एक कहावत है कि पूत के पाव पालने में ही पहचान लिए जाते है। मार्क्स के बारे मे यह कहावत सही उतरी।

स्कूल की शिक्षा पूरी करके मार्क्स बॉन नगर के विश्वविद्यालय में भर्ती हुए। लेकिन वहा उनका जी न लगा और वह शीघ्र ही बर्लिन चले गए। बर्लिन विश्वविद्यालय मे भर्ती होकर उन्होंने न्याय-शास्त्र की पढाई शुरू की।

बर्लिन में उन दिनो प्रसिद्ध दार्शनिक हीगेल के विचारो का ज़ोर था। मार्क्स पर भी उनका प्रभाव पड़ा, मगर मार्क्स अन्धविश्वासी नही थे। वह हर बात पर गहराई से सोचते थे, और जिस नतीजे पर पहुचते थे उसे खुल कर कहने में कभी नही हिचकते थे। हीगेल के विचारो पर उन्होंने खूब सोचा और उनके विरुद्ध एक लम्बा लेख लिखा। वह लेख इतना महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि अप्रैल सन् 1841 में येना के विश्वविद्यालय ने उसी लेख पर मार्क्स को डाक्टर की उपाधि दी।

मार्क्स पढ-लिख कर बॉन विश्वविद्यालय मे प्रोफेसर बनना चाहते थे। पर वहां पहले ही गर्म विचार के प्रोफेसरो को निकाला जा रहा था। इसलिए मार्क्स ने अपना इरादा बदल दिया और अप्रैल सन् 1842 मे कोलोन के एक अखबार में नौकरी कर


हीगेल

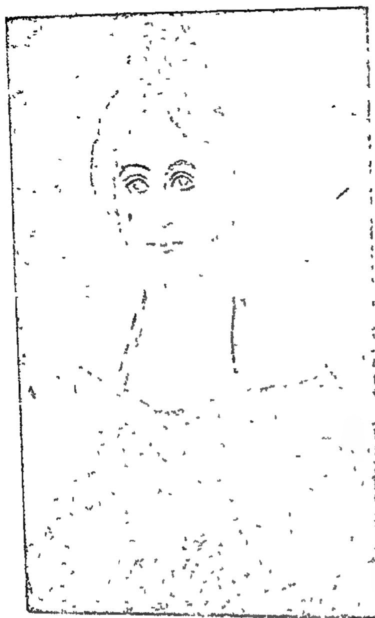
ली। उस अखबार का नाम 'राइनिशे त्साइतुंग' (राइन समाचार) था। छः महीने बीतते-न-बीतते मार्क्स उस अखबार के सम्पादक हो गए।

उस समय जर्मनी की सभी रियासतो मे राजतन्त्र प्रचलित था। राजा लोग मनमाने ढंग से शासन करते थे। उनके कर्मचारी, फौजी अफसर और धनी लोग गरीबो को सताते थे। गरीबों से हमदर्दी प्रकट करने वालों पर भी कड़ी निगाह रखी जाती थी। मार्क्स ने निडर होकर अपने अखबार में उन अत्याचारो के विरुद्ध लिखना शुरू किया। उन्होने जनता के दुख-दर्द को निकट से देखा और अत्याचार करने वालों के हथकडों की पोले खोली। पर एक साल भी न बीतने पाया था कि सरकार ने मार्क्स के अखबार को बंद कर दिया।

अखबार से अलग हो जाने के बाद मार्क्स ने विवाह कर लिया। उनकी पत्नी का नाम जेनी था। विद्यार्थी जीवन मे ही मार्क्स की उनके साथ सगाई हो चुकी थी।

नवम्बर सन् 1843 में मार्क्स फ्रांस चले गए और पेरिस मे रहने लगे। वही अगस्त सन् 1844 मे जर्मन विद्वान् फ्रेड्रिक एगेल्स से मार्क्स की दूसरी बार भेंट हुई। दो वर्ष पहले वे दोनो जर्मनी मे मिल चुके थे। तब से दोनों में पत्र-व्यवहार जारी था। एंगेल्स केवल दस दिन पेरिस मे रहे। उन दस दिनों में ही मार्क्स से उनकी गहरी मित्रता हो गई। दोनों ने अनुभव किया कि उनके विचार एक है और दुनिया में एक ही तरह का काम वे करना चाहते है। उसके बाद लिखने-पढने से लेकर सगठन बनाने तक हर काम में दोनो जीवन भर एक-दूसरे की पूरी मदद करते रहे।

पेरिस मे एक मित्र की सहायता से मार्क्स ने जर्मन भाषा मे एक पत्र निकालना शुरू किया। मार्क्स ने उन्ही दिनो एडम स्मिथ और रिकार्डो नाम के दो अंग्रेज विद्वानो की पुस्तके पढी। उस समय के समाजवादी केवल बातें किया करते थे, काम नही। मार्क्स और एगेल्स ने समाजवाद स्थापित करने का व्यावहारिक रास्ता तय किया। वे स्पष्ट कहते थे कि किसी देश की अवस्था उस समय तक नही बदल सकती जब तक कि उस देश का धन केवल कुछ गिने-चुने आदमियो के ही हाथो में रहता है। जनता का सच्चा राज्य केवल समाजवाद मे ही सम्भव है, और समाजवाद सम्पत्ति और राज्य


जेनी

पर मजदूरो का अधिकार होने पर ही कायम हो सकता है। उस समय के समाजवादी मजदूरो को निरीह मान कर उनकी बेबसी पर आसू बहाया करते थे। मार्क्स ने ही पहले-पहल कहा कि "एक दिन मजदूर बलवान बनेगा, उसमे अच्छी समझ-बूझ भी पैदा होगी और वही दुनिया में ऐसे परिवर्तन करेगा जो आज असम्भव माने जा रहे है।"

मार्क्स के इन विचारो के कारण फ्रास की सरकार ने उनको देश से निकल जाने की आज्ञा दी। फरवरी सन् 1845 में उन्हें पेरिस छोडना पडा और वे बेल्जियम देश के ब्रुसेल्स नामक नगर में जाकर रहने लगे। प्रशा (जर्मनी) की सरकार ने बेल्जियम पर दबाव डाला और माग की कि मार्क्स को जबरदस्ती प्रशा भेज दिया जाए क्योकि वह प्रशा के नागरिक थे। पर यह नौबत आने से पहले ही मार्क्स ने प्रशा से अपने सब नाते तोड़ लिए। उसके बाद मार्क्स लगभग तीन वर्ष तक ब्रुसेल्स में रहे। उन्ही दिनो मार्क्स और एगेल्स ने मिल कर दो पुस्तके लिखी। उन पुस्तको के नाम है 'जर्मन आइडियालोजी' (जर्मन सिद्धान्त) और 'पावर्टी आफ फिलासफी' (दर्शन की दरिद्रता)।

उन पुस्तको में यह सिद्ध किया गया है कि अवस्था के बदलने पर समाज बदलता है, इंसान बदलता है, और विचार भी बदल जाते है। यही विचार मार्क्सवाद की रीढ है। मार्क्स ने लिखा कि दूसरे सभी पुराने युगो की तरह पूजीवादी युग भी मिट कर रहेगा, और मजदूर वर्ग ही उसे मिटा कर समाजवाद स्थापित करेगा। देश की सम्पत्ति पर पूरे समाज का अधिकार होगा। समाजवाद के युग मे हर मनुष्य केवल अपने लाभ के लिए नही, बल्कि अपने और सबके लाभ के लिए मेहनत करेगा। और उस मेहनत के



मार्क्स (1872 में)

बदले में हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार सब चीजें मिलेंगी और सबकी जरूरतें पूरी होंगी।

मार्क्स ने उन समाजवादी विद्वानों के विरुद्ध भी लेख लिखे, जो गरीबों के दुख का रोना रोते थे लेकिन उनकी अवस्था को बदलने का कोई तरीका नहीं बताते थे। मार्क्स सिर्फ तरीका बताना ही काफी नही समझते थे। इसके लिए उन्होने मजदूरो के संगठन बनाने की भी कोशिश की। उन्होंने यूरोप के सभी देशों के मजदूर संगठनों और उनके नेताओ को पत्र लिखे। फरवरी सन् 1847 में लदन मे कम्युनिस्ट विचार मानने वालों की पहली कांफ्रेस हुई और जून सन् 1847 मे कम्युनिस्ट लीग बनी। लदन की कांफ्रेस में मार्क्स ने एक नारा मंजूर कराया था—"दुनिया भर के मेहनत करने वालो एक हो जाओ"। यह नारा आज दुनिया भर के मजदूरो का नारा हो गया है। इस नारे के द्वारा मार्क्स ने राष्ट्रीयता से ऊपर उठ कर अन्तर्राष्ट्रीयता की नीव रखी।

सन् 1847 के अन्त मे लंदन मे कम्युनिस्ट लीग की दूसरी कांफ्रेस हुई, जिसके लिए मार्क्स और एंगेल्स ने मिल कर 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' तैयार किया। यही 'घोषणापत्र' आज ससार भर मे कम्युनिस्ट आन्दोलन का पथ-प्रदर्शन करता है।

मार्क्स के विचारों से डर कर बेल्जियम की सरकार ने मार्क्स को गिरफ्तार कर लिया। फरवरी सन् 1848 में उन्हे देश से निकल जाने की आज्ञा दी गई। उन दिनो फ्रांस मे राजतन्त्र के विरुद्ध आन्दोलन चल रहा था। इसलिए मार्क्स पेरिस की ओर चल पडे। दो महीने बाद जर्मनी के राज्यों मे भी उसी तरह के आन्दोलन शुरू हो गए। तब मार्क्स और एंगेल्स अपने कुछ साथियो को लेकर जर्मनी के लिए रवाना हुए।

मार्क्स ने अपने साथियों को राजतन्त्र के विरुद्ध होने वाले आन्दोलनो मे सम्मिलित होने की सलाह दी। आन्दोलन के लिए जगह-जगह डेमोक्रेटिक लीग बन रही थी। मार्क्स भी अपनी जन्मभूमि राइन की राजधानी कोलोन की डेमोक्रेटिक लीग मे शामिल हो गए। जून सन् 1848 मे उन्होंने 'नाय राइनेशि त्साइतुग' (नया राइन



एगेल्स

समाचार) नाम से फिर एक अखबार निकाला। उस अखबार में मार्क्स ने राजतन्त्र के विरुद्ध और लोकतन्त्र के पक्ष में लेख लिखने शुरू किए। मार्क्स का अखबार शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। सरकार ने कई बार उसे बंद कर देने की कोशिश की, पर जब तक आन्दोलन तेजी पर रहा, तब तक मार्क्स के अखबार को बंद करना आसान न था।

सन् 1849 में प्रशा और पूरे जर्मनी में जनता के उस आन्दोलन को कुचल दिया गया। उसके बाद सरकार ने मई सन् 1849 में मार्क्स के अखबार को भी बंद कर दिया और मार्क्स को विदेशी कह कर देश से निकल जाने की आज्ञा दी। मार्क्स अब फिर पेरिस चले आए पर फ्रास की सरकार ने उन्हें वहा भी रुकने नही दिया। तब वह लंदन गए। सन् 1851 से सन् 1862 तक मार्क्स ने लदन में रह कर बहुत लेख लिखे, जो अमरीका के अखबार 'न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून' मे छपते रहे।

यह मार्क्स के जीवन का सबसे कठिन समय था। यूरोप भर में पत्र-पत्रिकाओ, प्रकाशन-सस्थाओ और विश्वविद्यालयो के दर्वाजे मार्क्स के लिए बद थे। गरीबी और अभाव के थपेड़े उन्हे सास नही लेने देते थे। लेकिन मार्क्स को अपने उद्देश्यों की पवित्रता में पूरा विश्वास था। उन कठिन दिनो मे एगेल्स से उन्हे बडी सहायता मिली। 1850 ई० में एगेल्स ने मानचेस्टर में नौकरी कर ली और मार्क्स तथा उनके परिवार का सारा भार अपने कन्धो पर उठा लिया।

उन दिनो ससार भर मे बडी-बडी घटनाए हो रही थी। भारत मे 1857 वाली आजादी की पहली लड़ाई छिडी, चीन मे विदेशियो के विरुद्ध ताइपिङ विद्रोह

हुआ, स्पेन में क्रांति हुई, अमरीका में हब्शियों को दासता से मुक्ति के लिए युद्ध छिड़ गया। मार्क्स ने बड़ी बारीकी और गहराई के साथ इन तमाम घटनाओं का अध्ययन किया। उन्होंने अपने लेखों में हर जगह आजादी के लिए लड़ने वालों का समर्थन किया।

उन्होंने जो लेख भारत पर लिखे, उनमें भारत की आर्थिक और सामाजिक अवस्थाओं तथा अंग्रेज साम्राज्यवादियों की लूट-खसोट का सच्चा व्यौरा मौजूद है। उन्होंने इंग्लैण्ड के राजनीति के पाखंड की पोल खोली, और उन 'मजदूर रईसों' का भी भंडा फोड़ किया, जो गुलाम देशों की लूट में हिस्सा बांट कर अपने मजदूर भाइयों और क्रांति को धोखा दे रहे थे।

सन् 1857 में मार्क्स ने राजनैतिक अर्थशास्त्र पर अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक लिखी और 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त को संसार के सामने रखा। अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त यह है कि मजदूर जितनी मजदूरी पाता है, उससे कहीं अधिक वह खटता है। मालिक बिना कोई मुआवजा दिए उस अधिक खटनी की कमाई को हड़प जाता है। मजदूर की अधिक खटनी से जो आमदनी होती है, उसी का नाम मुनाफा है। वही 'अतिरिक्त मूल्य' है। यह सिद्धान्त मार्क्स के आर्थिक विचारों की रीढ़ है।

मार्क्स जब किसी विषय पर लिखने की तैयारी करते थे, तो वह उस विषय के हर पहलू पर बरसों विचार करते थे। अध्ययन और गहरी छानबीन से जिन नतीजों पर वह पहुंचते थे, उनकी सचाई की फिर बहुत सख्ती और ईमानदारी से जांच करते थे। इसीलिए अपने सिद्धान्त को अन्तिम रूप देने में उन्हें बरसों लग जाते थे।

अथक अध्ययन और लगातार मेहनत करके मार्क्स ने 'पूंजी' नाम की महान् पुस्तक लिखी। उस पुस्तक ने अर्थशास्त्र के विद्वानों में एक क्रांति मचा दी। इस पुस्तक ने अर्थशास्त्र को एक नया विज्ञान का रूप दिया। मार्क्स का 'पूंजी' नाम का यह ग्रंथ समाजवाद का आधार है।

मार्क्स ने 'पूंजी' ग्रंथ का लिखना उन्हीं दिनों शुरू किया था जब वह 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त पर अपनी पुस्तक लिख रहे थे। 'अतिरिक्त मूल्य' पर उन्होंने जो पुस्तक लिखी, उसे उस समय कोई छापने को तैयार नहीं हुआ। और वह उनकी मृत्यु के बाद 1905 में 'पूंजी' नाम के महान् ग्रंथ के चौथे भाग के रूप में ही प्रकाशित हो सकी।

'पूंजी' का पहला भाग 16 अगस्त, 1867 को छप कर तैयार हुआ था। उसके बाद मार्क्स जीवन भर दूसरे, तीसरे और चौथे भाग की तैयारी में लगे रहे। लेकिन साथ ही अमली क्रांतिकारी कामों से भी वह अलग नहीं रहे। 'पूंजी' के पहले भाग के

प्रकाशन के बाद ही प्रशा और फ्रांस के बीच लड़ाई हुई और पेरिस के मजदूरों ने विद्रोह करके अपना 'कम्यून' अथवा क्रांतिकारी पंचायत कायम की। इस बीच मार्क्स मजदूरों के संगठनो का मार्ग-दर्शन करते हुए चौतरफा क्रान्तिकारी कामो में लगे रहे। इसलिए वह सन् 1872 से पहले 'पूजी' के दूसरे भागो को लिखने की ओर ध्यान न दे सके।

फल यह हुआ कि बाकी भागों का प्रकाशन वे नहीं देख सके। उनके गहरे मित्र एंगेल्स ने उनके लिखे हुए नोट्स को इकट्ठा करके उनका सम्पादन किया, और मार्क्स के मरने के बाद 'पूजी' का दूसरा भाग सन् 1885 में और तीसरा भाग 1894 ई० में प्रकाशित कराया।

'पूजी' के चौथे भाग का प्रकाशन एंगेल्स भी नही देख सके। वह उनकी भी मृत्यु के बाद सन् 1905 मे 'अतिरिक्त मूल्य' के सिद्धान्त के नाम से प्रकाशित हुआ।

वैसे तो 'पूंजी' में ससार के हर विषय पर गहरी दृष्टी डाली गई है, पर मुख्य रूप से उस महान् ग्रथ मे पूजीवाद के आर्थिक सिद्धान्तो की वैज्ञानिक जांच की गई है। उसमे पूजी की उत्पत्ति और उसके विकास के कारणो पर प्रकाश डाला गया है। मजदूरो के शोषण की सचाई को खोल कर रखते हुए उस ग्रथ में यह सिद्ध किया गया है कि पूजीवाद स्वय अपने अन्त की सामग्री पैदा कर देता है, जिसके बाद समाजवाद का स्थापित होना अनिवार्य है।

अर्थशास्त्र सम्बन्धी खोज के कामो में दिन-रात लगे रह कर भी मार्क्स इतिहास, गणित, और विभिन्न विज्ञानो का अध्ययन करते रहते थे। गणित में तो उन्होंने कुछ स्वतन्त्र खोज के काम भी किए। गणित और इतिहास पर उनके बहुत से लेख और टिप्पणियो को देखने से प्रकट होता है कि उनकी जानकारी एक जीते-जागते विश्वकोष जैसी थी।

मार्क्स इतना अधिक दिमागी काम करते हुए भी मजदूर वर्ग को संगठित और शिक्षित करने में जुटे रहते थे। मजदूरो का सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय संगठन सन् 1864 ई० मे स्थापित हुआ, जिसे अब 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' कहते है। मार्क्स ही उसकी नींव डालने वाले और सगठनकर्त्ता थे, और अन्त तक वह ही उसके नेता और उसकी आत्मा बने रहे। उसके सारे महत्वपूर्ण दस्तावेज भी मार्क्स ने ही तैयार किए थे।

'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' की एक आम सभा में मार्क्स ने 'श्रम, मूल्य और लाभ' के प्रश्न पर अपना ऐतिहासिक भाषण दिया था। वह भाषण दुनिया के मजदूर-आन्दोलन की



एंगेल्स

एक अनमोल निधि है। उसे मार्क्स की बेटी इलीनोर ने सन् 1896 ई० मे प्रकाशित कराया।

सन् 1870-71 मे फ्रास और प्रशा के बीच लड़ाई हुई। यह लड़ाई 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' के लिए अग्निपरीक्षा थी। मार्क्स ने कहा कि "यह लुटेरों की लड़ाई है और नेपोलियन को अपनी गद्दी से इसका मोल चुकाना पडेगा।" प्रशा की सरकार को भी उन्होने 'लुटेरी सरकार' कहा। फ्रांस और जर्मनी दोनो देशो के अगुआ मजदूरो को उन्होने यह कह कर लडाई से अलग रखा कि मजदूरो का नारा 'शान्ति' है। समाजवादी दुनिया मे लड़ाइया नहीं होगी क्योकि हर देश का शासक मजदूर होगा, और हर देश के मजदूर के हित एक है।

मार्क्स की भविष्यवाणी सच निकली। नेपोलियन को गद्दी से हाथ धोना पड़ा। तब मार्क्स ने जर्मन मजदूरो से कहा कि 'सम्मान के साथ सुलह' के लिए आन्दोलन करो, और फ्रास के नए जनतन्त्र को अपनी जर्मन सरकार से मान्यता दिलवाओ।

फ़्रास के मजदूर विद्रोह करने को उबल रहे थे। मार्क्स ने चेतावनी दी कि इस तरह बेमौके विद्रोह करना भूल होगी। फिर भी 28 मार्च, 1871 को विद्रोह हो ही गया। मार्क्स विद्रोहियो की मदद को दौड़ पडे। उन्होने दुनिया भर मे सैकडो चिट्ठिया भेजी और 'अन्तर्राष्ट्रीय' की शाखाओ को मदद भेजने के लिए कहा। उन्होने कहा, "यह दुनिया की पहली मजदूर क्राति है"। फ़्रास मे कुछ दिन के लिए 'कम्यून' कायम हो गया।

मार्क्स खुद उस 'कम्यून' को परामर्श देकर भूलों से बचाते रहे। पर पेरिस चारो ओर से घिरा हुआ था और उनके परामर्श समय पर नही पहुंच पाते थे। और भी कई कारणो से ढाई महीने बाद ही फ्रास के 'कम्यून' का अन्त हो गया।

मार्क्स ने पेरिस के मजदूरो की बहादुरी की सराहना की, और उनके 'कम्यून' की हार से कई महत्वपूर्ण नतीजे निकाले। मार्क्स ने बताया कि शासन के पुराने ढाचे के रहते मजदूरो की क्राति टिकाऊ नही हो सकती। मार्क्स की उसी सीख के आधार पर आगे चल कर रूसी क्राति ने 'सोवियत प्रथा' चलाई। दूसरा नतीजा मार्क्स ने यह निकाला



मार्क्स और एगेल्स, मार्क्स की पुत्रियो के साथ

कि किसानो और खेतिहर मजदूरो को साथ लिए बिना केवल औद्योगिक मजदूरो की जीत टिक नही सकती। रूसी क्राति ने इस सीख से भी पूरा लाभ उठाया।

फ्रास के 'कम्यून' की हार से 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' के बुरे दिन आ गए। एक ओर देश-देश की सरकारे कार्यकर्त्ताओ को सताने लगी और दूसरी ओर खुद 'अन्तर्राष्ट्रीय' के अन्दर झगडे और मनमुटाव उठ खडे हुए। 'अन्तर्राष्ट्रीय' को अब और चलाना सम्भव नही रहा। अब उसकी जरूरत भी नही थी, क्योकि वह समाजवाद के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष की नीव डालने का अपना काम पूरा कर चुका था। नीव पक्की हो चुकी थी। इसलिए मार्क्स ही के प्रस्ताव से 'प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय' भग कर दिया गया। लेकिन उसके भग होने पर भी मार्क्स सभी देशो के मजदूरो के नेता बने रहे। वह हर देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और दूसरी परिस्थितियो को अच्छी तरह जाच कर, उनके अनुसार सबको सलाह देते थे।

लदन मे मार्क्स का जीवन तपस्वियो का-सा जीवन था। वह सवेरे नौ बजे पढने-लिखने बैठ जाते थे और बहुत रात बीते तक काम करते रहते थे। बीच मे सिर्फ भोजन के लिए उठते थे। इतवार के दिन वह पत्नी, मित्रो और तीनो पुत्रियो के साथ लदन के हैम्पस्टेड पार्क मे घूमने जाते थे। उन्हे प्रकृति, कविता, और साहित्य से भी बहुत प्रेम था। वह यूरोप की सभी भाषाए तो जानते ही थे, यूनानी और लातीनी (लेटिन) भाषाएं भी उन्हे अच्छी तरह आती थी। प्राचीन यूनान के नाटक लेखक अ० स्काइलस और अग्रेजी नाटककार शेक्सपीयर के नाटको के बहुत से अश उन्हे जबानी याद थे। फ्रांसीसी उपन्यास लेखक बालजक की रचनाए भी मार्क्स को बहुत पसंद थी।

गरीबी, मुसीबतो और परिश्रम के कारण मार्क्स का स्वास्थ्य बिगडता गया। सन् 1857 से वह बीमार रहने लगे थे। स्वास्थ्य सुधारने के लिए वह जर्मनी के कार्ल्सबाद नामक स्थान को गए, पर जर्मनी की सरकार ने उनको वहां ठहरने नही दिया।

लंदन मे मार्क्स के तीन बच्चो की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। 2 सितम्बर, 1881 को मार्क्स की पत्नी जेनी की भी मृत्यु हो गई। मार्क्स एक तो स्वयं बीमार थे, उस पर ये दुर्घटनाएं। उनका स्वास्थ्य और बिगड़ने लगा। कुछ ही समय बाद उनकी विवाहिता पुत्री की भी मृत्यु हो गई। इन सब दुखो के कारण उनकी हालत और खराब होती गई।

मार्क्स की कब्र

14 मार्च, 1883 को उन्हे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे वह स्वस्थ हो रहे हो। वह पढने-लिखने के कमरे मे पहुचे और पढते समय जिस कुर्सी पर बैठते थे, उस पर बैठे, और जिस मेज़ पर लिखते थे उस पर सिर रख कर कुछ सोचने लगे। किन्तु वहा से वह फिर न उठ सके, सदा के लिए सो गए। लदन के हाई गेट कब्रिस्तान मे 17 मार्च को उन्हे दफनाया गया। पति-पत्नी की कब्रे पास-पास आज भी मौजूद है। एगेल्स उस समय लदन मे ही थे। यह शोक समाचार उन्होने ही मार्क्स के सब मित्रो को भेजा। एक पत्र मे एगेल्स ने लिखा—"अब हमारी पार्टी के सबसे बडे दिमाग ने सोचना और सबसे मजबूत दिल ने धड़कना बन्द कर दिया है।"



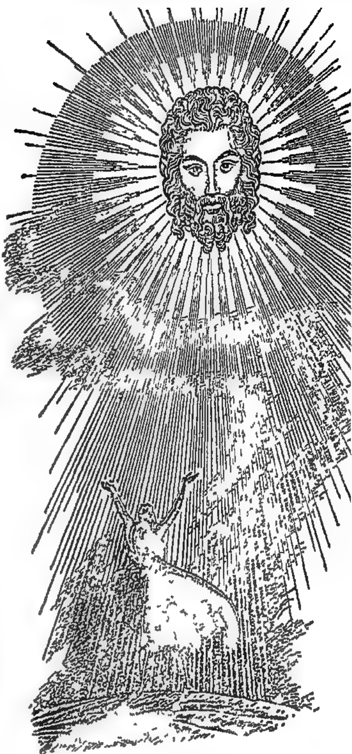
यूनानी और रोमन पौराणिक कथाएं



आदमी जब सभ्य नही हुआ था, तब भी वह कुछ विश्वास रखता था। उसके वे विश्वास सोचे-समझे हुए भी थे, और अन्धविश्वास भी। उनमें से कुछ सगत थे, कुछ असगत।

जब हम तर्क या बुद्धि का उपयोग किए बिना ही केवल इस कारण कि हमारे बाप-दादा उसे मानते थे। कोई विश्वास बना लेते है, तब उसे अन्धविश्वास कहते है। आदिम मानव के पास इस तरह के अन्धविश्वासो का एक भडार था। वह देखता था, अचरज करता था। वह अचरज की चीज का सही अर्थ या कारण जानने की कोशिश करता था, पर जान नही पाता था। तब वह भयभीत होता था, और अटकल लगाता था। उसकी वह अटकल चूकि अक्सर भय से उपजी होती थी, इसलिए वह घटनाओ या चीजो का जो अर्थ लगाता था, वह अधिकतर खयाली होता था। उसका कोई सोचा-समझा हुआ बुद्धिसगत आधार नही होता था।

फिर भी मानव सोचता था, सुनता था, रहस्यो की गाठो को खोलने की कोशिश करता था। वह सोचता कि जब नदी बहती है, और झरना गिरता है, तब उसके पीछे कोई-न-कोई कारण जरूर है। वह सोचता कि जब बीज मिट्टी मे पड़ता है और जमीन



मानव जमीन, जल, विजली, बादल, आदि को देवता मान कर उनकी पूजा करने लगा

की छाती वेध कर उसका अकुरा निकल आता है, पौधे लहलहाने लगते है और वे देखते-न-देखते वडे पेड वन जाते है, तव इनके पीछे कुछ-न-कुछ है जरूर। आदिम मानव जल मे, थल मे, जगल मे, हवा मे, सर्वत्र उस 'कुछ' को खोजता था, उससे डरता था, कापते हृदय से उसे पूजता था, और उसे प्रसन्न करने के लिए अपनी सन्तान तक की वलि चढा देता था ।

इस प्रकार आदमी ने देख कर नतीजा निकाला कि वहने वाले जल, वढने वाले पेड, अन्न उगलने वाली जमीन, तड़पने वाली विजली, गरजने वाले वादल, सवके भीतर कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है और वह शक्ति उसकी अपनी शक्ति से वडी है, क्योकि वह उसके सुख-दुख का कारण होती है। इसलिए वह उन्हे देवता मान कर पूजने लगा। प्रकृति की डरावनी और सुहावनी शक्ति के रूप उसके भले और वुरे देवता वने, जिनको उसने देख कर नही, वल्कि उनके असर से पहचाना, और उन्हे अपना रक्षक देवता और सहारकर्ता माना ।

कहावत है कि मानो तो देवता, नही तो पत्थर। फिर भी सीधे-सीधे पत्थर को देवता मानना कठिन होता है। इसीलिए आदमी उस पत्थर की तरह-तरह की शक्ले गढता है। आदिम इसान ने भी अपनी कल्पना के देवताओ की शक्ले गढी और चूकि दिखाई देने वालो मे आदमी अपने से वढ कर और कुछ नही देखता था, इसलिए उसने अपने देवताओ और प्रकृति की छिपी शक्तियो को आदमी का ही रूप और रग दिया। उन्हे शक्ति मे अपने से कही अधिक महान् मानते हुए भी उसने अपने देवताओ मे इसान की इसानियत, उसके राग-द्वेष, काम-क्रोध जन्म-मरण, सव कुछ भर दिए । ऐसे ही

काल्पनिक विश्वासों को पौराणिक विश्वास और उन विश्वासों से संबंध रखने वाली कहानियों को पुराणों की कहानियां कहते हैं।

यूनानियों और रोमनों के पौराणिक विश्वास लगभग एक जैसे हैं, क्योंकि रोमनों की संस्कृति यूनानियों के बाद की संस्कृति है और उसका अधिकांश विकास यूनानी संस्कृति से ही हुआ है। यूनानी संस्कृति के सम्पर्क में आने पर रोमनों ने उसे अपना कर आत्मसात् कर लिया। लगभग सभी यूनानी देवता नाम बदल धारण करके रोमनों के देवता बन गए, और यूनानी देवताओं की कहानियां भी रोमन देवताओं की कहानियां बन गईं। अन्तर केवल इतना है कि जहां यूनानियों की अनेक जातियां अनेक बस्तियां, अनेक नगरियां थीं, वहां रोमनों की आबादी अधिकतर एक ही तंग घाटी में बसी थी। इसलिए जहां यूनानियों के देवकथाओं, विश्वासों और पुराणों में विविध प्रकार के रंग मिलते हैं, वहां रोमनों के विश्वास और पुराण अधिकतर एक ही रंग के हैं।

और सब जातियों की पौराणिक कहानियों की तरह यूनानियों और रोमनों की पौराणिक कहानियों में भी उनके देवताओं के परस्पर प्रेम, लड़ाई-झगड़े, और हार-जीत का वर्णन है। यूनानियों का ख्याल था कि धरती और उस पर रहने वालों को सिरजने वाले देवता थे। उन्होंने अपने चारों ओर फैली हुई धुंध को दूर करके इस पृथ्वी की रचना की, और उसे समुद्र से घेरा। फिर जब फैली हुई धुंध मिट गई और पृथ्वी की रचना हो गई तब उसके ऊपर विस्तृत आसमान उभर आया। तब आकर देवताओं ने जमीन-आसमान के बीच में और जमीन के नीचे पाताल में निवास करना शुरू किया।

यूनान में ओलिम्पस नाम का एक पहाड़ है, जिसकी कमर के चारों ओर कुहरा छाया रहता है, और जिसकी चोटी बादलों को छेद कर उन पर अपना माथा डालती रहती है। यूनानियों का विश्वास था कि इसी ओलिम्पस की बर्फ की सफेद चोटी पर देवताओं का आवास है, वहां से वे मानव के कारनामे देखते रहते हैं। जियस इन देवताओं का राजा था। जियस को रोमन लोग जूपिटर कहते थे। जियस के साथ ग्यारह देवी-देवता और ओलिम्पस पर रहते थे। उनके नाम थे, हिरा, हर्मिस, अथेनी, अपोलो, आर्तेमिस, अरेस, अफ्रोदीती, हैफाइसतस, हेस्तिआ, पोसिदन और दिमीतर।

यूनान की पौराणिक कहानियों में ऐसे देवताओं का भी जिक्र आता है, जो आदमी से देवता बन गए थे, और ऐसे देवताओं का भी वर्णन आता है जिन्होंने मनुष्य जाति


ओलिम्पस

से विवाह करके सन्तानें पैदा की और आदमी के पुरखे बन गए। ऐसी हालत मे आदमी और देवताओ का व्यवहार बराबर वालो जैसा होता था। देवताओ के पुत्र अनेक बार यूनानी कथाओ मे घटनाओ के नायक होते है, और वे ससार के नागरिको के साथ लड कर अनेक लडाइया हारते और जीतते है। ट्राय की इतिहास प्रसिद्ध लडाई मे कई देवताओ के बेटो ने भाग लिया था, जिनकी गाथा कवि होमर ने अपने अमर काव्य 'ईलियद' मे गाई है। उदाहरण के लिए अकिलीज को, जो उस महाकाव्य की नायिका हेलेन का प्रेमी था, देवता का पुत्र बताया गया है। ट्राय के युद्ध की कहानी मे देवताओ और इसान की औलाद एक-दूसरे से पूरी तरह गुथी हुई है, ठीक उसी तरह जैसे महाभारत की कहानी मे देवपुत्र पाडव आदमियो की सन्तान के साथ घुलमिल गए है।

कुछ देवता ऐसे भी है, जो केवल रोमनो के देवता है, जिनका यूनानियो के यहा कोई जिक्र नही मिलता। जानस एक ऐसा ही देवता है। रोम के देवताओ मे उसका बहुत ऊचा और महत्वपूर्ण स्थान था। दुनिया की सारी चीजो का वही मूल कारण माना जाता था। वर्षो और ऋतुओ का वही विधाता था। वही भाग्य का बनाने और बिगाडने वाला था, और उसी की दया से मानव-जाति और उसकी कलाओ का विकास होता था।

लोक-कथाओ के अनुसार जानस लातियम का राजा था उसने उस सुनहरे युग में राज किया था, जब देवता और आदमी कन्धे-से-कन्धा मिलाकर धरती पर विचरते



होमर

थे। उसने बडे-बडे आलीशान और एक-से-एक सुन्दर मन्दिर खडे किए थे। उसने इसान को अनेक लाभकर कलाए सिखाई थी। जानस के नाम पर ही वर्ष के पहले महीने का नाम जनवरी पडा।



यूनानी लोग शान्ति के प्रेमी थे, युद्ध के नही, गो उन्हे अनेक लडाइया लडनी पडी थी, और वे लडने मे प्रवीण भी थे। पर रोमन लोग युद्धप्रिय थे, और साम्राज्य का विस्तार उनका परम ध्येय था। अपने जमाने का दुनिया का सबसे बडा साम्राज्य उन्होने ही खड़ा किया था। उन्हे आए दिन लडाइया लडनी पडती थी। उनकी सस्कृति मे सेना की व्यवस्था और सचालन का महत्व असाधारण था, और जानस युद्ध मे जीत का देवता माना जाता था। वह रोमन जनता के साथ खुद भी मैदान मे खड़ा होता था—ऐसा रोमनो का विश्वास था। इसलिए जब भी रोम पर कोई सकट आता, जानस के मन्दिर के द्वार खुले रहते थे। जानस के बारे में भी अनेक कहानिया मौजूद है। चारणो और कवियों के लिए तो युद्ध सम्बन्धी उसकी कहानियां विशेष प्रेरणा की चीज बन गई थी।

हेलेन

(1)

जियस की कहानी

आकाश का देवता यूरेनस यूनानियों का सबसे पहला देवता था। धरती की देवी गाइया उसकी मा थी। यूरेनस ने गाइया से व्याह कर लिया। उस व्याह से कुछ देवता और दैत्य पैदा हुए, जो तितान, खेकातोचीरी, और कीक्लोप कहलाए। तितान छः थे। वे अपने पिता के नाम पर यूरेनिदाई कहलाए। उन्होंने अपनी छः बहनो से विवाह कर लिए। यूरेनस डरा कि कही उसके लडके तितान उसे मार कर उसकी गद्दी न छीन ले। इसलिए उसने उन्हे पकड कर पाताल मे कैद कर दिया। गाइया को बहुत दुख हुआ। उसने उनको छुडाने की ठानी। क्रोनस उसका सबसे छोटा बेटा था। गाइया ने उसे एक हसिया बना कर दिया और बाप से लडने को उक्साया। क्रोनस ने अपने पिता यूरेनस को घायल कर अपने तितान भाइयो को आजाद करा लिया। यूरेनस की खून की बूदों से गिगान्ती कुल के देवता पैदा हुए। तितानो का कुल गिगान्तियों के योग से और बढ चला, और देवताओ के अनगिनत कुल पैदा हो गए।


क्रोनस

सबसे छोटा तितान क्रोनस जब पिता को हरा कर उसकी गद्दी पर बैठा, तब उसने अपनी



दिमीतर

बहन रिया से शादी की। इस शादी से उसके दो बेटे और तीन बेटियां हुईं। बेटियों के नाम थे हेस्तिया, दिमीतर और हिरा। एक दिन क्रोनस ने भविष्यवाणी सुनी कि "जैसे तुमने अपने पिता को गद्दी से उतार दिया है, वैसे ही तुम्हारे बेटे भी तुम्हें गद्दी से उतार देंगे।" क्रोनस इतना डरा कि वह झट अपने पांचों बच्चों को निगल गया। उसके बाद उसका छठा बेटा जियस पैदा हुआ। वह इतना सुन्दर था कि मा का प्यार बरबस उस पर उमड आया और उसने निश्चय किया कि जान की बाजी लगा कर भी वह अपने बेटे की रक्षा करेगी। जब क्रोनस नए पैदा हुए बच्चे को देखने आया तब रिया ने एक पत्थर को कपड़ों में लपेट कर उसके सामने कर दिया। क्रोनस ने उसे ही अपना नया बेटा समझ कर चबा डाला। यह कहानी मथुरा के कस की कथा से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इस तरह पति को धोखा देकर रिया ने जिस लडके को बचाया था, उसका नाम जियस पड़ा। जियस को उसकी मा ने केते के टापू में भेज दिया। वहां वह एक गुफा मे छिप कर रहा, वन की देवियो ने उसे दूध पिलाया, मधुमक्खियो ने उसे शहद लाकर दिया, और गरुड ने स्वर्ग का अमृत पिला कर उसे अमर बना दिया। रिया के अनुचर जियस के चारो ओर नाच-नाच कर अपनी तलवारो और ढालो की झकार मे उसकी आवाज डुबा देते, जिससे क्रोनस उसे सुन न पाए और बच्चे की जिन्दगी को कोई खतरा न पहुचे।

जियस सयाना होकर मा के पास गया। उसने मा से मिल कर एक षड्यन्त्र रचा और पिता को मजबूर कर दिया कि वह अपने निगले हुए बच्चो को उगल दे। इस तरह उसने अपने भाइयो को फिर से जिला लिया और उनकी मदद से क्रोनस को गद्दी

से उतार कर स्वर्ग का सिहासन खुद हथिया लिया। क्रोनस के दूसरे भाई इसे न सह सके, और जियस के देवताओ और दैत्यो (तितानो) मे घमासान युद्ध छिड गया।

लडाई एक अरसे तक चलती रही। यूनानी पुराणो का कहना है कि यह प्रलयकर लडाई थेसाली के मैदान मे हुई थी। ओलिम्पस पहाड की चोटी पर देवराज जियस का सिहासन चमचमा रहा था, और उसके सामने ओथ्रिस पर्वत की चोटी पर तितानो के नेता जापेतस ने अपना डेरा जमाया था। जियस को इस लडाई मे भारी कठिनाइया झेलनी पड़ी। अन्त मे उसे यूरेनस से पैदा हुए खेकातोचीरी और कीक्लोप कुल के देवताओ की याद आई, जिन्हे तितानो ने कभी पाताल लोक में कैद कर दिया था। जियस ने उनसे मदद लेने का निश्चय किया। वे अब भी पाताल लोक मे कैद थे। उसने उन्हे मुक्त कर दिया और वे भयकर हथियारो के साथ जियस की मदद को आ पहुचे। बिजली, वज्र और भूकंप उनके हथियार थे। इन हथियारो के सामने तितान लोगो के घुटने टूट गए। इस प्रकार जियस की विजय हुई और तितानो को चट्टानो के नीचे लोहे की दीवारों से घिरे उस नरक मे डाल दिया गया, जहां सदा सर्दी और अन्धेरे का राज रहता है, और जहा पाताल लोक की देवी हिकेत का राज्य है। यूनानी देवताओ और दैत्यो की इस लडाई की कहानियो को लेकर कवियो ने अनेक काव्य और गीत लिखे है।



जियस



अफ्रोदीती का सिर

(2)

अफ्रोदीती की कहानी

प्रेम की देवी अफ्रोदीती का यूनान की पौराणिक कथाओं मे बड़ा मनोरंजक स्थान है। अफ्रोदीती को ही रोमन पुराणों मे वीनस कहा गया है। अफ्रोदीती का जन्म समुद्र के नीचे फेन से हुआ था। इटली के प्रसिद्ध चित्रकार बोतीचेली ने अपने एक बहुत ही सुन्दर चित्र मे अफ्रोदीती के जन्म का चित्रण किया है। उस चित्र मे उसे सीप पर सवार समुद्र के 'फेन' से निकलते हुए दिखाया गया है। प्रेम की देवी अफ्रोदीती असीम आकर्षण की प्रतिमा है। देवता और मनुष्य दोनो ही उसके प्रेम के भूखे हैं। यो तो रोमन पौराणिक कथाओं मे अफ्रोदीती के कई पति और प्रेमी बताए गए हैं, पर उनमे अदोनिस नाम का एक युवा गडरिया सबसे सुन्दर है। अफ्रोदीती उसे प्यार करती थी, पर एक जगली सूअर ने उसे मार डाला। अपने प्रेमी की मृत्यु से अफ्रोदीती के हृदय मे पहली बार प्रेम का ऐसा दर्द उमड़ा, जो किसी तरह कम न होता था। रह-रह कर वह अपने प्रेमी की लाश को चूमती और किसी प्रकार उसे छोड़ने को तैयार न होती। अन्त में देवताओ को दया आई और उन्होंने वरदान दिया कि वह गडरिया नौजवान फिर से जीवित हो कर साल का आधा भाग ऊपर की दुनिया मे अफ्रोदीती के साथ बिताया करेगा और आधा पाताल की देवी पर्सिफोन के साथ।

अफ्रोदीती





पर्सिफोन

अदोनिस तब से यूरोप की सुहावनी ऋतु का प्रतीक और वसंत का हरकारा माना जाता है। यूनानियों के विश्वास के अनुसार इटली में अप्रैल के महीने में जब फूल और पौधे वसंत को निहाल करने लगते हैं, तब अदोनिस पाताल से निकल कर ऊपरी दुनिया में लौटता है और अफ्रोदीती के साथ वन-कानन में रमता है; लोग उस अवसर पर प्रेम की देवी की पूजा में विभोर हो उठते हैं। यूनान, इटली, मिस्र, सीरिया आदि में अफ्रोदीती और वीनस के अनेक मन्दिर बने हुए हैं।

(3)

इरास और साइकी की कहानी



अपोलो



इरास

अफ्रोदीती का एक और प्रेमी या पति था, जिसका नाम अरेस था। अरेस से अफ्रोदीती के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम इरास पडा। इरास यूनानी देवताओ मे सबसे सुन्दर और सबसे युवा माना जाता है। वह पख और धनुष धारण करता है। मूर्तियो मे उसका रूप अक्सर एक बालक जैसा गढा जाता है।

साइकी क्रेत नाम के एक टापू के राजा की बेटी थी। उसे देवताओ ने ऐसी सुन्दरता दी थी कि उससे अफ्रोदीती को भी अपना मुह छिपाना पडता था। इसी से अफ्रोदीती उससे डाह करती थी। होते-होते अफ्रोदीती की डाह इतनी बढी कि उसने अपने पुत्र इरास द्वारा साइकी का नाश कराना चाहा। पर उसका नाश करने की बजाय इरास उसके प्रेम का शिकार हो गया। साइकी के रूप का उस पर ऐसा जादू हुआ कि वह उसके प्रेम में दीवाना-सा हो गया। उन्ही दिनो साइकी के पिता ने अपोलो से शकुन बिचरवाया। शकुन मे यह निकला कि साइकी को मातमी लिबास पहना कर उसे एक खास चट्टान के पास ले जाकर छोड दिया जाए। वहां एक डैनोवाला दैत्य आएगा। उसके आने पर साइकी

साइकी



उसकी पत्नी बन जाए। शकुन में निकले भाग्य के इस कठिन आदेश का साइकी के पिता को पालन करना पड़ा।

जैसे ही साइकी को चट्टान के पास अकेले छोड़ा गया, उसे बादल के एक टुकड़े ने ढक लिया, और हवा का एक हल्का झोंका आकर उसे अपने साथ उड़ा ले गया। इस प्रकार हवा के हिंडोले में झूलती वह एक सुन्दर महल में पहुची। रोज दिन डूबते ही इरास भी वहां पहुच जाता, पर साइकी उसे देख न पाती। इस तरह इरास रोज साइकी के साथ रात बिताने लगा, पर साइकी न उसका नाम जान सकी, न पता-ठिकाना। इतना ही नहीं, उसे इस बात की भी सख्त ताकीद कर दी गई थी कि वह कुछ जानने की कोशिश न करे। लेकिन जब साइकी की बहनें उसके सुन्दर महल को देखने आईं, तब उन्होंने उसे इस बात के लिए तैयार कर लिया कि अवसर मिलते ही अपने प्रेमी को पहचान कर वह अपना कुतूहल शान्त कर ले।

एक रात जब इरास सो रहा था, साइकी एक चिराग लेकर उसके पास चुपके से दबे पाव पहुची, और उसे देखने के लिए झुकी। और जब उसने देखा कि सोया हुआ युवक अफ्रोदीती का बेटा है, तब वह ऐसी घबराई कि जलते चिराग के तेल की एक गर्म बूद उसके प्रेमी के नगे कधे पर गिर पड़ी। देवता जाग पड़ा। उसने साइकी को उसके कुतूहल और असयम के लिए धिक्कारा, और महल छोड़ दिया।

साइकी रोती-बिलखती रह गई। उसके दर्द की कोई थाह न थी। तब वह भी महल से निकल पड़ी और दर-दर की धूल छानती फिरी। ढूढते-ढूढते वह एक दिन अफ्रोदीती के महल में जा पहुची।

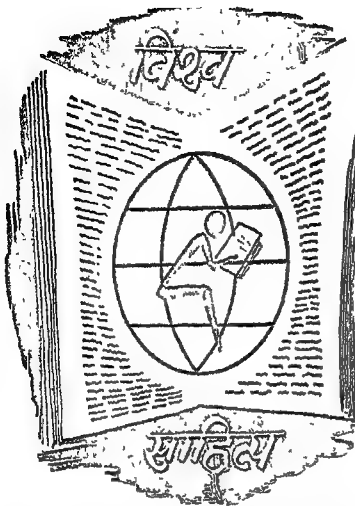
तेल की एक गर्म बूद इरास के नंगे कधे पर गिर पड़ी



वहा वह कैद कर ली गई और अफ्रोदीती उससे गुलामो की तरह काम लेने लगी। उसने साइकी के धीरज को परखने के लिए उसे कठिन-से-कठिन काम सौपे, यहा तक कि एक दिन उसने पाताल लोक की देवी पर्सिफोन के पास से एक सिगारदान लाने को भेजा। पर इरास का प्रेम भी कुछ साधारण नही था। इसलिए वह साइकी की मुसीबतो मे चुपचाप साए की तरह उसके साथ लगा रहता और सकटो मे उसकी रक्षा करता। जब साइकी ने सिगारदान को पर्सिफोन के यहा से लाकर खोला, तो उसमे से एकाएक जहरीली भाप निकलने लगी और वह बेहोश होकर गिर पडी। अब इरास अपने को नही रोक सका। उसने दौड कर अपनी प्रेमिका को बाहो मे भर लिया, और उसे फिर से जिला लिया। तब अफ्रोदीती का क्रोध भी शान्त हो गया और ओलिम्पस के देवताओ की उपस्थिति में इरास और साइकी का विवाह हो गया।



पर्सिफोन का सिगारदान



(1) मराठी साहित्य



महाराष्ट्र के लोगो की भाषा 'मराठी' कहलाती है। यो तो कोकणी, जो कुछ लोगो के विचार से एक स्वतन्त्र भाषा है, हलबी, अहिराणी, वहोडी, डागी, आदि आज भी महाराष्ट्र देश मे बोली जाती है, किन्तु पूना के आसपास बोली जाने वाली मराठी भाषा ही महाराष्ट्र की मुख्य भाषा बन गई है। यह भाषा 1,200 वर्ष पुरानी है। इसके बोलने वालो की सख्या लगभग ढाई करोड है। इस भाषा मे 1,12,186 शब्द है। मराठी भाषा की सबसे पुरानी पुस्तक 'विवेक-सिधु' है। इसकी रचना कवि मुकुन्दराज ने अनुमानत सन् 1188 ई० मे की थी। अभी तक इससे पहले की कोई मराठी पुस्तक नही मिली है।

स्वामी रामदास



पुराने मराठी साहित्य के अधिकतर रचयिता कवि होने के साथ-साथ सत भी होते थे। यही कारण है कि पुराने मराठी साहित्य मे धर्म, भक्ति, नीति, समाज-सुधार आदि की रचनाए एक साथ पाई जाती है। चक्रधर, ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, रामदास और तुकाराम उस काल के प्रसिद्ध सत कवि थे।


सत तुकाराम

मराठी भाषा के प्रसिद्ध संत और कवि चक्रधर का जन्म अनुमानतः सन् 1154 ई० में हुआ और उनकी मृत्यु अनुमानतः सन् 1273 ई० में हुई। वह जन्म से गुजराती थे। उन्होंने महाराष्ट्र में एक नया मत चलाया, जिसे 'महानुभाव पथ' कहते हैं। महानुभाव पथ के लोग काले कपड़े पहनते हैं। इस पथ के लोग कृष्ण के भक्त थे। सन् 1272 ई० में संत ज्ञानेश्वर का जन्म हुआ। उन्हें महाराष्ट्र का महाकवि माना जाता है। उन्होंने सन् 1290 ई० में मराठी भाषा में गीता की टीका की। यह टीका पद्य में है। इसमें 9,000 ओविया (छन्द विशेष) हैं। उनके नाम पर ही यह टीका 'ज्ञानेश्वरी' कहलाई। महाराष्ट्र में 'ज्ञानेश्वरी' का वैसा ही आदर है जैसा उत्तर प्रदेश में तुलसी की रामायण का है।

महाराष्ट्र में संत नामदेव की 'वानी' भी बड़े आदर से पढ़ी और सुनी जाती है। नामदेव का समय 1270 से 1350 तक माना जाता है। उनकी वानी 'गुरु ग्रथ साहब' में भी मिलती है। संत एकनाथ (1533–1599) भी मराठी के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने रामायण और भागवत को मराठी कविता में उतारा। संत मुक्तेश्वर (1600–1650) ने मराठी भाषा में महाभारत तैयार किया, जिसे वहां की जनता ने दिल खोल कर सराहा। सन् 1608 में संत तुकाराम का जन्म हुआ। उनकी वानी महाराष्ट्र के घर-घर में रम गई। 50 वर्ष की आयु पाकर सन् 1658 ई० में संत तुकाराम परलोकवासी हुए। समर्थ रामदास भी महाराष्ट्र के प्रसिद्ध कवि थे। वह शिवाजी के गुरु थे। उनका जन्म 1608 ई० में हुआ और मृत्यु 1681 में हुई। प्रसिद्ध मराठी ग्रंथ 'दासबोध' उन्हीं की रचना है।

इनके अलावा महाराष्ट्र में बारहवीं से सत्रहवीं सदी तक और भी कई संत कवि हुए। उन संत कवियों को वारकरी कहा जाता है। वे सब पंढरपुर के प्रसिद्ध विठोबा के भक्त थे। वारकरी संतों में सभी जातियों और धंधों के लोग पाए जाते हैं।

विठोबा के मन्दिर मे हर कोई जा सकता था। वहा किसी तरह की छुआछूत या भेदभाव नही बरता जाता था। महाराष्ट्र के सतो मे बडी खूबी यह है कि वे इस बात पर जोर देते थे कि सब इसान बराबर है।-इन सब सतो का ध्यान समाज की दशा की ओर भी रहता था। सत रामदास ने तो समाज सुधार के लिए बडा प्रयत्न किया। उन्होने जगह-जगह मठ बनवाए और उनके जरिए आम जनता को नेक कामो की ओर लगाया। उनके नाम पर सतो का एक पथ चल पडा, जिसे 'रामदासी पथ' कहते है। सतो की यह महान् परम्परा अठारहवी सदी तक चलती रही। मुसलमान सत कवियो ने भी मराठी मे काफी लिखा है। इनमे शेख मुहम्मद सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है। उन्हे कबीर का अवतार कहा जाता है। अन्य सत कवियो मे अकबर हुसैन खा, शाहमनी, जमाल शाह, आदि के नाम लिए जा सकते है।

धीरे-धीरे महाराष्ट्र की राजनैतिक हालत डावाडोल होने लगी। उसके साथ-साथ मराठी काव्य भी सत कवियो के हाथो से निकल कर पडितो के हाथो मे चला गया। इन पडित कवियो को पंत कवि भी कहते है। इनमे वामन पडित और रघुनाथ पंडित के खण्डकाव्य बडे रसीले है। कवि मोरोपत (1729–1789) ने मराठी भाषा मे 108 रामायणिया लिखी। उन्होने सस्कृत से मराठी मे महाभारत का अनुवाद किया। कवि मोरोपत के कारण मराठी भाषा मे सस्कृत के सैकडो शब्द चल पड़े।

सत कवियो और पंत कवियो के बाद मराठी मे एक दूसरे प्रकार के कवि हुए, जिन्हे तत कवि कहते है। वे लोक-भाषा के कवि थे। वे 'पोवाडे' और 'लावनिया' बनाते और गाते थे। इन तत कवियो को 'शाहीर' भी कहते है, जो शायद फारसी 'शायर' से बना है। पोवाडे में अधिकतर 'आल्हा' की तरह युद्ध और वीरता के बखान होते है और 'लावनियो' मे प्रेम की चर्चा होती है। इनकी भाषा जनता की आम भाषा होती है। उस जमाने मे फारसी और हिन्दुस्तानी के बहुत से शब्द मराठी मे मिल गए। मराठी गद्य का आरम्भ भी इसी समय हुआ। उस समय का गद्य 'बखर' यानी ऐतिहासिक कागज-पत्रो और रोजनामचो मे लिखा हुआ मिलता है। परन्तु मराठी गद्य का बाकायदा विकास अंग्रेजो के आने के बाद और देश मे राष्ट्रीय जागरण के साथ हुआ।

विष्णुशास्त्री चिपलूणकर



केतकर

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में महाराष्ट्र प्रदेश पूरी तरह अंग्रेजों के हाथों में आ गया। बम्बई महाराष्ट्र का केन्द्र बना। जनशिक्षा के लिए बम्बई में एक विश्वविद्यालय खोला गया। सन् 1840 ई० में 'दर्पण' नाम का पहला मराठी अखबार निकला। विष्णुदास भावे ने नाटक खेलने का चलन चलाया। उन्होंने 1843 ई० में पहला मराठी नाटक स्टेज पर खेला। मराठी साहित्य में दूसरी भाषाओं के साहित्य की चीजें लाने की भी कोशिश शुरू हुई। 1861 ई० में 'मुक्तामाला' नाम का पहला मराठी उपन्यास लिखा गया। विलियम कैरे नाम के अंग्रेज ने सन् 1810 ई० में पहला मराठी-अंग्रेजी शब्दकोश तैयार किया। पंडित विष्णु-शास्त्री ने एक अंग्रेजी-मराठी कोश तैयार किया, जो 1864 में छपा।

गोपाल गणेश आगरकर



इसी समय चिपलूणकर और लोकहितवादी ने मराठी निबन्ध लिखने शुरू किए। आगे चल कर लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और शिवराम महादेव परांजपे ने अपनी जोरदार कलम से महाराष्ट्र में राष्ट्रीयता की भावना फूंकी। विनोबा भावे और स्वर्गीय आचार्य जावडेकर जैसे विचारकों को हम भूल नहीं सकते। महाराष्ट्र में कोश, इतिहास की खोज, भाषा का वैज्ञानिक विचार आदि क्षेत्रों में कई धुरंधर विद्वान हुए। रानडे, राजवाडे और सरदेसाई ने इतिहास में अनूठी खोजें



हरि नारायण आपटे

की। आगरकर और जोतिबा फुले ने समाज को जगाने का काम किया। डा० केतकर ने, बगैर किसी की सहायता के, एक ज्ञानकोश बनाया, जिसके 23 भाग थे। यह 1923 में छपा। चित्राव शास्त्री ने तीन खडो मे चरित्रकोश बनाया और प्रो० के० पी० कुलकर्णी ने मराठी के हर शब्द की उत्पत्ति बताने वाला एक कोश तैयार किया। डा० मा० य० पटवर्धन ने फारसी-मराठी कोश की रचना की।

आजकल के विद्वान् लेखक

यह तो हुई पुरानी और नई भाषा, ज्ञान, पद्य और गद्य की बात। जहा तक कहानी, उपन्यास, नाटक, आदि का सम्बन्ध है, मराठी साहित्य इनमे भी पीछे नही रहा। उपन्यास और कहानी के क्षेत्र मे जो बड़ा काम हरि नारायण आपटे ने किया, उसी को आगे चल कर वा० म० जोशी, फडके, खाडेकर, माडखोलकर वगेरह ने बढाया। कहानियां लिखने वालो मे य० गो० जोशी, कुसुमावती देशपाडे, विभावरी शिरूरकर, चोरघडे के नाम हमेशा याद किए जाते है। इनके बाद की पीढी मे आज के कहानी-उपन्यास लिखने वालो मे दिघे, पेडसे, माडगूलकर, गगाधर गाडगिल, पु० बा० भावे, अरविन्द गोखले, शान्ताराम, आदि प्रसिद्ध है। यहा पर उन अनेक लेखको के नाम गिनाना सम्भव नही है जिनकी सुन्दर रचनाए मराठी के कहानी साहित्य की बहुत बडी देन है। बच्चों के लिए साने गुरुजी ने बडा काम किया है। उनकी 'शामू की मा' एक अमर किताब है।

अंग्रेजो के आने के बाद फादर स्टीफेन्स ने कविता मे 'ख्रिस्तायन' नाम का ग्रथ लिखा। यह ग्रथ मधुरता के लिए प्रसिद्ध है। बाद मे रेवरेंड तिलक, बाल कवि, केशवसुत, सावरकर ऐसे कवि हुए, जिन्होने मराठी कविता को नया मोड दिया।

वामन मल्हार जोशी









माधव जूलियन

बोरकर

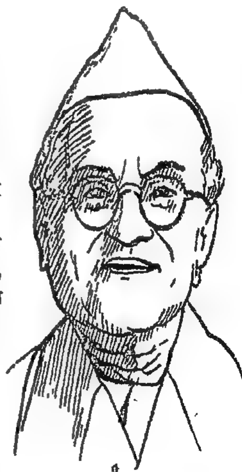
यशवन्त

इनके बाद तावे, चंद्रशेखर, यशवन्त, वी माधव जूलियन की पीढी आई। उसके बाद आ० रा० देशपाडे 'अनिल' ने मुक्त छन्द में कविता लिखनी शुरू की। उनके बाद स्वर्गीय मर्ढेकर ने मराठी कविता मे और भी गहरी तीखी खूबी पैदा की। कुसुमाग्रज, बोरकर, इन्दिरा संत, वसंत, बापट, पाडगावकर, करंदीकर, मुक्तिबोध आदि आज के प्रसिद्ध कवि है।

शुरू में केवल कोल्हटकर, खाडिलकर, गडकरी ने नाटक मे बड़ा काम किया। खाडिलकर का 'कीचक वध' नाटक अंग्रेज सरकार ने जब्त कर लिया। गडकरी का 'एकच प्याला' नाटक बहुत प्रसिद्ध हुआ। उनके बाद मामा वरेरकर ने मराठी स्टेज और नाटक में नई क्रांति की। उनके नाटको मे समाज की समस्याए जीते-जागते रूप में सामने आई। प्र० के० अत्रे ने नाटक मे हास्य का सुन्दर उपयोग किया। मो० ग० रांगणेकर आज भी मराठी स्टेज को जीवित रखने और उन्नत करने की कोशिश कर रहे है।

इस तरह मराठी साहित्य निरन्तर बढता जा रहा है। उसमे जहा एक ओर मनुष्य की वीरता, निर्भयता, अन्याय से लडने की उसकी प्रवृत्ति है, तो दूसरी ओर सचाई और हृदय की कोमलता भी है।

मामा वरेरकर



(2) गुजराती साहित्य



हिन्दी की तरह ही गुजराती भाषा भी सस्कृत से निकली है । लेकिन जिस तरह यह बताना सम्भव नही है कि सस्कृत से प्राकृत और अपभ्रश के रास्ते ठीक किस समय हिन्दी की उत्पत्ति हुई, उसी तरह गुजराती भाषा के जन्म की तिथि बताना भी सम्भव नही है । फिर भी आमतौर पर यह सभी मानते है कि गुजराती का जन्म ग्यारहवी शती मे हुआ, यद्यपि उसके भी 250-300 वर्ष बाद तक गुजराती और राजस्थानी मे भेद करना कठिन था । इसीलिए एक अग्रेज भाषाशास्त्री ने गुजराती के प्रारम्भिक रूप को प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी कहा है । उसका गुजराती नाम पहले-पहल 17वी सदी मे, प्रसिद्ध कवि प्रेमानन्द की रचनाओ में, पाया जाता है । इससे पहले की गुजराती रचनाओं को प्राकृत या अपभ्रश ही कहा जाता था । कुछ लोगो ने उसे गुर्जर भी कहा है । जो हो, इसमे सदेह नही कि 14वी सदी के अन्त तक गुजराती भाषा का मौलिक ढाचा स्थिर हो चुका था । आज गुजराती भाषा बोलने वालों की सख्या डेढ करोड से भी अधिक है, और वह अरब सागर के किनारे के क्षेत्रो—गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ मे बोली जाती है । विशाल बम्बई नगर की चालीस लाख की आबादी मे भी गुजराती बोलने वालो की सख्या बहुत बडी है । इसके अलावा समुद्र तट पर बसी अन्य सभी जातियो की तरह गुजराती लोग भी समुद्र पार के देशों मे जाकर बस गए है । श्रीलका, बर्मा, पेनाग, सिगापुर, मलाया, इण्डोनेशिया, अफ्रीका, आदि देशो मे काफी गुजराती बसे हुए है । इन प्रवासी गुजरातियो की भाषा आज भी गुजराती ही है । यहा तक कि अफ्रीका के कुछ हिस्सो मे शिक्षा के माध्यम और अदालती भाषा के रूप मे भी गुजराती को मान्यता प्राप्त है ।

सन् 953 ई० में चालुक्यों या सोलंकियों ने उत्तर गुजरात में अणहिलवाड़ नगर को अपनी राजधानी बनाया। अणहिलवाड़ नगर को पाटण भी कहते हैं। मूलराज, चामुंड, दुर्लभराज, भीम, कर्ण, सिद्धराज और कुमार पाल आदि प्रतापी राजाओं ने प्राय 300 वर्ष तक अणहिलवाड़ में शासन किया। उनके शासन में व्यापार और विद्या की खूब उन्नति हुई। वह गुजरात का स्वर्ण युग था। इसी समय गुजराती साहित्य की नींव पड़ी। विद्वान् जैन मुनियों ने गुजराती में अनेक ग्रंथों की रचना की।

गुजरात का पड़ोसी मालवा देश सदियों से विद्या-प्रेम के लिए प्रसिद्ध था। मालवा में विद्या का जोर देख कर पाटण के राजा सिद्धराज जयसिंह ने अपने यहां तीन सौ लेखकों को तीन साल तक बैठा कर उनसे विपुल साहित्य लिखवाया। जयसिंह के दरबार में आचार्य हेमचंद्र ने प्रसिद्ध 'हेम व्याकरण' नामक ग्रंथ रचा, जिसमें संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं की चर्चा है। उन्होंने 'अभिधान चिन्तामणि', 'निघंटु-कोश', 'देशी नाममाला', आदि ग्रंथों की रचना की। गुजराती साहित्य के आदि काल में प्राय सारा साहित्य जैनियों द्वारा ही रचा गया।

गुजराती साहित्य को हम मोटे तौर पर तीन युगों में बांट सकते हैं :—

(1) प्राचीन युग—सन् 1100 से सन् 1500 ई० तक;

(2) मध्य युग—सन् 1500 से सन् 1850 ई० तक;

(3) आधुनिक युग—सन् 1850 ई० के बाद।

आचार्य हेमचंद्र



आचार्य हेमचंद्र से लेकर भक्त कवि नरसी मेहता के समय तक लगभग 300 वर्षों में कवियों ने एक खास ढंग की रचनाएं की, जिन्हें रास या 'रासो' कहते हैं। सन् 1185 ई० में शालिभद्रसूरि ने गुजराती के सबसे पुराने रासो 'भरतेश्वरबाहुबलिरास' की रचना की थी। उसमें जैनों के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव के दोनों पुत्रों भरत और बाहुबलि में राज्य के लिए जो युद्ध हुआ था, उसका वर्णन है। बाहुबलिरास को गुजराती साहित्य की प्रथम कृति माना जाता है। तब से लेकर अठारहवीं सदी तक रासो लिखने की प्रथा बनी रही। अब तक तीन सौ से अधिक रासो मिले हैं। कवियों ने एक दूसरे प्रकार की रचनाएं भी की, जिन्हें 'फागु' कहते हैं। 'फागु' वसंत ऋतु में गाए जाते थे; और उनमें प्राय. वसंत का ही वर्णन होता था। तीसरे प्रकार की रचनाएं वे थी, जिन्हें 'बारहमासी' कहते हैं।

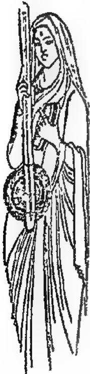


नरसी मेहता

कितने ही कवियों ने 'बारहमासी' काव्य बनाए। बारहमासी मे वर्ष के बारहों महीनो का वर्णन होता है।

गुजराती में गद्य का सच्चे अर्थ मे आरम्भ वर्तमान युग मे हुआ। फिर भी यह नही कहा जा सकता कि प्राचीन युग मे गद्य लिखा ही नही गया। जैन विद्वानो द्वारा लिखे गए गुजराती साहित्य मे गद्य की कई प्राचीन रचनाएं मौजूद है, जैसे सन् 1655 ई० मे लिखा हुआ जैन मुनि तरुणप्रभसूरि का 'प्रतिक्रमणबालावबोध' नामक ग्रंथ। बालावबोध नाम की रचनाएं प्रायः आम जनता के लिए लिखी जाती थी। उनमे नीति सम्बन्धी कथाएं होती थी। इसी प्रकार सन् 1422 ई० मे जैन मुनि माणिक्यसुन्दरसूरि द्वारा लिखी 'पृथ्वीचन्द्रचरित' नाम की एक गद्य कथा, और पन्द्रहवी शताब्दी के चार कवियो की रचनाएं है। इनके नाम है: असाइत ठाकर की 'हंसाउली' श्रीधर व्यास का 'रणमल छंद' भीम का 'सदयवत्सचरित', और अब्दुर रहमान का 'सदेशक रास'। 'रणमल छंद' मे ईडर के राठौर राजा रणमल्ल की वीरता का वर्णन है, और अब्दुर रहमान की रचना 'सदेशक रास' विप्रलम्भ श्रृंगार का एक सुन्दर दूत काव्य है।

मीरा



सन् 1412 ई० से लेकर 1572 ई० तक गुजरात में बदअमनी फैली हुई थी। 1572 ई० मे अकबर ने गुजरात को जीत लिया, और वहां शान्ति और व्यवस्था कायम हुई। यह वही समय था जब भारत मे सब कही भक्ति का साहित्य रचा जाने लगा था, और वह एक शक्तिशाली आन्दोलन बनता जा रहा था। इसलिए गुजरात के साधको और साहित्यकारो का उस धारा में शामिल होना स्वाभाविक ही था। भक्ति की इस धारा ने गुजराती साहित्य को दो तेजवान रत्न दिए—नरसी मेहता और मीराबाई।

यद्यपि नरसी मेहता से पहले की भी गुजराती की बहुत-सी रचनाएं मिलती है, फिर भी गुजराती के आदि कवि का पद नरसी को ही दिया जाता है। उनकी रचनाओ मे महान् रचनाओ के सभी गुण है, जिनका प्रभाव सदियो बाद तक कवियों और उनकी

कृतियो पर छाया रहा। उन्होंने 'हारमाला', 'शामलशानो विवाह', 'गोविन्दगमन', 'सुदामा-चरित', 'रास सहस्रपदी', आदि ग्रन्थ और हजारों पद रचे हैं।

मीरा के पद सारे उत्तरी भारत में गाए जाते हैं। वह हिन्दी की महान् कवयित्री के रूप में देश भर में प्रसिद्ध है। पर यह बात शायद सभी को नहीं मालूम कि मीरा गुजराती की भी उतनी ही महान् कवयित्री थी, जितनी हिन्दी की। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम पन्द्रह वर्ष द्वारिका मे बिताए थे। जिस प्रकार मीरा के हिन्दी के पद हृदय मे एकदम बिंध जाते है, वैसे ही उनके गुजराती के पद भी हैं। पदों के अलावा 'नरसी जी का मायरा' नामक एक गुजराती कृति भी मीरा की ही रचना मानी जाती है।

उस युग के दो कवियो, भालण और पद्मनाभ, का भी यहां जिक्र किया जा सकता है। भालण ने वाणभट्ट की कादम्बरी का पद्य में बहुत रोचक अनुवाद किया। पद्मनाभ ने 'कान्हडदे प्रबंध' नामक एक वीर काव्य लिखा। नरसी और मीरा के बाद मुख्य रूप से आख्यान और पद्यवार्ता नाम की रचनाओं का चलन हुआ। आख्यान उन छोटी-छोटी कथाओं को कहा जाता है, जो रामायण और महाभारत की विभिन्न घटनाओं को लेकर लिखी गईं। इन्ही घटनाओ पर लिखी गई दूसरी तरह की रचनाएं पद्यवार्ता कहलाईं। पद्यवार्ता शब्द से ही यह स्पष्ट है कि ये रचनाएं पद्य में होती थीं। उनका आरम्भ नरसी और भालण ने किया, और उनका सिलसिला बहुत बाद तक जारी रहा।

मध्य युग में गुजरात ने तीन गौरवशाली कवि पैदा किए। उनके नाम थे अखो, प्रेमानन्द और शामल। अखो जाति के सुनार थे। वह तीखे व्यंग लिखने में लासानी थे। उनके पैने व्यंग पाखंडी साधुओं और राजा-महाराजाओ पर बरसते थे। गुजराती मे छः पंक्तियो के 'छप्पय' छंदो की रचना उन्होंने ही शुरू की।

प्रेमानन्द समाज के मध्यम वर्ग के महाकवि माने जाते है। वह जाति के माणभट्ट थे। माण संकरे मुह के ताबे की गागर को कहते हैं। उसी से माणभट्ट की जाति बनी है, क्योंकि वे लोग 'माण' को सामने रख कर उंगली में पहनी हुई अंगूठी से उस पर ताल देते हुए पुराणो के आख्यान सुनाते हैं। प्रेमानन्द के समय में गुजराती को साहित्य की भाषा नहीं माना जाता था। इस सम्बन्ध मे एक कहावत मशहूर थी कि "अबे तबे के सोलह आने, अठे कठे के आठ, इकड़म् तिकड़म् चारहि आने, शूशां पैसा चार।" मतलब यह है कि हिन्दी का मूल्य सोलह आने, राजस्थानी का आठ आने, मराठी का चार आने और शूशां वाली गुजराती का मूल्य केवल चार पैसे। पर प्रेमानन्द की रचनाओं के कारण

गुजराती भाषा ने साहित्य की भाषा का पद प्राप्त किया। उनके बाद उनके शिष्य वीरजी, वल्लभ, रत्नेश्वर, आदि ने भी उच्चकोटि के साहित्य की रचना की। 'ओखा हरण', 'दशम स्कंध', 'सुदामा-चरित', 'द्रौपदी स्वयंवर', 'नरसी मेहतानी हुंडी', 'मामेरूं', आदि प्रेमानन्द के प्रसिद्ध काव्य हैं।

शामल भट्ट मध्य युग के सबसे बड़े कहानीकार थे। उन्होंने पद्य मे कहानिया लिखीं। पर वे कहानिया आज की कहानियों जैसी नही थी। वे कहानिया 'बृहत्कथा' की कहानियों की तरह नीति और धर्म की कहानिया थी। प्राचीन काल मे पिशाची प्राकृत के प्रखर कथाकार गुणाढ्य ने 'बृहत्कथा' नाम का कहानी संग्रह तैयार किया था। दूसरे जैन मुनियों ने भी नीति और धर्म की बाते समझाने के लिए कहानियो का सहारा लिया। शामल ने भी उसी रंग में निखरी हुई गुजराती में 'पद्मावती', 'रूपावती', 'बरास कस्तूरी', 'नंदबत्रीशी', 'सिंहासनबत्रीशी', 'सूढाबहोत्तरी', 'मदन मोहना', आदि कथाओं की रचना की।

अठारहवी सदी में अधिकतर शिव, कृष्ण और दुर्गा के स्तोत्रों की रचना हुई। उस समय दो-चार कवयित्रियों और एकाध पारसियों ने भी काव्य-रचना की। उस युग में कोई बड़ा कवि या साहित्यकार नही हुआ। अठारहवी सदी के अन्त में जाकर एक प्रतिभाशाली कवि का उदय हुआ, जिसका नाम दयाराम था। कहा जाता है कि वह बहुत शौकीन और विलासप्रिय स्वभाव के थे। उन्होंने हिन्दी, मराठी, पंजाबी और गुजराती, चार भाषाओं मे कविताएं रची। गुजराती मे



प्रेमानन्द


नर्मद

उनके 'गरबी' नामक गेय काव्य बहुत लोकप्रिय है। उनकी 'बाललीला', 'रूपलीला', 'दाणलीला', 'प्रेमरसगीता, 'व्रजविलास', 'मीराचरित्र', 'रसिकवल्लभ', 'प्रबोध-भावनी', आदि रचनाए प्रसिद्ध है । 'सतसैया' नाम की उनकी एक कृति हिन्दी मे भी है ।

उन्नीसवी सदी मे गुजराती साहित्य मे एक नया तेज पैदा हुआ। अंग्रेजो का शासन कायम हुआ, और बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, वडौदा आदि नगरो में अंग्रेजी स्कूलों की स्थापना हुई। सन् 1857 में बम्बई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् 1848 मे अहमदाबाद मे गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी (जो अब गुजरात विद्या सभा के नाम से प्रसिद्ध है), और 1851 मे बम्बई में बुद्धिवर्धक सभा, ज्ञान प्रसारक मडली, आदि साहित्य-प्रचार सस्थाओ की स्थापना हुई । ऐसे समय मे सूरत में नर्मदाशकर का जन्म हुआ, जो नर्मद कवि के नाम से प्रसिद्ध हुए । उन्हे हम गुजरात का भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कह सकते है। साहित्य का कोई क्षेत्र उनकी कलम से अछूता नही रहा। उन्होंने प्राचीन शैली की कविता लिखने के साथ ही गुजराती मे शुद्ध आत्मलक्षी कविता का भी प्रथम प्रयोग किया। 'नर्मगद्य', 'धर्मविचार', 'मारी हकीकत', 'राजरग', आदि उनकी प्रसिद्ध गद्य कृतियां है। उन्होंने 'नर्मकोश' नामक एक कोश भी तैयार किया था। नर्मद के लगभग साथ ही कवि दलपतराम भी गुजराती साहित्य में आए। पर दलपतराम ने मुख्यत. कविताए ही लिखी। वैसे उन्होंने कुछ नाटक भी लिखे है। 'हुन्नरखान नी चढाई', 'वेनचरित्र' आदि उनकी प्रसिद्ध काव्य-रचनाए है ।

नर्मद के समकालीन दूसरे लेखको मे नवलराम, नन्दशकर, महीपतराम नीलकठ, आदि प्रमुख है । नन्दशकर ने ही प्रथम गुजराती उपन्यास 'करण-घेलो' लिखा। वह उपन्यास गुजरात के अन्तिम हिन्दू राजा करणवाघेला की जीवन-कथा को लेकर लिखा गया है ।

गोवर्धनराम त्रिपाठी



बलवन्तराय ठाकोर

नर्मद और दलपत के बाद गुजराती साहित्य मे पडित लेखको का एक दल पैदा हुआ, जिनमे से गोवर्धनराम त्रिपाठी, मणिलाल द्विवेदी, नरसिंहराव दिवेटिया, बलवन्तराय ठाकोर, आनन्दशकर ध्रुव, आदि विद्वानो ने गुजराती साहित्य को बहुत समृद्ध किया। त्रिपाठीजी ने 'सरस्वतीचन्द्र' नामक उपन्यास की रचना की, जिसे गुजराती की 'कादम्बरी' कहा जाता है। दिवेटिया और ठाकोर दोनो ने कविता और आलोचना साहित्य को समृद्ध बनाया। सच तो यह है कि साहित्यिक आलोचना की नीव ही उन्होने डाली।

पर जिस समय पडित लेखकों का समूह गुजराती साहित्य पर छाया हुआ था, उस समय भी मधुर साहित्य की रचना हुई। गुजराती के रूमानी कवि नानालाल भी उसी काल मे हुए। नानालाल ने अंग्रेजी ब्लैक वर्स (मुक्त छद) के ढग की एक विशिष्ट गद्य शैली प्रस्तुत की। उन्होने 'जयाजयंत', 'जहांगीर-नूरजहां', 'अकबरशाह', आदि नाटक भी लिखे। नानालाल के अतिरिक्त पारसी कवि अरदेशर फरामजी खबरदार तथा मधुर गेय काव्यों के रचयिता बोटादकर और ललितजी भी उसी काल में हुए।

1914 में प्रथम विश्व-युद्ध छिड़ा और गाधीजी दक्षिण अफ्रीका से भारत आए। उनके आने से देश में एक नई लहर दौड गई। 1919 मे उन्होंने 'नवजीवन' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरु किया। उसमे गांधीजी ने आरोग्य के घरेलू उपचार





खबरदार

नाना लाल

से लेकर आध्यात्मिक चिन्तन तक अनेकानेक विषयो पर शिष्ट और सरल गद्य मे सैकडो लेख लिखे । 'सत्य के प्रयोग' नामक आत्मकथा, 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' नामक पुस्तक और दर्जनो दूसरी पुस्तकें गुजराती साहित्य को गाधीजी की अमर देन है । 1915 से 1946 तक के समय को गाधी युग कह सकते है । गांधीजी से प्रभावित साहित्यकारो में काका कालेलकर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी, रामनारायण पाठक, रमणलाल देसाई, धूमकेतु, किशोरलाल मशरूवाला, झवेरचन्द मेघाणी और नरहरि परीख मुख्य है । कन्हैयालाल माणिकलाल मुशी और रमणलाल देसाई गुजराती के प्रमुख उपन्यासकार है। मुशी के चार उपन्यास—'पाटणनी प्रभुता', 'गुजरातनो नाथ',

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी





काका कालेलकर



धूमकेतु

'राजाधिराज' और 'जय सोमनाथ' गुजरात के स्वर्ण युग की झलक प्रस्तुत करते हैं। रमणलाल के 'जयत-शिरीष', 'कोकिला पूर्णिमा', 'ग्रामलक्ष्मी,' 'दिव्यचक्षु', 'भारेलो अग्नि' नाम के उपन्यासों में गुजरात की संस्कृति का प्रतिबिम्ब पाया जाता है। काका कालेलकर जी यद्यपि महाराष्ट्री हैं, तथापि उन्होंने गुजराती में उच्चकोटि के निबन्ध लिखे हैं। धूमकेतु कहानी के क्षेत्र में गुजराती के प्रेमचन्द माने जाते हैं। किन्तु उपन्यास के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा ज्वलन्त नहीं कही जा सकती। 'तणखा मंडल' नाम से उनकी कहानियों के पांच संग्रह निकल चुके हैं। मेघाणी जी ने लोक-साहित्य का सम्पादन करके गुजराती की अमूल्य सेवा की। उमाशंकर जोशी और सुन्दरम् गांधी युग के प्रतिनिधि कवि कहे जा सकते हैं, और ज्योतीन्द्र दवे गुजरात के प्रथमकोटि के हास्य लेखक हैं।

आजादी के बाद गुजराती साहित्य की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति हो रही है। गुजराती भाषा को विश्वविद्यालयों में भी स्थान मिल गया है।

(3) कन्नड़ साहित्य



कन्नड़ कर्नाटक या भारत के उस हिस्से की भाषा है, जिसे संविधान मे मैसूर राज्य कहा गया है। भारत की चार प्रमुख द्रविड भाषाओं में से कन्नड़ भी तमिल की तरह एक बहुत पुरानी भाषा है।

राष्ट्रकूट वंश के एक राजा थे। उनका नाम नृपतुंग था। उनका लिखा हुआ 'कविराज मार्ग' कन्नड भाषा का सबसे पुराना ग्रंथ माना जाता है। यह 850 ई० में लिखा गया था। यह ग्रंथ पद्य मे लिखा गया है। इसमें काव्य और साहित्य के सिद्धान्तो और नियमो का वर्णन है। इससे पहले का लिखा हुआ कोई दूसरा ग्रंथ कन्नड में अब तक नही मिला है। फिर भी इस बात के प्रमाण मिलते है कि इससे सदियो पहले, ईसवी सन् के आरम्भ के आस-पास, कन्नड़ साहित्य का विकास हो चुका था।

उदाहरण के लिए, 'कविराज मार्ग' से पहले के कई अभिलेख मिले है। उनमे सबसे पुराना 450 ई० का है। इन अभिलेखो मे गद्य तथा पद्य में छोटी-छोटी साहित्यिक रचनाए हैं, जिनमें लिखित साहित्य के गुण पाए जाते है। यदि उस समय मंजे हुए साहित्यकार न होते तो ऐसा होना सम्भव नही था। इसलिए यह अनुमान करना ठीक ही है कि उस समय ताड़पत्रो पर भी बहुत कुछ साहित्य लिखा गया होगा। पर चूकि ताड़पत्र पत्थर की तरह टिकाऊ नही होते, इसलिए पत्थरो पर खुदे हुए अभिलेख तो बने रहे, जबकि ताड़पत्रों पर लिखी हुई रचनाए कीड़े-मकोड़ो और दीमको की नजर हो गई।

कविराज मार्ग' के लेखक ने कई प्रसिद्ध कवियों और लेखकों के नाम भी गिनाए हैं। उसने जगह-जगह पुराने साहित्य-शास्त्रियों और आलोचकों की चर्चा की है। इससे स्पष्ट है कि उनके पहले भी ऊंचे कवि और लेखक हो चुके थे, और साहित्य की नींव पड़ चुकी थी। ऐसा न होता तो 'कविराज मार्ग' जैसे ग्रंथ का लिखा जाना सम्भव न था।

इन सब बातों के होते हुए भी कन्नड साहित्य का आरम्भ 9वीं सदी ईसवी से ही माना जाता है। कन्नड साहित्य को समय-समय के धार्मिक आन्दोलनों के अनुसार तीन प्रमुख युगों में बांटने का चलन है। ऐसा करने में सुविधा भी है, क्योंकि धार्मिक आन्दोलन ही उस समय के साहित्य की जान थे। पहले युग को जैन युग कहते हैं। इसका समय 'कविराज मार्ग' के समय से 12वीं सदी के मध्य तक माना जाता है। दूसरा युग वीर शैव युग है, जो 12वीं सदी के मध्य से 15वीं सदी तक चला। तीसरा ब्राह्मण युग कहलाता है, जो 15वीं सदी से शुरू होकर 19वीं सदी तक कायम रहा। जैन युग से पहले का समय प्राचीन कन्नड युग कहलाता है, और ब्राह्मण युग के बाद का समय

वर्तमान युग। कुछ विद्वानो और इतिहासकारो ने धर्म के आधार पर युगो के विभाजन का विरोध किया है। वे भाषा के विकास को आधार मान कर जैन युग को प्राचीन कन्नड युग, और वीर शैव युग तथा ब्राह्मण युग, दोनो को मध्यकालीन युग कहना ठीक समझते है।

जैन युग

850 ई० मे लिखा गया 'कविराज मार्ग' एक तरह से दण्डी के 'काव्यादर्श' जैसा ग्रथ है। इसमे तीन अध्याय है। पहला अध्याय किसी खास विषय को लेकर नही लिखा गया है, पर उसमे कन्नड सस्कृति के बारे मे रोचक और बहुमूल्य सामग्री मिलती है। उससे पता चलता है कि लेखक अपने देश, भाषा और सस्कृति के प्रति प्रेम मे पगा होता है। दूसरे अध्याय मे छद-शास्त्र और इसी सम्बन्ध मे दूसरे विषयो का वर्णन है। तीसरे में लेखक ने बाकायदा उदाहरण देकर भिन्न-भिन्न अलकारो को समझाया है।

असल मे 10वी सदी का आरम्भ होने पर ही कन्नड साहित्य की जडे जमी और वह मजबूत कदमो पर खडा हुआ। दसवी सदी कन्नड साहित्य का स्वर्ण युग है। इस सदी में हर दिशा मे चौमुखी उन्नति हुई। पाच बडे कवियो के पैदा होने से साहित्य खास तौर से आगे बढा। ये पाच कवि थे—पम्पा, पौन्ना, चावुण्डराय प्रथम, नागवर्मा प्रथम और रन्ना। इनमे पम्पा, रन्ना और पौन्ना असाधारण प्रतिभा के धनी थे। ये युग के तीन रत्न कहलाते है।

पम्पा के जोड का दूसरा कवि अभी तक कन्नड साहित्य मे नही हुआ। वह सचमुच कन्नड काव्य का पिता है। उसकी रचना 'विक्रमार्जुन विजय' पम्पा-भारत के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे महाभारत की कथाओ को एक नया रूप दिया गया है। यह कला और सौन्दर्य की एक अमर पुस्तक है। पम्पा की दूसरी प्रसिद्ध रचना 'आदि पुराण' है। इसमे पहले जैन तीर्थंकर की जीवन-कथा है।

रन्ना 'साहस भीम विजय' या 'गदा युद्ध' नाम की अपनी रचना के लिए प्रसिद्ध है। 'गदा युद्ध' एक महाकाव्य है। इसमें कुरुक्षेत्र के अठारहवें दिन की उस भयंकर लडाई का नाटकीय वर्णन है, जिसमें भीम-दुर्योधन के बीच गदा युद्ध हुआ था। कन्नड भाषा में इतनी जोरदार और वीर रस से भरी कोई दूसरी रचना नही है।

पोन्ना ने अपने 'शान्तिपुराण' मे 16वे तीर्थंकर शान्तिनाथ की जीवन-कथा लिखी है। चावुण्डराय ने 'चावुण्डराय पुराण' मे चौबीसो तीर्थंकरो की और दूसरे जैन संतो की जीवन-गाथाएं लिखी है। नागवर्मा प्रथम का 'छदोम्बुधि' कन्नड मे छद-शास्त्र की पहली प्रामाणिक रचना है। उन्होंने बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का कन्नड भाषा मे इतना सुन्दर अनुवाद किया है कि वह आज भी सस्कृत से अनुवाद करने वालों के लिए एक नमूना माना जाता है।

इसके बाद डेढ़ सौ वर्षो मे बिरले ही ऐसी रचनाए हुईं, जिनका कोई खास साहित्यिक महत्व हो। फिर भी 1105 ई० मे नगचन्द्र नाम का एक कवि हुआ, जो अपने को 'अभिनव पम्पा' कहता था। उसने कन्नड मे रामायण का पहला अनुवाद किया। यह अनुवाद अपनी मधुर शैली और साफ चित्रण के लिए प्रसिद्ध है। १ ास तौर से रावण के चित्रण मे कवि ने कमाल किया है। उसने रावण को खलनायक के रूप मे नही, बल्कि एक ऊचे चरित्र के ऐसे महान् नायक के रूप मे पेश किया है, जिसे केवल दुर्भाग्य के कारण दुर्दिन देखना पडा। कन्नड साहित्य की पहली कवयित्री, कती भी नगचन्द्र के समय मे ही हुई।

उस समय के एक दूसरे साहित्यकार नागवर्मा द्वितीय (1145 ई०) थे। उन्होंने काव्य-शास्त्र, साहित्य-शास्त्र और व्याकरण के विषयो पर 'काव्यावलोकन' नाम से एक अच्छा ग्रथ लिखा था। उन्होंने 'वस्तुकोश' नाम का एक कोश भी तैयार किया।

साहित्यिक रचनाओ से अधिक उस समय ज्ञान-विज्ञान के ग्रथो की प्रधानता रही। इन ग्रथों की सख्या देख कर सचमुच आश्चर्य होता है। इनमे प्रमुख है—(1) चावुण्डराय द्वितीय (1025 ई०) का 'लोकोपकार', इसे 'घरेलू कामो का विश्वकोश' कहा जा सकता है, मकान बनाने से लेकर भोजन बनाने तक के ढग इसमे लिखे हुए है, (2) फलित ज्योतिष सम्बन्धी श्रीधराचार्य (1049 ई०) का 'जातक तिलक', (3) आचार-व्यवहार के बारे मे नयसेन (1112 ई०) का 'धर्मामृत', (4) पशुओ की चिकित्सा के सम्बन्ध मे कीर्तिवर्मा (1125 ई०) का 'गोवैद्य', और (5) आयुर्वेद पर जगद्दल सोमनाथ (1150 ई०) का 'कर्नाट कल्याणकारक'।

जैन युग को कन्नड का महाकाव्य काल कहा जा सकता है। इस युग की अधिकतर रचनाए रामायण, महाभारत और जैन सतो के जीवन से कथा-वस्तु लेकर 'चम्पू' के



वसवा

रूप में लिखी गई हैं। विशेष रूप से ध्यान देने की वात कन्नड भाषा मे सस्कृत भाषा की तरह 'चम्पू' शैली का उपयोग है।

12वी सदी के मध्य में कर्नाटक के सामाजिक और धार्मिक जीवन ने भारी उथल-पुथल देखी। जैन मत का प्रभाव कम हो गया। हिन्दू समाज के कितने ही समुदायो मे वैदिक धर्म का विश्वास कमजोर पड चला था। वर्ण-व्यवस्था के कारण जाति-पाति और ऊच-नीच की भावना पर जोर दिया जाता था, और आत्मा को ऊचा उठाने वाले सच्चे कामो की जगह थोथे कर्मकाण्डो ने ले ली थी। इसलिए लोग नई सामाजिक और धार्मिक मान्यताओ के आधार पर किसी नए मत की आवश्यकता अनुभव करने लगे। फल यह हुआ कि वीर शैव मत आन्दोलन का जन्म हुआ। इसके नेता वसवा नाम के एक ब्राह्मण थे। वह कलचुरी वश के राजा विज्जल के मुख्य मन्त्री थे।

उस समय साहित्य और पुस्तको मे लिखी जाने वाली भाषा बोलचाल की भाषा से वहुत दूर जा पडी थी। दोनो के बीच गहरी खाई थी। चम्पू और दूसरी आडम्वर-पूर्ण वोझिल शैलियो से लोग ऊव चले थे। वैसे नयसेन जैसे लेखको ने पहले ही सरल कन्नड मे लिखना शुरू कर दिया था। वीर शैव मत आन्दोलन ने आसान भाषा लिखने की इस प्रवृत्ति को बल दिया। 'वचन' लोचदार सुरीले गद्य मे लिखी हुई रचना होती थी। उसे आसानी से याद किया तथा गाया जा सकता था।

वीर शैव मत आन्दोलन ने 'वचन' के अनेक लेखक पैदा किए। इनमे तीन प्रमुख थे . वसवा, अल्लमा और अक्कमहादेवी। वसवा और महादेवी की रचनाए सीधे हृदय को छूती हैं। पर अल्लमा की रचनाए अधिक रहस्यमय और सूत्र रूप मे होने के कारण सोचने और समझने के वाद ही पकड मे आती हैं। वसवा की रचनाओ में भक्ति प्रधान है, अल्लमा की रचनाओ मे ज्ञान। महादेवी ने अपनी रचनाओ मे ईश्वर को पति के रूप में माना है। मिलन की कामना का आवेग होते हुए भी उनके प्रेम मे एक शुद्धता है, पवित्रता है। 'मल्लिकार्जुन' उनके प्रीतम या गिरधर गोपाल है,

जिन्हे कोई छीन नही सकता, बन्धनो मे बांध नही सकता। महादेवी, सचमुच, कर्नाटक की मीरा है।

आगे चल कर 'वचन' का भी रंग फीका पड गया। तब वीर शैव कवियो ने कुछ नए ढंग के देसी छद बनाए और उन्हे सवारा-निखारा। उन्होने उन छदो मे अनेक उच्च कोटि की रचनाए की। इन छदो के दो मुख्य रूप है। 'रगले' और 'षट्पदी'। रगले मुक्त छद जैसा होता है। हरिहर (1200 ई०), जो पद्य मे जीवनी लिखने मे बेजोड है, 'रगले' छंद के मुख्य कवि है। उन्होंने चम्पू शैली मे भी एक उच्च कोटि की रचना की है। कवि राघवाक (1225 ई०) ने अपने 'हरिश्चन्द्र काव्य' और 'सिद्धराम चरित' मे षट्पदी छद अपनाया है। कहा जाता है कि भारत की सभी भाषाओ मे 'हरिश्चन्द्र काव्य' अपने विषय की सबसे ऊची साहित्यिक रचना है।

वीर शैव मत का व्यापक प्रभाव होते हुए भी इस युग मे कई जैन लेखक हुए। इनमे जन्ना (1209 ई०) ने 'यशोधरा चरित' नामक एक मनोवैज्ञानिक प्रेम-कथा लिखी और उसे जैन दर्शन का जामा पहनाया। 'यशोधरा चरित' शृगार रस की एक सशक्त रचना है, और लेखक ने उसमे अपनी गहरी सूझ-बूझ का परिचय दिया है। एक दूसरे लेखक आंडय्या (1225 ई०) ने सस्कृत के एक भी शब्द का प्रयोग किए बिना, शिव की कामदेव पर विजय की कथा लिख कर उन लेखकों को चुनौती दी, जो कन्नड भाषा को सस्कृत शब्दों और छदो के साचे मे ढाल कर बोझिल और अनबूझ बनाने मे जुटे थे।

15वी सदी मे कन्नड़ साहित्य का वह युग आरम्भ हुआ, जिसे ब्राह्मण युग या वैष्णव युग कहते है। इस युग की नीव उन वैष्णव आन्दोलनों से पडी, जिनके नेता रामानुज (12वी सदी) और मध्वाचार्य (13वी सदी) थे।

इस युग के पहले कवि नारणप्प (1400 ई०) 'कुमार व्यास' के नाम से मशहूर है। उन्होने महाभारत की कथा को देसी 'भामिनी षट्पदी' छद मे बडी खूबी के साथ लिखा। इसे कन्नड साहित्य की एक बेजोड रचना माना जाता है। वैष्णव धारा की तीन और प्रसिद्ध कृतिया है, नरहरि अथवा कुमार वाल्मीकि (1500 ई०) का 'तोरवे नारायण', चाटुविट्ठलनाथ (1530 ई०) का 'भागवत' और लक्ष्मीश (1550 ई०) का 'जैमिनी भारत'।

लगभग 16वी सदी के तीसरे दशक मे हरिदास आन्दोलन के नाम से एक दूसरा जनप्रिय आन्दोलन चला, जिसने युग की भावनाओ को आगे बढाया। इस आन्दोलन



पुरन्दरदास

के चलाने वाले लोग अपने को दास कहते थे। ये विष्णु के भक्त थे और कीर्तन के गीत गाते थे। इनमें व्यास राय (1525ई०), पुरन्दरदास और कनकदास मुख्य थे। इनकी रचनाए कर्नाटकी सगीत में है। हरिदास आन्दोलन के शुरू के दिनो में (1510ई०) चैतन्यदेव कर्नाटक गए और उन्होंने अपने गीतो और उपदेशो से हरि के मधुर नाम को वहा लोकप्रिय बनाया।

इस युग मे भी कई जैन कवि हुए, पर उनमे महत्वपूर्ण दो ही थे—रत्नाकर वर्णी (1560ई०) और भट्टा कलका (1600ई०)। रत्नाकर वर्णी ने अपने लोक-गीतो मे प्रचलित 'सागत्य' नाम के छद को अपनाया और राजा भरत की कथा के आधार पर 'भरतेश वैभव' नामक रचना की। कन्नड साहित्य मे 'भरतेश वैभव' का बडा मान है। इसी प्रकार वीर शैव लेखक भी इस युग मे काफी सक्रिय रहे। इनमे भीम कवि, चामरस, विरुपाक्ष पडित और निजगुण शिवयोगी प्रमुख थे।

17वी सदी मे विजयनगर राज्य के पतन के बाद कुछ समय के लिए कन्नड़ साहित्य की प्रगति रुक-सी गई। पर शीघ्र ही मैसूर राज्य का उद्भव हुआ और वह साहित्य का केन्द्र बन गया। मैसूर के राजा चिक्कदेव राय (1672—1704ई०) खुद बड़े अच्छे कवि थे। उनके दरबार मे तिरुमलयि, चिक, उपाध्याय और सिगारार्य जैसे कवि-रत्न जमा थे। सिगारार्य ने 'मित्रविदा गोविद' नाटक की रचना की, जो कन्नड नाटकों में सबसे प्राचीन नाटक माना जाता है।

मैसूर राज्य के सरक्षण मे जब साहित्य की प्रगति हो रही थी, उस समय भी दो प्रसिद्ध वीर शैव कवि हुए। उनके नाम थे षडक्षरदेव और सर्वज्ञ। 'राजशेखर विलास', और 'शबर शकर विलास' षडक्षरदेव (1650 ई०) की प्रसिद्ध रचनाए हैं। सर्वज्ञ (1700 ई०) ने लोक-गीतो मे प्रचलित 'त्रिपदी' नाम के छद मे हजारो कविताए रची, जो समाज सुधार की प्रेरणा से भरी हुई है।

मुद्दण या नदलिके लक्ष्मी नारायणप्प (1900 ई०) मध्यकालीन ब्राह्मण युग के अन्तिम महान् कवि थे। वह दक्षिण कर्नाटक के रहने वाले थे। उन्होने अपनी तीन रचनाओ मे रामायण की पूरी कथा लिखी है। इनमे 'रामाश्वमेध' सबसे अधिक प्रसिद्ध है। 'रामाश्वमेध' मे कवि ने रूढियों से मुक्त अपनी भावना का बेजोड परिचय दिया है। मुद्दण ने कन्नड को टकसाली भाषा बनाने मे भी महत्वपूर्ण योग दिया। वीर शैव युग मे कन्नड़ गद्य जनता तक पहुच चुका था और कुमार व्यास जैसे लेखको ने उसे आधुनिक बना दिया था। पर मैसूर के दरबार ने इस धारा को पलट देने की चेष्टा की। दरबारी कवियो ने प्राचीन 'चम्पू' शैली को फिर से जीवित करना चाहा। परन्तु मुद्दण ने पडिताऊपन और दरबारी तामझाम को छोड अपनी रचनाओ को भाषा की सादगी से निखारा। मुद्दण के इस चोखे गद्य से कन्नड़ के आधुनिक साहित्य का सूत्रपात्र हुआ।

नन्दलिके लक्ष्मी नारायणप्प



मध्य युग और आधुनिक युग के बीच कन्नड साहित्य के क्षेत्र मे चौमुखी हलचल रही। छापेखाने चालू हो चुके थे। कन्नड मे अच्छी पत्र-पत्रिकाओ की बाढ-सी आ गई। कन्नडी लोगो ने जाना कि संसार के दूर-दूर के देशो मे जीवन और कला के विभिन्न क्षेत्रो मे क्या कुछ हो रहा है। कन्नड मे सस्कृत, अग्रेजी, बगला, आदि भाषाओ की पुस्तको का बडे पैमाने पर अनुवाद शुरू हुआ। शेक्सपियर के नाटको

और बकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यासो के अनुवाद छपे। ईसाई प्रचारकों ने पुराने ग्रथो और अभिलेखो को खोज निकाला। उन्होंने नए-नए प्रामाणिक शब्द-संग्रह, छद-शास्त्र और व्याकरण की पुस्तके तैयार कराई, और अन्त में 1915 ई० मे कर्नाटक के सभी साहित्यिक और सास्कृतिक कार्यों मे एकरूपता लाने के लिए 'कन्नड साहित्य परिषद्' की स्थापना हुई।

पद्य और गद्य की मौलिक रचनाओ की दिशा मे 20वी सदी के आरम्भ मे ही छिटपुट प्रयत्न आरम्भ हो गए थे। म० स० पुट्टण्णा, पजे वोलार वावूराव, गुल्वाडी, और म० न० कामत इनमे अगुआ थे। लेकिन वास्तविक पुनर्जागरण शुरू होने मे अभी देर थी। इसके लिए किसी युगान्तरकारी महापुरुष की आवश्यकता थी। फलत मैसूर विश्वविद्यालय के अंग्रेजी के अध्यापक स्वर्गीय बी० एम० श्रीकंठय्या मैदान मे आए। वह अग्रेजी और कन्नड, दोनो के ऊंचे दर्जे के विद्वान थे। वह टेम्स और कावेरी दोनो धाराओ के सगम थे। वह एक महान् कवि थे, जो पम्पा और रन्ना की-सी रचनाएं उन्ही की भाषा मे कर सकने के साथ-साथ सरल और आधुनिक भाषा मे भी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावो को बाध सकते थे।

सन् 1920 ई० मे अपनी 'इग्लिश गीतेगलु' मे उन्होंने अग्रेजी की श्रेष्ठ रोमानी कविताओ का अनुवाद तैयार किया। उनकी कविताओं और उनकी वाणी ने पुराने सोने को एक नया रूप और निखार दिया। इसके बाद नई-नई भावनाओ और नए रूपो के लिए जैसे द्वार खुल गया। कविताओ, नाटको, उपन्यासो और दूसरे प्रकार की रग-विरगी रचनाओ की वाढ-सी आ गई, और नए युग का प्रारम्भ हो गया—रोमानियत के युग का, पुनर्जागरण और स्वस्थ आदर्शवाद के युग का।

कविता के क्षेत्र मे श्रीकंठय्या के साथ-साथ एक वडा समूह पैदा हो गया। इनमे प्रमुख हैं—गोविद पै, डी० वी० गुडप्पा, मास्ती, बेन्द्रे, वी० सीतारामय्या, गोकाक, मुगली, पी० टी० नरसिंहाचार, राजरत्नम्, कडेगोडलु, आनद कंद, मधुर चेन्न, साली, आदि।

छोटी कहानियो का क्षेत्र तैयार करने मे म० न० कामत, केरूर और पजे ने बहुत काम किया। पर कहानी के वास्तविक स्वरूप को मास्ती ने निखारा। उन्हे कन्नड़ लघु कथा का जन्मदाता कहा जाता है। आनंद, अ० न० कृष्णराव, गोरूर आनद कद, क० गोपालकृष्णराव, और च० क० वेकट रामय्या आदि ने कहानी कला के स्वरूप को और भी निखारा, और उसमे रग-विरगापन पैदा किया।

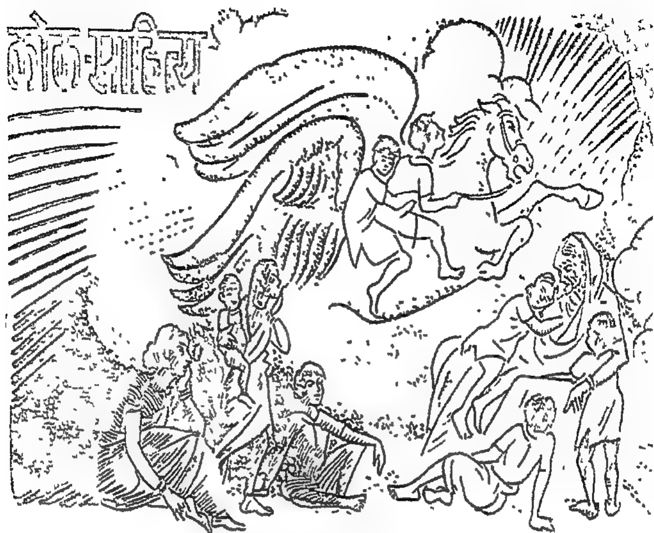

बी० एम० श्रीकंठय्या

उपन्यास लिखने की दिशा में यों तो 20वीं सदी के आरम्भ से ही मौलिक रचना का कुछ काम शुरू हो गया था, परन्तु स० र० कारंत और अ० न० कृष्णराव के निरन्तर प्रयासों से ही उसकी नींव मजबूत हुई। पुट्टप्पा, गोकाक, मुगली, ड, आदि कुछ अन्य अच्छे उपन्यासकार ह ।

कन्नड़ में सफल नाटकों की रचना टी० पी० कैलाशम् और श्रीरंग ने की। कैलाशम् की खुशमजाकी, उनकी मानवीयता और उनकी सूझ-बूझ बेजोड थी। ससा, कारंत, कृष्णराव, कस्तूरी, बेन्द्रे, आदि दूसरे सफल नाटककार हैं। अ० न० मूर्तिराव, व० सीतारामय्या, गोरूर और दूसरे लेखकों ने निवन्ध लिखने की दिशा में पहल की।

सन् 1930 के बाद कन्नड़ साहित्य में प्रगतिवाद की धारा आई। साहित्य में आदर्शवादी और रोमानी दृष्टिकोण के स्थान पर यथार्थवादी और समाजवादी-दृष्टिकोण छा गया, जिसमें मनोविज्ञान की एक लहर भी शामिल थी। 'तरासु' वासवराज कट्टमनी, इनामदार, क० ट० पुराणिक, निरजन, आदि इस धारा के प्रमुख साहित्यकार हैं।

इसके वाद से कई छोटी-वड़ी प्रवृत्तिया उभरती और फूलती-फलती रही हैं। अनेक नए और प्रतिभाशाली लेखक मैदान में आ गए और आते जा रहे हैं, और इस प्रकार कन्नड़ साहित्य की प्रगति वरावर जारी है।



लोक-साहित्य उन किस्सो, कहानियो, गीतो, नाटको, आदि को कहते है, जिन्हें आम लोग न जाने किस युग से आपस में कहते और सुनते आए है । इधर कुछ दिनो से ऐसे साहित्य की चुनी हुई चीजें लिखी और छापी भी जाने लगी है । पर आम तौर से लोक-साहित्य लिखा नही जाता । लोक-साहित्य की किस कथा और किस गीत को किसने और कब बनाया, यह कोई नही जानता । लोक-साहित्य एक पीढी से दूसरी पीढी को विरासत में मिलता है, और इस प्रकार उसका सिलसिला चलता रहता है । लोक-कथाओ, गीतों, कहावतो और पहेलियो में गांव के लोगो की दशा, उनकी आकाक्षाओ और उनके भावों का सच्चा चित्र होता है । इसीलिए कहते है कि किसी देश की जनता को समझने के लिए उस देश के लोक-साहित्य को समझना जरूरी है ।

(1)

मराठी लोक-साहित्य

लोक-कथाएं इकट्ठी करने में महाराष्ट्र के लोग आगे रहे हैं। मराठी की जो लोक-कथाए इकट्ठी की गई है, उनमे कुछ बहुत ही पुरानी हैं। विद्वानो की राय है कि कुछ लोक-कथाओ के मूल सातवाहन राजाओ के समय में, यानी ईसा से भी एक सदी पहले, मौजूद थे। भारत में लोक-साहित्य जमा करने का काम सबसे पहले गुणाढ्य ने शुरू किया था, जो महाराष्ट्र के ही रहने वाले थे। गुणाढ्य का समय ईसा से लगभग पचास बरस पहले माना जाता है। इससे यह आसानी के साथ समझा जा सकता है कि उनकी जमा की हुई कथाएं कुछ नही, तो उनसे पांच-छः सौ वर्ष पुरानी अवश्य रही होंगी।

बाद की लोक-कथाओ में पंच-कथाएं, विद्याधरों की कहानियां तथा खंडोबा और चंद्रहार की कहानियां सबसे पुरानी हैं। 'विद्याधर' की कल्पना 'जिन' की कल्पना से मिलती-जुलती है, और ऐसा लगता है कि यह कल्पना ईरान से ली गई थी। 'जिन' की तरह मराठी लोक-साहित्य में 'विद्याधर' भी ऐसे जीव हैं, जो दिखाई नही देते और बहुत शक्तिशाली होते हैं। वे प्रेतों की तरह सताने का काम केवल तभी करते हैं, जब लाचार हो जाते हैं, वरना वे आम तौर से भलाई ही करते हैं। विद्याधरो की कहानियां ऐसी लोकप्रिय हुईं कि कुछ पुरानी कहानियों में भी विद्याधर के प्रसग जोड़ लिए गए। खंडोबा की कहानियां भी बहुत दिलचस्प हैं। खंडोबा एक प्रकार के विरक्त ज्ञानी लोग हैं, जो संस्कृत साहित्य में स्कंद और तमिल में सुब्रह्मण्यम् के नाम से आए हैं। अन्तर यह है कि मराठी के खंडोबा ब्रह्मचारी नही है। उनकी दो पत्निया हैं। इतनी बात जोड देने से खडोबा लोगों के चरित्र और उनकी कहानियों मे भरपूर रस आ गया है। पुरानी लोक-कथाओं के रूप अब बहुत कुछ बदल गए हैं और समय बीतने के साथ अनेक लोक-गीतों की कथाओं पर धार्मिक सम्प्रदायो के रग चढ गए हैं।

जहां पुराने कथा-गीतों के नायक आदर्श हैं, वहां धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभाव से उनकी जगह कृष्ण कन्हैया या दूसरे देवताओं ने ले ली है।

आम की नई फसल पर 'जिम्मा' नाम का एक नाच खेला जाता है। इसे खेलते हुए एक गाना गाया जाता है, जिसका पुराना रूप है :

आंबा पिकतो रस गलतो,
कोकणचा राजा जिम्मा खेलतो।

(आम गदराय, रस रेले, कोकण का राजा जिम्मा खेले।)

अब "कोकणचा राजा जिम्मा खेलतो" की जगह "कृष्ण कन्हैया जिम्मा खेलतो" हो गया है।

जैसे बंगाल आदि में व्रत-कथाएं हैं, वैसे महाराष्ट्र में भी हैं। पर उनमें धर्म-भावना कम, लोक-जीवन अधिक है। उन पर आडम्बर से खाली वैदिक संस्कारों और सीधे-सादे मानव-जीवन की छाप है। इस अर्थ में मराठी की व्रत-कथाएं अन्य प्रांतों में पाई जाने वाली व्रत-कथाओं से बिल्कुल भिन्न हैं। भारत के दूसरे भागों की व्रत-कथाएं भी महाराष्ट्र में आईं, पर वे बहुत-कुछ बदल गई हैं।

मराठी लोक-साहित्य का एक बहुत बड़ा भाग गीतों और नाचों के साथ जुड़ा हुआ है। क्वार में लड़कियां गरबा या करमा-धरमा की तरह 'हादगा' (अगस्त) या 'भोंडल' (भाद्र के) गीत गा-गाकर गोल-गोल चक्करों में नाचती हैं। अक्षय-तीज को चैत-गौरी के नाच होते हैं। कोकण में गौरी-गणपति के नाच मर्द नाचते हैं, जिनमें सवाल-जवाब होते हैं। इन सभी नाचों के साथ कोई-न-कोई गीत-कथा होती है।

श्रम-गीत भी अधिकतर कथा-प्रधान हैं। धान की कटनी और रोपनी पर एक अगुआ मजदूर 'लावणी' गाता है और दूसरे सुर और ताल देते हैं। ये लावणियां शहरी लावणियों से भिन्न हैं। इनमें कथा के अंश तो होते ही हैं, एक और विशेषता यह होती है कि कथा आशुकविता के सहारे आगे चलती है। यानी तत्काल तुके जोड़-जोड़ कर लोग कथा को आगे बढ़ाते जाते हैं।

'ओंवी' छंद को मराठी के कुछ संत कवियों ने अमर कर दिया है। मूल रूप से वे छंद रचना और स्वर, दोनों ही बातों में मराठी के लोक-छंद हैं। कुटाई-पिसाई की ओवियां किताबी ओवियों से भिन्न होती हैं। ओवियों का आरम्भ 'पहली मांझी ओवी' (पहली मेरी ओंवी) से होता है। वे शादी-ब्याह, गर्भाधान, आदि संस्कारों पर भी गाई जाती हैं। कुणबियों (महाराष्ट्र की एक किसान जाति) की ओवी में राम-कथा

के भी बदले हुए रूप मिलते हैं। मुर्गा भोर में राम को जगाने के लिए बोलता है। एक पहर दिन चढ़े वह गजर बजा कर उन्हें शिकार पर निकलने का समय बताता है, दोपहर को उन्हें 'भाखर' (बाजरे की रोटी) खाने के लिए बुलाता है और सांझ के समय कुटिया को वापस लौटने के लिए पुकारता है।

मराठी लोक-गीतों में ललित, भारुड, वासुदेवगीत, गोसावीगीत, गुरावी गीत श्राद्ध गीत, लिंबा, चकवे, आदि गाने खास हैं। इनमें से हर एक की अपनी-अपनी विशेषता और अपना-अपना महत्व है। इनमें से चकवा नाम के गाने बहुत सरस होते हैं। चकवा कई तरह के होते हैं। उनमें प्रेमी और प्रेमिका के सवाल-जवाब चलते हैं। 'चकवा' नाम ही शायद चकवा-चकवी के आदर्श प्यार के आधार पर पड़ा है। मांझियों के चकवों में माझी प्रेमी होता है और नाव प्रेमिका। मांझी के प्राण सागर की लहरों के कारण सकट में हैं। पर नाव का प्रेम ऐसा ढाढ़स और इतना साहस देता है कि मांझी उस सकट की कोई परवाह नहीं करता। इसी प्रकार जगल की सैर के चकवा अथवा युवक-युवतियों के प्रेम के चकवा भी साहस की घटनाओं से भरे होते हैं।

मराठी लोक-साहित्य में 'खरे गान' कहलाने वाली 'शाहीरी कविता' (भाट काव्य) या पवारा का भी एक खास महत्व है। कुछ लोगों का अनुमान है कि पंवारा बहुत पुराने जमाने में भी था, पर वह मुस्लिम काल में खत्म हो गया था। शिवाजी के काल में उसी का नया जन्म हुआ। जो भी हो, शिवाजी के समय में तलवारों की खड़क और घोड़ों की टाप के स्वर के साथ ढोल और डफ पर वीरों की गाथा गाने वाले कवियों का एक वर्ग ही बन गया। उन कवियों के रचे गानों में कवि-कौशल होने के साथ ही ठेठ लोक-जीवन की भी झलक थी।

इधर तीस-चालीस साल के भीतर मराठी लोक-साहित्य पर काफ़ी काम हुआ है। शायद उतना काम और किसी भारतीय भाषा में नहीं हुआ है। यह काम लोक-साहित्य के संग्रह और उसके विश्लेषण तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इस बात पर भी खोज हुई है कि लोक-साहित्य से समाज-शास्त्र या प्राणि-विज्ञान के लिए क्या निष्कर्ष निकलते हैं।

चिड़िया और कौआ

एक थी चिडिया और एक था कौआ। चिडिया ने पाए मोती, कौए ने पाए चने। कौए ने चने के दाने खा लिए और चिडिया के पास जाकर बोला—"चिड़ीवाई, चिडीवाई, देखू तेरा मोती।" चिडिया बोली—"ना वावा, ना ! कही चुरा-बुरा ले गए तो ?" कौआ बोला—"नही जी, अभी देख कर वापस कर देता हू।" तव चिडिया ने उसे मोती दे दिए। मोती मिलते ही कौआ उडनछू हो गया। चिडिया कौए से बोली—"कौए, कौए, मेरा मोती दे।" कौआ बोला—"नही देता, जा।" तव चिड़िया पेड के पास गई और पेड से बोली—"पेड, पेड, कौए को गिरा।" पेड बोला—"नही गिराता, जा।" तव चिडिया वढई के पास गई और बोली—"वढई, वढई, तू पेड काट।" वढई बोला—"नही काटता, जा।" तव चिडिया राजा के पास गई और बोली—"राजा, राजा, वढई को डाट दे।" राजा बोला—"नही डाटता, जा।" तव चिडिया रानी के पास गई और बोली—"रानी, रानी, राजा से रूठ।" रानी बोली—"नही रूठती, जा।" तव चिडिया चूहे के पास गई और बोली—"चूहे, चूहे, रानी की साड़ी कुतर।" चूहा बोला—"नही कुतरता, जा।" तव चिडिया विल्ली के पास गई और बोली—"बिल्ली, बिल्ली, चूहे



चिड़िया ने अपना मोती मागा।

को खा।" बिल्ली बोली—"नही खाती, जा।" तब चिड़िया कुत्ते के पास गई और बोली—"कुत्ते, कुत्ते, बिल्ली को काट।" कुत्ता बोला—"नही काटता, जा।" तब चिड़िया डडे के पास गई और बोली—"डंडे, डडे, कुत्ते को पीट।" डंडा बोला—"नही पीटता, जा।" तब चिड़िया अग्नि के पास गई और बोली—"अग्नि, अग्नि, तू डडे को जला।" अग्नि बोली—"मै नही जलाती, जा।" तब चिड़िया समुन्दर के पास गई और बोली—"समुन्दर, समुन्दर, तू आग बुझा।" समुन्दर बोला—"नही बुझाता, जा।" तब चिड़िया हाथी के पास गई और बोली—"हाथी, हाथी, समुन्दर को मथ।" हाथी बोला—"मै नही मथता, जा।" तब चिड़िया चीटी के पास गई और बोली—"चीटी, चीटी, तू हाथी की सूड मे घुस।" चीटी ने कहा—"हा, मै हाथी की सूड मे घुस जाऊगी।" अब चीटी जो सूड के पास पहुची, तो हाथी बोला—"नही, नही, मै समुन्दर को मथूगा।" समुन्दर बोला—"नही, नही, मै अग्नि को बुझाऊगा।" अग्नि बोली—"नही, नही, मै डडे को जलाऊगी।" डडा बोला—"नही, नही, मैं कुत्ते को मारूगा।" कुत्ता बोला—"नही, नही, मै बिल्ली को काटूगा।" बिल्ली बोली—"नही, नही, मै चूहे को खाऊगी।" चूहा बोला—"नही, नही, मै रानी की साडी कुतरूंगा।" रानी बोली—"नही, नही, मै राजा से रूठूगी।" राजा बोला—"नही, नही, मै बढ़ई को डाटूगा।" बढई बोला—"नही, नही, मै पेड को काटूगा।" पेड़ बोला—"नही, नही, मै कौए को गिराऊगा।" कौआ बोला—"नही, नही, मै मोती दे दूगा।"

यह कह कौए ने मोती दे दिए और चिड़िया खुश होकर फुर से उड़ गई।

नन्हीं-मुन्नी कहानी खत्म। तुम्हारा हमारा पेट भरे।



चींटी हाथी की सूड में घुसने को तैयार हो गई।

पुरखों की हजामत

एक था राजा। पहली रानी से उसके एक लड़का हुआ। उसके बाद रानी मर गई। राजा तब बूढ़ा हो गया था। राजा ने फिर भी दूसरी शादी कर ली। नई रानी में और पहली रानी के लड़के में हमेशा झगड़ा होता। नई रानी राजा के कान भरती और लड़के को महल से निकालने को कहती। राजा के तो, समझो, पैर कब्र में लटके थे। उसने रानी को बहुत समझाया, कहा—"राजकुमार हमारे घर का दीया है। मेरे बाद वही गद्दी पर बैठ कर राज चलाएगा। वह नहीं रहा, तो राज चोरो-उचक्को के हाथ में चला जाएगा और वे तुम्हें बहुत तंग करेंगे।"

इस पर नई रानी ने दूसरी चाल चली। झूठमूठ कह दिया कि मैं भी पेट से हूं। राजा को बहुत बुरा लगा। पर रानी के आगे उसकी एक न चली। राजा के पास एक चतुर नाई और एक हवलदार था। हवलदार महल की चौकीदारी करता था। नाई बूढ़ा था और उसके एक सुन्दर बेटा था। रानी को उस सुन्दर लड़के से प्रेम हो गया था। वह उसको किसी तरह चौकीदार बनाना चाहती थी। लेकिन हवलदार के होते उसकी इच्छा पूरी न हो सकी। उसने तरह-तरह से उसे नौकरी से हटाने की कोशिश की। मगर वह बहुत चालाक था। उसके खिलाफ रानी जो भी बातें उठाती, वह उन सबका ठीक-ठीक जवाब दे देता। राजा हवलदार को बहुत मानता था। हवलदार को राजकुमार का महल से निकाला जाना भला कैसे भाता? लेकिन वह उस समय वहां था नहीं। रानी ने पहले ही ऐसी जुगत कर दी थी। इसलिए वह कुछ नहीं कर सका। राजकुमार निकाल दिया गया। अब केवल हवलदार रानी की राह का कांटा रह गया। इसलिए रानी उसे हटाने की कोशिश में बराबर लगी रही। एक दिन उसने नाई को अपना इरादा बताया। नाई ने कहा कि सोच कर तरकीब बताऊंगा। नाई इस बात से खुश हुआ कि रानी उसके लड़के को चाहती है, और उसे हवलदार बनवा देगी।

एक दिन राजा और रानी बहुत खुश-खुश बातें कर रहे थे। नाई ने अच्छा अवसर देख उनके पुरखों की बात छेड़ दी—"आपके पुरखे कितने बहादुर थे! मैं

दो पीढ़ियों से इसी महल मे काम कर रहा हूं। इसी राजधानी मे बडा हुआ हू। आपके नाना और पिता तो बहुत ही अच्छे थे। पता नही, स्वर्ग मे बेचारो का क्या हाल होगा ! किसी को भेज कर उनकी खबर मगानी चाहिए। मै अगर जवान होता, तो खुद ही जाकर उनसे मिल आता। लेकिन अफसोस, मै तो बूढा हू।" रानी ने झट से जुगत सुझाई। वह राजा से बोली—"हवलदार जवान और तन्दुरुस्त है। पुरखो से मिलने इसको ही भेजा जाए।" राजा ने उसकी बात मान ली और हवलदार को हुक्म दे दिया। हवलदार ने राजा को बहुत समझाया। लेकिन राजा ने अपना हठ नही छोड़ा। इतना ही नही, राजा ने यह भी हुक्म दे दिया कि अगर एक बरस मे यह काम नही हुआ, तो उसे मौत के घाट उतार दिया जाएगा।

हवलदार निराश होकर घर लौटा। चिन्ता के बोझ से दवा वह ओसारे में बैठ गया। बेचारे को कुछ सूझता ही न था। "नाई ने अपने फायदे के लिए मेरी जान सकट मे डाली। रानी तो उससे मिली हुई है ही।" बेचारा यही सब सोच-सोच कर परेशान हो रहा था। इतने मे उसकी लडकी उसे खाने के लिए बुलाने बाहर आई। देखती क्या है कि उसके बाप का चेहरा काला पड गया है। उसने डरते-डरते बाप की चिन्ता का कारण पूछा। हवलदार ने सारी कहानी कह सुनाई। लडकी चतुर थी। उसने थोड़ी देर सोच कर एक जुगत सुझाई। बोली—"बाबा, चिन्ता न करो। मै तुम्हे रास्ता बतलाती हू। राजा से एक हजार मुहरे माग कर एक बहुत बडी सुरग खुदवाओ। राजा से कहना कि तुम उसी सुरंग मे से होकर सीधे स्वर्ग जाओगे। सुरग की खुदाई जब पूरी होने लगे, तब उसमे एक चोर दरवाजा बनवा लेना। फिर पूरी तैयारी करके उस सुरग मे छिप कर बैठ जाना। मै चोर दरवाजे से तुम्हे खाना पहुंचाती रहूगी। छ

हवलदार को पुरखों का हाल जानने के लिए स्वर्ग जाने का आदेश दिया गया।




वह सुरग में जाकर छिप गया।

महीने वाद तुम निकल आना और कह देना कि मै राजा के पुरखो से मिल कर आया हू।" हवलदार को लडकी की वात पसद आ गई। उसने राजा से एक हजार मुहरे माग कर सुरग खुदवानी शुरू कर दी।

छ महीने मे सुरग तैयार हो गई। तब हवलदार ने स्वर्ग जाने की तैयारी की। यह खबर आग की तरह सारी राजधानी मे फैल गई। वहुत सारे लोग झडे-झडिया और पालकिया लेकर जमा हो गए। सबने हवलदार की पूजा की और कुछ लोग उसे पहुचाने के लिए थोडी दूर तक सुरग मे भी गए। हवलदार ने पहले ही सुरग के भीतर एक जगह तय कर ली थी। वह वही जाकर छिप गया।

एक दिन वीता, दो दिन वीते, होते-होते दो महीने वीत गए। पर हवलदार वापस नही आया। यह देख कर रानी और नाई को विश्वास हो गया कि अब हवलदार वापस नही आ सकता। रानी को वड़ी खुशी हुई। उसने थोडे दिनो वाद ही नाई के लड़के को हवलदार वनवा दिया।

होते-होते छ महीने वीत गए। एक दिन अचानक लोगो ने देखा कि हवलदार वापस आ गया। उसकी दाढी-मूछ वढी थी। इसलिए पहले तो वह पहचाना ही नही जा सका। लेकिन जव लोगो को पूरा विश्वास हो गया कि वह हवलदार ही है, तव वे फिर झडे-झडिया और पालकिया लेकर आए और वडे मान-सम्मान के साथ उसे राजमहल मे ले गए। राजा ने उससे अपने पुरखो का हाल पूछा। तब वह वोला—"राजाओ के राजा! आपके पुरखे स्वर्ग में वडे आराम से है। उन्होने वहुत खुश होकर आपको असीस भेजी है। स्वर्ग से यहा लौटने को मेरा तो जी ही नही चाहता था, लेकिन आपके हुक्म से वापस आना पडा। हा, पुरखो ने आपको एक सदेश भेजा है।"

"वह क्या?" राजा ने अधीर होकर पूछा। रानी के भी कान खडे हो गए। हवलदार ने कहा—"स्वर्ग मे सव कुछ है। लेकिन वहा नाई नही है। इसलिए आपके पुरखो ने वडी मिन्नत की है कि आप अपने महल के नाई को उनके पास भेज दे। वालो का वोझ उनसे उठाया नही जाता। मुझे ही देखिए न। छ महीने मे वालो की क्या हालत हो गई है।"

राजा को अपने पुरखो की दशा सुन कर वहुत दुख हुआ। हवलदार ने तुरन्त इतनी वात और जोड दी—"मै तो वहा से होकर आया ही हू। राह मे कोई तकलीफ

नही है। और वहां सब आराम ही आराम है।" बस फिर क्या था, राजा ने फौरन हुक्म दे दिया कि नाई स्वर्ग के लिए तुरन्त रवाना हो जाए।


हवलदार स्वर्ग का हाल बता रहा है।

नाई हवलदार की चालाकी समझ गया। लेकिन राजा के हुक्म के आगे क्या कर सकता था ? चुपचाप स्वर्ग जाने की तैयारी करने लगा। हवलदार ने पहले ही से उस सुरग मे काट-कूट, कूडा-कवाड, अंजड-बजड़ फैला दिए थे। झडे-झडियो और सारे ताम-झाम के साथ नाई को भी सुरग के पास लाया गया। लोगो ने उसकी भी पूजा की। हवलदार भी उसे थोडी दूर तक पहुचा आया। लौटती बार उसने नाई से कहा—"नाक की सीध मे चले जाना। आगे अपनेआप स्वर्ग का रास्ता दिखाई देगा।" पर हवलदार ने सिर्फ वापस लौटने का दिखावा किया। वह लौटा नही, बल्कि छिप कर देखने लगा कि नाई क्या करता है। नाई एक तो बूढा था, दूसरे कांटो और ककड-पत्थर से भरा रास्ता। वह काटो से बिध-बिंध कर और पत्थरो से ठोकरे खा-खाकर एकदम छलनी हो गया, और वही गिर पड़ा। हवलदार दूर से यह तमाशा देख रहा था। उसने इधर-उधर बिखरे हुए बास, लक्कड़ और काट-कूस मे चुपके से आग लगा दी। आग फौरन सुरग के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैल गई। नाई बेचारा उस आग मे जल कर राख हो गया।

राजा ने महीनो नाई की राह देखी। पर नाई वापस नही आया। हवलदार मजे से फिर अपनी जगह काम करता रहा। नाई का लडका अब राजा का नाई बन गया था।

नाई को खत्म करके अब हवलदार ने रानी से निबटने की सोची। उसने राजा के बेटे का पता लगाने की ठानी और यह काम उसने अपनी चालाक लडकी को सौपा। बडी मुश्किल से लडकी ने राजकुमार को खोज निकाला। वह अब बडा हो गया था और सब कुछ समझने लगा था।

राजा के लडके ने फौज जमा की और उसने अपने बाप के राज्य पर हल्ला बोल दिया। राजा, रानी और नाई सब घबरा गए। राजा बूढा था। रानी की सलाह से हवलदार और नाई को लडाई पर भेजा गया। दोनो ने अपनी फौजे सम्भाली और राजकुमार से लडने चले। हवलदार तो राजकुमार से मिला हुआ था ही। राजकुमार ने थोडी ही देर मे नाई की फौज को हरा दिया। उसने नाई का सिर उड़ा दिया और

रानी को पकड लिया। रानी ने जैसा किया था, उसका वैसा फल पाया। हवलदार ने आकर सारी कहानी राजा को सुनाई। राजा बहुत खुश हुआ। उसने खुशी से राजकुमार को गले लगाया।

दूसरे दिन राजकुमार को बाजे-गाजे और धूमधाम के साथ गद्दी पर बैठाया गया। राजकुमार ने राजा की इच्छा से हवलदार की लड़की से शादी कर ली। सब हँसी-खुशी रहने लगे और राजकुमार ने आनन्द से बरसो तक राज किया।

जैसे राजकुमार के दिन फिरे, वैसे सबके दिन फिरे। हमारी कहानी पूरी हुई।

लोक-साहित्य

(2)

गुजराती लोक-साहित्य

गुजरात मे अनेक जातियो और धर्मो के लोग बसते है। हिन्दू, मुसलमान और पारसी गुजरात मे सैकडो वर्षो से रहते आए है। बाहर से शक, सीथियन, यूनानी, आदि जातियो का आना-जाना भी इस भूमि मे होता रहा है। समुद्र के किनारे का प्रान्त होने की वजह से गुजरात के सौराष्ट्र प्रदेश मे अफ्रीका के हब्शी जाति के भी कुछ लोग आ बसे है। विभिन्न जातियो वाले इस प्रांत के लोक-साहित्य का बहुरंगी होना स्वाभाविक है। काठी, अहीर, वाघेरा, मेर, रबारी, आदि मशहूर जातिया सौराष्ट्र मे रहती है, और भील, ठाकरडा, आदि जातियां उत्तरी और पूर्वी गुजरात मे बसी हुई है। सौराष्ट्र बहुत पुराना प्रदेश माना जाता है। श्रीकृष्ण की द्वारिका इसी प्रदेश में है। अशोक के शासन-काल मे मौर्यो का प्रभाव यहा तक फैला हुआ था। ईसवी सन् की छठी शताब्दी मे वल्लभीपुर

का प्रतापी राजा भी इसी प्रदेश मे था और आर्यो से भी पहले की सिन्धु-सभ्यता की निशानियां भी यहा प्राप्त हुई है। ऐसी प्राचीन भूमि मे हजारो वर्षो से लोक-साहित्य का सर्जन होता आ रहा है।

गुजरात का लोक-साहित्य प्राय सारा अनलिखा साहित्य है। अभी पिछले कुछ वर्षो मे इसका सकलन और सम्पादन हुआ है। इस वहुमूल्य कार्य का श्रेय सबसे अधिक झवेरचद मेघाणी को है। उन्होने करीव पचीस साल तक इस क्षेत्र मे काम किया। काठियों के डायरो (दरबारो-सभाओ), रवारियो के नसेड़ों (वस्तियो), वरड़ा नामक पहाड़ी मे वसे हुए मेरों, गाव की चौपालो और भजन-मडलियो मे जा-जाकर उन्होने इस वहुमूल्य साहित्य को इकट्ठा किया। सौराष्ट्र के वीरो की शौर्य-गाथाएं; ग्रामवासियो के गीत, नाविकों के गीत, लग्न, विवाह और गमी के गीत, दोहे, प्रेमकथाए, सत-कथाए, व्रत-कथाए, आदि विविध सामग्री जमा करके उन्होने 'सोरठी बरार', 'वटिया', 'रढवाली रात सोरठी गीत-कथाए', 'सौराष्ट्री रसधार', 'सोरठी सत', आदि सग्रह प्रकाशित किए। गुजराती लोक-साहित्य के ये अनमोल मोती हैं।

गुजराती लोक-साहित्य को जीवित रखने वाले भाट, चारण, वारोट, भजनीक, आदि घुमक्कड लोग थे। वे गाव-गाव घूमते हुए रियासतो के मुखियो के दरवार मे गीत गाते और कथाए पेश करते थे। इन कथाओ, काव्यो और गीतो मे प्रेम, वीरता, साहस, उदारता, अतिथि-सत्कार, काम करने की लगन, देस-प्रेम, आदि अनेक सुन्दर भाव भरे है। फौज मे नौकरी करने वाले, जहाजो मे चढ कर विदेश जाने वाले, गाय-भैसो को लेकर दूर-दूर तक के प्रदेशो मे घूमने वाले पुरुषो की विरहिणी नारियो के विरहे भी उनमे है। आन पर अटल रहने वाले, शरणागत की रक्षा के लिए प्राणो की आहुति देने वाले, धर्म, धरा या नारी की इज्जत वचाने के लिए वलि चढ जाने वाले मर्दो की वीरता की अनगिनत कथाओ से यह साहित्य भरा है। ऐसी कथाएं भी मिलती है, जिनमें किसी मुसलमान भाई की रक्षा के लिए कोई हिन्दू अपने को होम देता है, या किसी हिन्दू भाई की सहायता मे मुसलमान अपने को निछावर कर देता है। उस जमाने मे जिन्हे अछूत माना जाता था, उनकी वहादुरी और दिलेरी की घटनाए भी इनमें मौजूद है। सौराष्ट्र मे शायद ही ऐसा कोई गाव हो, जिसकी सीमा पर वीरो की 'खाभिया' न हो। आन पर मिटने वाले वीरो की यादगार मे घोडे पर सवार आदमी की मूर्ति खडी की जाती है। उन्हे सौराष्ट्र मे 'पालिया' 'शूरा पूरा' या 'खाभी' कहते है। सौराष्ट्र के लोक-साहित्य मे घोडे, ऊट, भैस, आदि पशुओ की तारीफ मे भी गीत और कथाए है। सौराष्ट्र की जातियां

अधिकतर घुमक्कड जातिया थी, जो अपने साथ-साथ अपने पशुओ को भी लिए घूमती थी। कई स्थानो पर उनके घोड़ो की समाधिया पाई जाती है। भैंस को चारण लोग नाग-लोक की पदमणी (पद्मिनी) कहते थे। वहां भैंस की अनेक नस्लें होती थी और चारण बडे प्रेम से उनके नाम रखते थे। भैंसो के कुछ नामो का परिचय देने वाला एक गीत देखिए—

गणुं नाम कुंढी तणां, नागल्युं, गोटक्युं,
नेत्रम्युं, नालक्युं, शींग नमणां।
तीणल्युं, भूसड्युं, भोज, छोगालियुं,
बीनडयु, हाथणी, गजां बमणां।

काठी लोग घोडो को पालने का बहुत खयाल रखते थे और उनकी नस्ल को शुद्ध रखने का यत्न करते थे। कई लोक-गीतो मे तो "जीवे घोडा, जीवे घोडा" ध्रुवपद पाया जाता है।

सौराष्ट्र के लोक-साहित्य का मुख्य छंद है दोहा। दोहा, दुहा, दोहरा, इत्यादि नाम से प्रसिद्ध इस छद का वैसे तो सारे उत्तर भारत मे चलन है, लेकिन सौराष्ट्र के चारण कवियो की जीभ पर चढ कर दोहे ने जो शक्ति धारण की है, वह देखते ही बनती है।

इसका जोर, इसकी बुलदी और इसके नाद का सौन्दर्य देखना हो, तो सौराष्ट्र के गावो मे जाकर देखिए। सौराष्ट्र के गिरनार पर्वत की तराई मे और कृष्णजी के प्रसिद्ध तीर्थ माधवपुरी मे हर वर्ष मेले लगते है। इन मेलो मे लोक-साहित्य की होड लगती है और तीन-तीन दिन और रात तक दोहे, छक्कडिए, डोढिए, आदि छदो मे लोक-गीतो की महफिल जमती है। मारवाड की तरह सौराष्ट्र मे भी होली के दिन होलिका दहन होता है, और आग जलाई जाती है। उस आग के आसपास भी लोक-गीत, रास, लकुट रास कथाओ की धारा उमड पडती है। समुद्र के किनारे बसी हुई 'खारवा' (नाविक) और जगलो मे बसी हुई भील जाति के लोक-गीत भी बहुत रोचक और भावपूर्ण होते है।

गुजरात के काठियावाड़ प्रदेश का लोक-साहित्य बहुत भरा-पूरा है। काठियावाड का अर्थ है काठियो के रहने की जगह। काठी शायद सीथियन जाति के लोग थे। आज भी वहां काठी बसते है, पर अब उनका वह पुराना गौरव समाप्त हो चुका है। काठी मुखिया अपने अनुयायियो की जो सभा बुलाते थे, उसे 'डायरा' कहा जाता था। डायरे मे प्राय हथेली मे घोल कर अफीम पी जाती थी। इसे 'कसूबा' लेना कहते थे। अतिथि की आवभगत बिना कसूंबे के अधूरी मानी जाती थी। पुराने जमाने की काठियो की वीरता और उदारता की एक अनूठी कहानी यहा दी जाती है।

नेक दुश्मन

मुंजासर और चोटीला नाम के काठियो के दो प्रसिद्ध गाव थे। मुजासर के काठियो का सरदार भोकावाला दबदबे का आदमी था। उधर चोटीला गाव का काठी सरदार रामाखाचर भी भोकावाले से उन्नीस नही था। दोनो के पास लगभग बराबर की सेना और एक-से महल-अटारी थे।

मुजासर गाव के सरदार भोकावाला का एक मौसेरा भाई था। उसका नाम मामैयावाला था। रामाखाचर और मामैयावाला मे दुश्मनी थी। एक दिन दोनो मे ठन गई, लोहे से लोहा बजने लगा और मामैयावाला मारा गया। रामाखाचर ने उसका गाव लूट लिया और उसके जानवर हाक कर अपने गाव की ओर ले चला। रास्ते मे मुजासर पडता था। अबेर हो चुकी थी। इसलिए उसने मुजासर मे ही डेरा डाला।



खाने का सामान लेकर वह रामाखाचर के डेरे की ओर चल पडा।

भोकावाला को जब इसकी खबर मिली, तब उसने तुरन्त रामाखाचर के पास सदेश भेजा कि तुम आज हमारे पाहुने हो। हमारे गाव मे न अपना कसूबा पीना, न अपनी रसोई बनाना। बाजरे की रोटिया, गुड़, मक्खन के लोदे, सोधे चावल, दही के कूडे और घडो दूध लेकर वह रामाखाचर के डेरे की ओर चल पडा।

रास्ते मे उसे एक आदमी जाता हुआ दिखाई दिया। भोकावाला ने अन्दाज लगाया, "कही यह नाजभाई दाती तो नही है। हा-हा, वही मालूम होते है।"

अपना घोडा रोक कर उसने पुकारा, मगर नाजभाई रुके नही। उसने फिर पुकारा, लेकिन नाजभाई ने मुड कर भी नही देखा। उसने फिर मनुहार की—"रामदुहाई, नाजभाई, जरा सुन तो लो।"

नाजभाई रुके तो, पर उन्होंने कन्धे से अंगोछा उतार कर अपने मुह पर डाल लिया। भोकावाला समझ गया कि जरूर कुछ दाल मे काला है। पूछने पर नाजभाई बोले—"भामैयावाला के लहू का कसूवा पीने जा रहे हो, क्यो ?"

भोकावाला को पता नही था कि रामाखाचर भामैयावाला को मार कर और उसका गांव लूट कर लौट रहा है। नाजभाई ने सब हाल बताया। सुन कर भोकावाला ने सारा सामान कौओ-कुत्तो को फेकवा दिया और घर की ओर अपना घोडा मोड लिया ।

इसके बाद भोकावाला ने एक घुडसवार रवाना किया। रामाखाचर के पड़ाव पर पहुच कर उसने संदेश सुनाया—"तुमने मेरे मौसेरे भाई का खून किया है, सो तैयार रहना ! चोटीला की ईंट से ईंट बजा दी जाएगी।"

रामाखाचर ने दूत से कहा—"हम भी जाकर तैयारी करते है। भोकावाला से कहना, देर न करे, जल्दी आए।"

चोटीला मे हलचल मच गई। रामाखाचर के तो कोई बेटा नही, उसके भाई के एक बेटा है। दो भाइयो के बीच वही एक अकेली सन्तान है। उसी से वश चलने की उम्मीद थी। उसने हठ ठान ली कि भोकावाला से मै लोहा लूगा। मै अकेला रण मे जाऊगा। सबने लाख समझाया, पर काठी का लड़ैत बाका कही अपना हठ छोड़ सकता था !

दो सौ जवानो को लेकर वह चल पड़ा। गाव की सीमा पर भोकावाला तैयार था। लडके ने भोकावाला के दात खट्टे कर दिए। पर भोकावाला पुराना खिलाडी था। अन्त मे जीत उसी की हुई। रामाखाचर का भतीजा मारा गया। उसकी लाश पर चादर डाल भोकावाला मुजासर लौट गया। लडाई खत्म होने पर रामाखाचर युद्धभूमि मे आया। शवो के ढेर पड़े थे। उनका अग्नि-सस्कार किया गया।

इसके बाद डायरा (काठी मुखिया के अनुयायियो की सभा) बैठी। सभी उदास थे। रामाखाचर ने कहा—"खबर भेज दो, हम चढाई करेंगे। भोकावाला मुजासर को बचा सके, तो बचा ले। एक-एक के साथ काठी जूझेगा, और अन्त मे हम-तुम।"



भोकावाला पुराना खिलाड़ी था।

भोकावाला ने जवाब दिया—"आप बुजुर्ग है, कष्ट न करे। हम खुद फिर चोटीला आ रहे है। वही निबटेंगे।"

रामाखाचर अपनी पत्नी से बोला—"कठियाणी, अब जीवन का क्या भरोसा। एक साध रह गई है। जीते जी अगर अपनी लडकी गीगी के हाथ पीले कर लेता, तो मन मे कोई कसक न रह जाती।"

रामाखाचर की पत्नी को बात जंच गई। विवाह की तैयारी शुरू हुई। लडकी के लिए हाथीदांत की चूडिया दरकार थी। हलवद नगर के सेठ मोतीचन्द के पास चूड़ियों का नाप भेजा गया। मोतीचन्द था तो चोटीला का ही, पर उसकी दुकान हलवद में थी। उसने दो बार चूड़िया बनवा कर भेजी, पर या तो वे कुछ बड़ी रही या छोटी। सेठ मोतीचन्द ने खबर भेजी कि बेटी को यहा भेज दो। कुछ घटो मे नाप की चूड़ियां तैयार हो जाएंगी। दिन ढलते बेटी को वापस भेज देंगे।"

सेठ मोतीचन्द के आगन में बैलगाडी पहुंची। रामाखाचर की रूपवती कन्या गीगी उतर कर चूड़ियों की दुकान पर गई। देखते-देखते उसकी चूडियां तैयार हो गई। चम्पा के फूल-सी काठी कन्या चूडियां पहन कर जब दुकान से नीचे उतरी, तब जाने क्यो चौंक उठी; सकपका कर बोली—"जल्दी गाड़ी जोतो। हम तुरन्त रवाना होंगे।"

गीगी की सकपकाहट एकाएक किसी की समझ मे नही आई, पर इसका कारण मालूम होते देर न लगी। पता चला कि हलवद का झाला राजा उधर से गुजरा था और अभी तक गर्दन मोड़े घूर-घूर कर गीगी को देख रहा था।

राजा ने सेठ मोतीचन्द की दुकान पर घोड़ा रोका और सेठ को एक ओर बुला कर उससे कहा—"ये हमारे मेहमान हैं। ये हमारे महल में रहेंगे। इन्हें जाने न देना। अगर इन्हें जाने दिया, तो तुम्हारी खैर नही।"

मोतीचन्द के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। वह कन्या को लेकर अपने घर गया। गीगी ने कहा—"हमे अब जाने दीजिए, मामाजी, यहां तो दम घुट रहा है।"

मोतीचन्द ने जवाब दिया—"बेटी, अब तुम कैसे जा सकती हो। इज्जत का सवाल है। मेरा यमराज के यहां से बुलावा आया है। मेरे जीते जी तुम्हारा बाल भी बांका नही हो सकता।"

घर के फाटक बन्द कर दिए गए। भारी अरगलें खीच दी गईं और एक सवार चोटीला की ओर तीर की तरह रवाना हुआ।



गीगी चूड़ियों की दुकान पर गई।

उधर रामाखाचर से निबटने के लिए भोकावाला फिर अपना दल लेकर आ पहुचा। मगर उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि चोटीला गाव मे सन्नाटा छाया हुआ है। किसी ने कहा—"रामाखाचर को शायद जीवन का मोह हो गया है। चुनौती तो मजूर कर ली, लेकिन अब मौत से डरता है।"

भोकावाला ने कहा—"ना, ऐसा नही हो सकता। रामा को मै अच्छी तरह जानता हू। वह कायर नही है।" फिर नाजभाई से बोले—"गढवी[1], तुम जाओ और गाव मे जाकर पता लगाओ कि डायरे का क्या हाल है।"

नाजभाई डायरे मे पहुचे। काठियो ने उनका सत्कार किया। नाजभाई ने कहा—"भोकावाला आप लोगो की राह देख रहा है। यह देर-दार किस लिए?"

जवाब मे खाचर काठियो ने कहा—"अभी आते है। अपने कुछ जवानो की प्रतीक्षा है। उनके आते ही हम भोकावाला का रणभूमि मे स्वागत करेंगे।"

नाजभाई ताड गए, सोचा—"हो न हो, इसमे कोई भेद है।" वह रनिवास मे पहुचे। रानी के पास जाकर सारी बात जान ली। काठिनियो ने बताया—"यही तो उलझन है। पहले किससे निबटे—भोकावाला से या हलवद के झाला राजा से।"

नाजभाई ने आकर समाचार सुनाया। सारी बात सुन कर भोकावाला कुछ देर सोच मे डूबा रहा, फिर गढवी से बोला—"नाजभाई, वैर का बदला तो बाद में भी लिया जा सकता है न? जाओ, चोटीला के डायरे को खबर दो कि हम रामाखाचर से मिलने आ रहे है।"

अपने दल के साथ भोकावाला रामाखाचर के पास पहुंचा, बोला—"खाचर भाई, चिन्ता छोड़ो। गोगी बेटी का सवाल पहले है। उठो, उसका कोई बाल तक बाका नही कर सकता। तैयारी करो, पहले हलवद के झाला से निबट ले। अपना भुगतान हम बाद मे कर लेंगे।"

पाच सौ घुडसवार हलवद की ओर चल पडे।

* * * *

हलवद का रग कुछ और ही था। मोतीचन्द सेठ पिछवाड़े की खिडकी से बाहर निकल नदी के किनारे खडा काठियो की राह देख रहा था। शाम होने को थी और कोई आता दिखाई नही दे रहा था। वह इसी चिन्ता मे डूबा था कि वहा नागा साधुओ का एक दल आ पहुचा। चार सौ नागा साधु थे—धूर धूमनी, ऊचा कद, खूब

1 काठी राजाओ के दरबार में जो चारण कविता करते थे, उन्हें 'गढवी' कहते थे।

[illegible]

"मोतीचन्द ने पूछा—"कहां जा रहे हो?"

"कहीं कुछ नौकरी-धंधा मिल जाए।"

"मेरे यहां नौकरी करोगे?"

"पर वेतन क्या देगा?"

"और तुम क्या पाओगे?"

"पन्द्रह-पन्द्रह रुपये।"

"मैं सोलह-सोलह रुपये दूंगा।"

और मोतीचन्द के घर पर चार सौ साधुओं की चौकी बैठ गई।

दीया जलते ही मोतीचन्द के दरवाजे पर झाला राजा की बैलगाड़ी पहुच गई। झाला के दूत ने उतर कर द्वार पर दस्तक दी। तब साधुओं को पता चला कि मामला क्या है। एक साधु ने उठ कर दूत को ठिकाने लगा दिया। झाला को जब खबर मिली कि मोतीचन्द सेठ के घर पर साधुओं की फौज पहरा दे रही है, तो वह खुद अपनी सेना लेकर वहां पहुंचा। उसने सिपाहियों को हुक्म दिया कि एक भी साधु जिन्दा बच कर न जाने पाए। इतने में दूसरी ओर शोर मचा—"दौड़ो, काठी आ पहुचे।" झाला अपना तीन-चौथाई दल लेकर जिधर से काठी आ रहे थे, उधर दौड़ा। पचीस काठी नदी की रेत मे खड़े थे। झाला ने उन्हीं पर हमला किया। काठी भाग खडे हुए। झाला के सैनिको ने उनका पीछा किया। झाला खुश हो रहा था कि अब क्या है, इन इने-गिने काठियों को अभी घेर कर टुकड़े-टुकडे कर डालूंगा। इतने में सामने वाले सूखे तालाब से पाच सौ भाले चमक उठे। घमासान युद्ध हुआ। झाला के सभी सैनिक खेत रहे।

भोकावाला और रामाखाचर हलवद नगर में पहुंचे। उन्होने देखा कि बाकी फौज का सफाया तो साधुओं ने ही कर दिया है। झाला के सिपाहियो की लाशे मोतीचन्द सेठ के घर के आसपास पडी थी। काठी सैनिको ने कहा—"झाला का एक भी सिपाही नही बचा। महल और रनिवास अब हमारे कब्जे में है।"

काठी सरदारो ने कहा—"हमें रनिवास से कोई मतलब नही, चाहे वहा लाखो की दौलत क्यो न हो।"

साधु ने दूत को ठिकाने लगा दिया।



दोनों शत्रु एक-दूसरे से गले मिले।

काठी सरदार मोतीचन्द सेठ के पास पहुचे। वह घायल पडा कराह रहा था। रामाखाचर ने उसके पैरो की धूल अपने माथे लगा कर कहा—"वणिकपुत्र की कुलीनता मैने आज देखी। तुम न होते, तो मेरी इज्जत मिट्टी में मिल जाती।"

मोतीचन्द ने आकाश की ओर हाथ उठा कर कहा—"सब-कुछ उसकी इच्छा के अधीन है।"

* * * *

लडकी को लेकर दोनो काठी सरदार चोटीला वापस आए। गाव की सीमा पर पहुचते ही भोकावाला का दल अलग खडा हो गया। भोकावाला ने कहा—"बेटी के व्याह की रस्म पूरी करके शीघ्र आ जाना। हम रास्ता देख रहे है।"

गीगी ने कहा—"गाडी रोक दो।"

रामा ने पूछा—"क्यो बेटी, बात क्या है ?"

गीगी ने जवाब दिया—"मै डाइन हू, पिताजी !"

रामाखाचर ने पूछा—"क्यो, ऐसा क्यो, बेटी ?"

"यह खून-खराबा क्यो ? सबको कटवा कर मुझे क्या मिलेगा ?" फिर गाडी का पर्दा उलट कर भोकावाला से बोली—"चाचाजी, तो फिर आपने मुझे बचाया ही क्यो था ?"

भोकावाला ने रामाखाचर से कहा—"लो यह तलवार, अपने भतीजे के सिर के बदले मेरा सिर उतार लो।"

रामाखाचर ने कहा—"आपा[1] भोका, ऐसे सात भतीजो के सिर तुमने काटे होते, तो भी आज इसका हिसाब निबट जाता।"

दोनो शत्रु एक-दूसरे से लिपट गए। कसूंबा पिया गया। गीगी का व्याह धूमधाम से हुआ और व्याह में शरीक होने के बाद भोकावाला मुजासर लौटा।

---

1 काठियो में पुरुषो को 'आपा' और स्त्रियो को 'आई' कह कर पुकारते है।

(3) कन्नड़ लोक-साहित्य



कन्नड़ साहित्य के प्रसिद्ध लेखक श्रीमास्ती ने अपने प्रदेश के लोक-साहित्य को 'धात्री उपनिषद्' कहा है। 'धात्री उपनिषद्' का अर्थ है वह ज्ञान, जो धरती माता से प्राप्त हो। इसी प्रकार आधुनिक कन्नड साहित्य के पिता, श्री बी० एम० श्रीकंठय्या ने कहा है कि कन्नड का लोक-साहित्य "जनता की वह वाणी है, जो हमारे साहित्य रूपी वृक्ष की जड़ और उसका तना है। उसी के बल पर और उसी की जीवन-शक्ति के सहारे लिखे हुए साहित्य का वृक्ष फूला और फला है।"

यो तो चक्की के गीत हर लोक-साहित्य मे भरे पड़े है, पर कन्नड लोक-साहित्य मे उनका एक विशेष महत्व है। उस महत्व को समझने के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि 'विसुवकल्लिन पद' यानी चक्की के गीत को कन्नड लोग 'उदय राग' भी कहते है। 'उदय राग' का अर्थ हुआ वह राग, जो सूर्य के उदय का संदेश सुनाए और जो नए दिन के नए कामों के लिए लोगो को जगाए। स्त्रिया हर गाव और हर घर मे चक्की की घर्र-घर्र में 'उदय राग' के मीठे स्वर मिला कर पुरुषो को जगाने के लिए जैसे पुकार लगाती है। 'विसुवकल्लिन पद' की एक और विशेषता यह है कि वे लगभग एक ही प्रकार के छंद मे रचे जाते है, जिन्हें त्रिपदी कहते है। जैसा कि नाम से ही प्रकट है, 'त्रिपदी' तीन-तीन पदो के छंद को कहते है, जो कन्नड का सबसे पुराना स्थानीय छंद है। 'त्रिपदी' मे न केवल लोक-गीत रचे गए है, बल्कि उसमे महाकवियो ने भी रचनाएं की है। इसीलिए त्रिपदी को गायत्री मन्त्र जैसा पवित्र मानते है और कन्नड लोग उसे 'त्रिपदी गायत्री' कहते है। 'विसुवकल्लिन पद' यद्यपि मुख्य रूप से स्त्रियो के गीत है, पर उन्हें विभिन्न अवसरो पर पुरुष भी गाते है।

जैसे 'विसुवकल्लिन पद' मुख्य रूप से स्त्रियों के गाने हैं, वैसे ही 'कोलाटा पद' खास तौर से पुरुषों के गाने है। 'कोलाटा पद' का अर्थ है, डडो या छड़ियो के खेल का गाना। वास्तव मे 'कोलाटा पद' एक प्रकार के सामूहिक नाच का हिस्सा होता है। उस नाच मे हर आदमी रंग-बिरगे कपडे पहने दोनों हाथो में एक-एक फुट के सुन्दर, चमकीले

रगो मे रगे हुए, डडे लेकर नाचता है। उन डंडो के सिरों पर पीतल की घटियां और झाले लगी होती हैं। नाचने वाले डडो को दोनो हाथो मे पकड़े हुए एक विशेष लय और ताल के साथ एक छोटे-से स्थान मे घूमते और एक-दूसरे के डडो को कभी छूते हैं, कभी उन पर थाप देते हैं और कभी ठोका मारते हैं। पर यह सब कुछ एक ताल और लय के साथ ही होता है। डडो की गति के साथ उनमे लगी घटिया और झाले भी उसी लय और ताल के साथ वजती रहती हैं और नाचने वाले ऊचे स्वर में 'कोलाटा पद' गाते रहते हैं। इनके साथ मिल कर नाचने वालो के पावो मे बधे घुंघरू साज को पूरा कर देते हैं और एक अजीव समा बध जाता है। यहा तक कि अक्सर दर्शक भी मस्त होकर उसी लय और ताल के साथ तालिया वजाने लगते हैं।

'कोलाटा पद' मे हर प्रकार की बातें होती हैं—दया-धर्म से लेकर हँसी-खेल तक की बाते। पर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उनमें बिलकुल कोई बात नही होती। केवल एक ही शब्द के भाति-भाति के जोड-तोड, घटाव-बढाव और हेर-फेर को एक लडी मे इस प्रकार गूथ दिया जाता है कि वह एक वातावरण उपस्थित कर देता है। उस वातावरण मे वे अर्थहीन गीत एक विचित्र भाव पैदा कर देते हैं। वे मानो मन-मन की भावना को साकार कर देते हैं। 'कोलाटा' या डडे के खेल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध गीत की एक टेक है, जो इस प्रकार के अर्थहीन 'कोलाटा पद' का जीता-जागता नमूना है—

तवानी तानु तदानी · नानदन्नानो · · · ।
तदानी तानु तदानी · · · ·।

इसी प्रकार नाच के शुरू में गणेश वन्दना की टेक है "डा अमिक्की डा अमिक्की झण ण ण ण।"

पवाडो को कन्नडी लोग 'लावणी' कहते है, जो देश के अन्य भागो की तरह उनके यहा भी बहुत प्रचलित है। पवाड़ो में इतिहास, राष्ट्र या आसपास की विशेष घटनाओ के लम्बे-लम्बे बहुत ही जानदार वर्णन होते हैं। टीपू सुल्तान और श्रीरगपट्टम के पतन के विषय में रचा गया पवाडा तो कन्नड प्रदेश मे 'रामायण' जैसा लोकप्रिय हो गया है। उस पवाडे मे घटनाओ का ऐसा करुणामय वर्णन है कि श्रोताओ की आखो में वरबस आसू छलक पडते हैं। पवाडो मे स्वाधीनता-सग्राम की अनेक घटनाओ के भी वडे प्रभावशाली वर्णन मिलते हैं। उनसे आजादी की लडाई को खूब प्रोत्साहन मिला।

इस प्रकार के पवाडे ऐसे भी होते है, जिन्हे 'तत्वा' कहते हैं। उनमें किसी सत या धर्मात्मा पुरुष की कहानी होती है।

कन्नड़ लोक-कथा—1

सोने का कटोरा

बहुत दिन पहले की बात है। कर्नाटक में कल्लन केरी नाम का एक गांव था। सभी गांवों की तरह इस गांव का भी एक मुखिया था। उसका नाम मल्लन गौड़ था। जिस इलाके में यह गांव था, वह सूखे का शिकार था। उसमें कोई नदी नहीं बहती थी। बेचारे गांव वालों के लिए पानी का सहारा था तो अनिश्चित वर्षा के बादल थे या बित्ता-भर पानी वाले छिछले कुएं। गांव में बराबर सूखा पड़ता रहता।

ऐसे ही सूखे के दिनों में एक बार गांव के मुखिया मल्लन गौड़ ने सूखे के बारे में सोचना शुरू किया। उसने बहुत सोचा। उसने सोचा कि रोज-रोज की मुसीबत से बचने का बस एक ही उपाय है। वह यह कि चाहे कितना ही पैसा और मेहनत क्यों न लगे, एक बहुत बड़ा तालाब बनवाया जाए। इस तालाब में बारहों मास पानी जमा रहे। तभी लोगों की प्यास बुझ सकती है।



सैकड़ो फावड़े और गेंतिया निकल आई ।

मल्लन के मन मे इस विचार के आते ही घर-घर से सैकड़ों फावड़े और गेंतिया निकल आई और तालाब खुदने लगा । लेकिन भाग्य का लिखा टलता नही । वे उसे खोदते ही गए, पर पानी के दर्शन नही हुए । सब कोशिशें बेकार होती मालम हुई । सबके चेहरो पर निराशा की छाया दिखाई देने लगी । लेकिन मल्लन गौड़ आसानी से हिम्मत हारने वाला जीव न था ।

ऐसे कठिन अवसरो पर, जैसा कि रिवाज था, गाव के ज्योतिषी को बुलाया जाता था । ज्योतिषी ने अपनी पोथी पर भौहें गड़ा दी, फिर जमीन पर पासा फेंक कर बोला—"न तो देवताओ का कोप है, न भूतों का । असल बात यह है कि इसके लिए जो भेंट दी जानी चाहिए, वह नही दी गई । पानी ऊपर आए तो कैसे ? धर्म ग्रंथो मे लिखा है कि ऐसे अवसर पर गाव का मुखिया अगर अपनी बहू की वलि दे, तो जल की देवी प्रसन्न होगी । तभी तालाब मे मोती जैसा सफेद पानी फूटेगा ।"

मल्लन गौड़, उसकी पत्नी और गाव के वडे-बूढे ज्योतिषी की बात भला कैसे टालते । उस जमाने मे यह सभी मानते थे कि ऐसे अवसरो पर व्यक्ति को परिवार की, परिवार को गाव की, और गाव को देश की भलाई के लिए वलिदान को तैयार रहना चाहिए ।

मल्लन गौड की दो बहुए थी । उनमे किसका वलिदान किया जाए ? अगर बड़ी बहू की वलि दी जाए, तो मुखिया और उनकी पत्नी के वाद घर में वडे-बूढे का पद कौन सभालेगा, घर और गाव के काम-काज कौन करेगा ? इसलिए तय हुआ कि छोटी बहू भागीरथी की वलि दी जाए । उसका पति मादेव राया फौज में नौकर था । उस समय वह कही दूर शत्रु से लडने गया हुआ था । पासे फेंके गए । वलि दिए जाने की खबर भागीरथी के भी कान में पड़ी, यद्यपि किसी ने जाकर उसे वताया नही ।



वे ज्योतिषी की बात भला कैसे टालते !

दूसरे दिन भागीरथी अपनी सास के पास गई, और अपनी मा को एक बार देख आने की उसने आज्ञा मागी । सास ने कहा—"जल्दी जा, और देख, जल्दी ही वापस आ जाना ।" बलिदान के सम्बन्ध मे एक शब्द भी उसकी सास ने

उससे नही कहा, लेकिन यह वात जल्दी लौट आने की आज्ञा मे निहित थी। भागीरथी भी जानती थी कि वह अपने मा-वाप के घर अन्तिम विदा लेने जा रही है।

नैहर पहुंच कर सबसे पहले बूढे पिता से भेंट हुई। बिना किसी सूचना के यकायक लड़की का घर आना उनके लिए आश्चर्य की वात थी। लडकी के भोले मुह पर दुख का भाव पहचानने मे उन्हे देर नही लगी। उन्होंने पूछा—"मेरी विटिया, यह क्या, तुम अपने नैहर आई हो, फिर तुम्हारी आखे गीली क्यो है?"



सबसे पहले बूढे पिता से भेंट हुई।

पर दुखभरी खवर सुना कर वह अपने पिता के हृदय को पीड़ा कैसे पहुंचाती? भागीरथी का विचार था कि वलिदान के लिए चुना जाना सम्मान की वात है। बिरलो को ही ऐसा सम्मान मिलता है। फिर भी उसकी आखो मे आसू तिर आए थे और चेहरे पर उदासी छा गई थी। वह सोचती थी कि जव वह नही रहेगी, तव पति को उसकी याद सताएगी। तव उसे कितना दुख होगा, वह कितने आसू वहाएगा।

भागीरथी ने मन-ही-मन अपने आसू पी लिए और उदासी के लिए यह वहाना वनाया कि उसके ससुर उससे नाराज है, घर से निकाल देना चाहते है।

"तो बेटी चिन्ता क्यो करती हो। यदि ऐसा हुआ भी, तो मै तुम्हे अपने यहा जगह-जमीन दे दूगा।"—उसके पिता ने धीरज देते हुए कहा।

"उंह, हमे नही चाहिए तुम्हारी जमीन।"—भागीरथी ने अपने मन मे कहा।

तभी उसकी मा भीतर से निकल आई। भागीरथी का मुर्झाया चेहरा देख कर उसने भी वही सवाल किया, और उसे भी वही जवाब मिला।

मा ने उसे ढाढस बधाते हुए कहा—"चिन्ता न करो बेटी, मै तुम्हे अपने झूमर दे दूगी।"

"चूल्हे मे जाए तुम्हारे झूमर।"—भागीरथी ने अपने मन मे कहा।

इसके वाद उसकी बड़ी वहन आ गई। उसने भी वही सवाल किया, और उसे भी वही जवाब मिला।

"अगर वे यही चाहते है, तो करे। तुम्हारे सग-साथ के लिए मै तुम्हे अपने वच्चे दे दूंगी।"—भागीरथी की वहन ने कहा।

"तो क्या बच्चों से सभी दुख कट जाते हैं?"—भागीरथी ने जैसे चुनौती देते हुए कहा।

भागीरथी के मन में गहरी वेदना थी। पर वहां नैहर में कौन था, जिसे सब कुछ बता कर वह अपना जी हल्का करती? कुछ बताने से नैहर वालों का दुख और बढ़ जाता। गांव में भागीरथी की एक सहेली थी, जिसके साथ वह बचपन में खेली-कूदी थी। उस सहेली ने भी भागीरथी को दुखी देख कर उसके दुख का कारण पूछा। भागीरथी ने उससे कुछ नहीं छिपाया। उसकी सहेली ने उसे समझाया कि अगर वे तुम्हारी बलि देना चाहते हैं, तो तुम खुशी से उसे स्वीकार करो। तुम अब उनकी ही हो, और तुम्हें उनकी इच्छा पर चलना चाहिए।

भागीरथी जैसे आई थी, वैसे ही अपने सास-ससुर के पास वापस लौट गई। उसने देर नहीं लगाई।

ससुराल में बलि के उत्सव के लिए चुपचाप, बिना किसी विशेष दिखावे के, उस तरह तैयारियां शुरू हुई, जैसे यह कोई रोज की बात हो। लगता था, जैसे सदा की भांति देवी पर पूजा चढ़ाने की बात हो। न कोई हंगामा, न चर्चा। अनाज और दालें साफ की गई और कड़ाहे भर पकवान तैयार किए गए। मीठा मिले हुए दूध में सेवइयां पकाई गईं। भागीरथी ने स्नान किया। सोने की एक टोकरी में पूजा की सामग्री रखी गई। आगे-आगे भागीरथी चली, उसके पीछे और लोग। पूर्ण शान्ति थी। जलदेवी पर बेल-पत्र चढ़ाए गए, भभूत छिड़की गई। उसे नए वस्त्रों से सजा कर सुगन्धित फूलों की माला पहनाई गई। उसके बाद भोज हुआ। फिर अपनी-अपनी चीजें बटोर कर वे भागीरथी के साथ वापस लौट चले।

हां, बलिदान? किस रूप में वह होना चाहिए? इसका ढंग क्या हो? बलिदान एक महान् कार्य था। इसलिए इसका ढंग भी महान् होना चाहिए। इस तरह कि न खून-खराबा हो, न चीख-पुकार। खुद जलदेवी आए और उसे अपनी गोद में उठा कर ले जाए।

एक सोने का कटोरा छोड़ कर बाकी सब चीजें लोग अपने साथ उठा लाए थे। यह कटोरा जान-बूझ कर छोड़ दिया गया था, मगर छोड़ा इस तरह गया था, जैसे धोखे में ही छूट गया हो। सब लोग जब आधे रास्ते पर पहुंचे, तब उस कटोरे की याद की गई और एक-एक कर सभी स्त्रियों से कहा गया कि जाकर उस कटोरे को ले आए। परन्तु सबने लाने से इन्कार कर दिया। अन्त में भागीरथी की बारी आई। भागीरथी ने इशारा


उसने कटोरा उठा लिया।

मगन लिए, और लम्बे-लम्बे डग भरती हुई वापस गई। उसके चेहरे पर न तो दुःख का भाव था, न उसकी आखो मे आसू थे। जब भागीरथी वहा पहुंची तो उसने देखा कि दोपहर की धूप मे वह कटोरा तालाब के बीचोबीच पडा चमक रहा है।

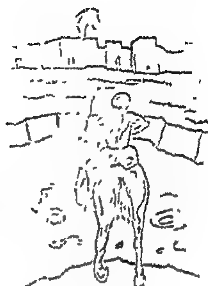
नीचे उतर कर उसने कटोरा उठा लिया, और घर की ओर मुडी। ज्यो ही उसने ऊपर चढने के लिए तालाब की पहली सीढी पर पैर रखा, तभी पानी की मधुर आवाज सुनाई दी। तालाब मे पानी का एक सोता फूट पडा था, और पानी तेजी से भर रहा था। पानी का स्वर इतना कोमल और मधुर था, जैसे सगीत की लहरें। उसके पैर अभी पहली सीढी पर थे कि पानी उन्हें छूने लगा। भागीरथी ने दूसरी सीढी पर पैर रखा। उसके पैर पानी मे डूब गए। तीसरी सीढी पर घुटनो और चौथी सीढी पर कमर तक पानी भर आया। वह पाचवी सीढी पर चढी ही थी कि तालाब पानी से लबालब भर गया। जल-देवी ने प्रसन्नतापूर्वक बलि स्वीकार कर ली।

उधर लडाई के मैदान मे भागीरथी के पति मादेव राया ने कई अशुभ स्वप्न देखे। उसने देखा कि उसका अगरख्वा जल गया है, उसकी बेंत के दो टुकडे हो गए हैं, गठरिया फट रही हैं और उनका सामान इधर-उधर बिखर रहा है। वे स्वप्न अवश्य किसी दुर्घटना के सूचक थे। इसलिए वह तुरन्त घोडे की नगी पीठ पर सवार हुआ और घर की ओर दौड पडा। उसके पास इतना समय न था कि घोडे पर काठी रख पाता।

उसके माता-पिता ने उसकी अगवानी मे घर की स्त्रियो को प्रसन्नता से पुकारा—"गगव्वा, हाथ-मुह धोने के लिए पानी लाओ। चलो, जल्दी करो।"

लडके ने गुस्से मे कहा—"मेरी पत्नी भागीरथी कहा गई, जो तुम लोग गगव्वा और गौरव्वा से मेरे लिए पानी मगा रहे हो?"

बेचारा मल्लन गौड क्या उत्तर दे? अपनी पुत्रवधू को गवा कर क्या वह कुछ खुश था? क्या यह दुख खुद उसका दुख नही था? पर वह बलिदान को रोक ही कैसे सकता था? पूरे समाज की भलाई के वास्ते देवताओ की यही इच्छा थी। पर वह अपने बेटे,



वह घोडे पर सवार हुआ और भागीरथी के नैहर की ओर चल पडा ।

भागीरथी के पति को यह सूचना किस तरह दे ? वह झूठ बोला—"बेटा, वह अपने नैहर गई है ।"

क्षण भर भी न गवा कर मादेव राया घोडे पर सवार हुआ और भागीरथी के नैहर की ओर चल पडा । वहा भी यही दृश्य दोहराया गया । वे लोग जान चुके थे कि क्या हो चुका है । पर उसे बताए कैसे ? उन्होने चुपचाप उसे भागीरथी की सहेली के पास भेज दिया । वहा जाकर उसको सच्ची बात मालूम हुई । मादेव राया आदर्श पत्नी का आदर्श पति था । अगर चाहता, तो घर लौट कर मा-बाप की अच्छी खबर लेता । लेकिन खुद भागीरथी ने बलि का विरोध नही किया था, इसलिए उसने अपने माता-पिता से कुछ न कहना ही ठीक समझा । वह सीधा तालाब पर पहुचा—वह तालाब, जिसने उसकी पत्नी की बलि लेकर समूचे गाव को नया जीवन प्रदान किया था । उसके मुह से एक आह निकली और आखो से आसू बह चले । वह हिचकिया लेता हुआ बोला—"ओ बीन्दड़ी, मेरे जीवन की अनमोल जोत, तू मुझे छोड कर कहा चली गई ? तीन सौ के मैंने तेरे लिए मोतियो के ये जडाऊ कगन लिए थे । तू बिना इन्हे पहने कहा चली गई ?" वह बहुत रोया, बहुत बिलखा । लेकिन फिर शान्त हो गया । इसके बाद वह एक बार फिर अपने घोड़े पर सवार हुआ, और घोडे को उसने तालाब मे दौडा दिया ।

(4) जर्मन लोक-साहित्य

जर्मनी लोक-साहित्य का धनी देश है। उसके भडार मे परियो की कहानिया है, गीत है, कथाए और गाथाए है। यह सब बीते युग की विरासत है, अलग-अलग युगो मे और अलग-अलग अवसरो पर इनका जन्म हुआ है।

पहले परियो की कथाओ की बात को ही ले। यूरोप मे पहले परियो की कथाए नही होती थी। उनका चलन केवल पूर्वी दुनिया मे था। शुरू-शुरू मे जर्मेनिक जातियो के कबीले खानाबदोश थे। वे घूमते-फिरते पूर्व के देशो का भी चक्कर लगा आते थे। पूर्व के लोगो से ही उन्होने परियो की कथाए सीखी। आज भी दक्षिण जर्मनी की परियो की कथाओं मे पूर्व के चिह्न देखे जा सकते है। उनमे स्लाव तत्व मिलते है। इसका मतलब यह कि जर्मेनिक जातियो के कबीले रूसी, बुल्गार, पोल, चेको, स्लोवाक, आदि स्लाव जातियो के सम्पर्क मे आए होगे। इन कथाओ मे रोमनिक तत्व भी है। इसका मतलब यह कि वे जिप्सी आदि खानाबदोश जातियो के सम्पर्क मे भी आए होगे।

दक्षिण की तरह उत्तर जर्मनी की परियो की कथाओ मे भी उत्तरी देशो अर्थात् नार्वे, स्वीडन, आइसलैण्ड, आदि का प्रभाव दिखाई देता है।

जर्मन लोक-साहित्य मे एक चीज होती है, 'सागा'। यह असम की बुरजी की तरह की चीज है। 'सागा' गद्य मे होता है। उसमे इतिहास और कल्पना दोनो के रग घुल-मिल कर एक हुए रहते है। 'सागा' उस युग की उपज है, जब जर्मेनिक जातिया दक्षिणी, दक्षिण-पूर्वी और पश्चिमी यूरोप मे फैल कर बसने लगी थी। यह ईसवी सन् के शुरू की बात है। इस युग मे इन जातियो को बड़े संकटो और लडाइयो का सामना करना पडा था। इन्ही लडाइयों के वीरो के कारनामे 'सागा' साहित्य मे मिलते है। इनमे से कुछ—जैसे,

'जीक्फीत की गाथा', 'दीत्रिख फान बर्न की गाथा'—पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी की तरह नार्वे, स्वीडन, आदि अन्य जर्मेनिक जातियों में भी मिलती है।

यही बात दन्तकथाओं के बारे में है। वे भी इसी तरह एक कबीले से दूसरे कबीले में फैली। नए कबीले में पहुंचने पर उनमें नई बातें और नई सजावटें जुड़ जाती थी। इस तरह उनका रूप-रंग नए कबीले के अनुकूल बन जाता था। लेकिन उनके भीतर की बुनियादी बात—जैसे, बाप-बेटे के बीच घातक युद्ध—वैसी ही बनी रहती।

परियों की कहानियां और गाथाएं तो बहुत पुरानी हैं। वे जर्मन इतिहास के आदिकाल से ही मिलने लगती हैं। पर लोक-साहित्य में एक ऐसी चीज भी है, जो काफी बाद की उपज है। वह है 'लोक-गद्य'। यह जर्मनों की खास अपनी चीज है। इसकी शुरुआत पन्द्रहवीं-सोलहवीं सदी से होती है। उन दिनों सौदागरों में उपरले मध्यवर्ग का, एक अलग वर्ग के रूप में, उदय हो रहा था। इस वर्ग के लोग महारथियों के युद्ध की कहानियां कहने-सुनने में बड़ा रस लेते थे। जर्मन इतिहास में महारथियों के इस युग को 'कर्मोदार युग' कहते हैं। 'कर्मोदार युग' के महारथी त्याग, सेवा, भलाई और मुसीबतों से लोहा लेने के अनोखे कामों के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी कहानियां गद्य के 'महापुराण-काव्य' मानी जाती हैं। इनकी विषय-वस्तु अक्सर फ्रांस की उपज होती थी। फ्रांस से भी पहले लातीनी दन्तकथाओं या प्राचीन परम्पराओं में इनका सूत्र मिल सकता है।

इस तरह हम देखते हैं कि जर्मन लोक-साहित्य में मिलने वाले तत्व आम तौर से जर्मनों तक ही सीमित नहीं हैं। वे दूसरी सभी जर्मेनिक जातियों—जैसे अफ्रीकास, अमरीका, अंग्रेजी, आइसलैण्डी, ओलदाज, डेनी, नार्वेई, स्काट, स्विस, आदि—में भी पाए जाते हैं। फिर भी उनमें से हरेक तत्व का एक अपना जातीय ढंग होता है, कारण कि एक जाति से दूसरी जाति में पहुंचने पर वे हमेशा उस जाति के रंग-रूप में ढल जाते हैं। फिर, हर पीढ़ी में भी इनका रूप कुछ-न-कुछ बदलता रहता है।

पहले लोगों को यह विश्वास था कि लोक-साहित्य को जनता रचती है। इसीलिए इसके रचने वालों के नाम का पता नहीं चलता। लेकिन नई खोजों से यह विश्वास सही नहीं ठहरता। इन खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि वीर-गाथाओं, परियों की कथाओं, लोक-गीतों, आदि की रचना दो तरह से हुई है। या तो उन्हें अज्ञात कवियों ने रचा है, या जनता ने महान् कृतियों को कुछ अदल-बदल कर अपनी समझ के अनुरूप बना लिया है। इस हेर-फेर में उनका रूप कुछ सरल तो जरूर हुआ है, पर वे मूल कला के अपने ऊंचे दर्जे से गिर भी गई हैं।

जर्मन लोक-साहित्य का संकलन और सम्पादन डेढ़ सौ वर्ष पहले शुरू हुआ। यह काम बड़े-बड़े भाषाविदों और पंडितों ने किया। इन लोगों का विश्वास बहुत कुछ पुराना था। वह यह कि सारा लोक-साहित्य सीधे जनता से निकला है। इस विश्वास को लेकर उन्होंने अपना एक दर्शन भी खड़ा कर लिया। उनका कहना था कि आम जनता की धारणाएं और भावनाएं अपने विशुद्ध रूप में लोक-साहित्य में ही मिलती हैं। इसलिए उन्होंने लोक-साहित्य को पुनीत माना और आम जनता के 'विशुद्ध रूप' के लिए एक खास नाम 'लोकात्मा' भी गढ़ लिया। नई खोजों ने अब इस विश्वास को बदल दिया है।

इसका यह मतलब नहीं कि उन जर्मन पंडितों की देन का मोल कुछ कम था। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उन्होंने, अपने भ्रान्त विश्वासों के बावजूद, जर्मन लोक-साहित्य को नष्ट होने से बचाया। आज इस सरल लोक-साहित्य में रस लेने वालों की कोई कमी नहीं है। अगर उन पंडितों ने अपना सारा जीवन खपा कर लोक-साहित्य की साधना न की होती, तो आज हम इस अनमोल निधि से वंचित रह जाते।

लोक-साहित्य की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित करने वाले व्यक्ति थे दर्शनशास्त्री जे० गे० हेरदेर (1744—1803 ई०)। इसके बाद, तथाकथित 'रोमानी काल' में, आखिम फान आरनिम और क्लीमिंस फान ब्रेतानो नाम के कवियों ने जर्मन लोक-गीतों के सबसे सुन्दर और सबसे विस्तृत संकलन का सम्पादन किया। 'नौजवान का जादुई सिंघा' नाम का यह संकलन सन् 1806-7 ई० में प्रकाशित हुआ था। सन् 1807 ई० में जे० ग्वेर्रेस नाम के लेखक ने 'जर्मन लोक-गद्य' की पुस्तकें प्रकाशित की थीं। लेकिन जो संकलन दुनिया में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ, उसका संकलन याकब ग्रिम और विल्हेल्म ग्रिम नाम के दो भाइयों ने किया था। यह संकलन सन् 1812 ई० और उसके बाद के वर्षों में कई खंडों में प्रकाशित हुआ। यह जर्मन परी-कथाओं का संकलन है।

'रंग-रंगीला पिपहीवाला' बहुत पुरानी जर्मन लोक-कथा है। आज भी हेमलिन शहर का नाम लेते ही जर्मनी के बच्चे-बच्चे के मन में पिपहीवाले की याद उभर आती है। कुछ लोगों का कहना है कि इसमें कभी बच्चों में फैली किसी महामारी की कथा आबद्ध है। यह कथा जर्मनी के बाहर भी खूब फैली। अंग्रेजी के एक बहुत बड़े कवि ब्राउनिंग ने तो इस पर एक लम्बी और अत्यन्त लोकप्रिय कविता की रचना की है। अंग्रेजी के जरिए भारत में भी उसका काफी अच्छा प्रचार हो चुका है।

जर्मन लोक-कथा

रंग-रंगीला पिपहीवाला

बहुत पहले की बात है। जर्मनी के हेमलिन शहर पर चूहों की फौज ने धावा किया। चूहे भी ऐसे कि न कभी हुए और न कभी होंगे। बड़े-बड़े, काले-काले। दिन-दहाड़े गलियों में बड़ी दिलेरी से दौड़ते-फिरते वे चप्पे-चप्पे पर छा गए।

सुबह जब लोग कपड़े पहनते, तो देखते कि कोट-पतलून में चूहे किलबिला रहे हैं, जेबों में फुदक रहे हैं, जूतों में घरौंदा बनाए हैं। भूख लगती, तो लोग घर भर में खाने को खोजते, पर खाना कहां? उसे तो वे पेटू चूहे पहले ही चट कर चुके होते। तहखानों से लेकर अटारी तक कहीं एक दाना न बचा होता। रात को और भी आफत, अंधेरा होते ही चूहे अपने काम पर जुट जाते। अगल और बगल, खाट के नीचे और ऊपर, आले-दीवालों और कोठे-अटारी पर वह खड़बड़ मचाते कि बहरे-से-बहरा आदमी भी घड़ी भर पलक न झपका सकता।

न बिल्लियों-कुत्तों से कुछ बना, न जालों-माहुरों से, टोने-टोटकों और सतों की मन्नतों से भी कुछ न हुआ।

लोग जितने चूहे पकड़ते, उतने ही और आ धमकते, बल्कि उससे भी अधिक। लेकिन एक दिन एक नई बात हुई। शहर में एक अजनबी आदमी आया। अजीब-सा चेहरा। वह पिपही बजाता और गीत गाता था। गीत की टेक थी

चूहों के मारे नाक में दम था।

चूहों का मैं बंदीकार,
मैं चूहों का बंदीकार!
बच रहने वाले देखेंगे,
कि मेरे पीछे रेंगेंगे
सुन बोल मेरा वे नाचेंगे
आएगी खूब बहार!





अजीब लम्ब-तड़ग डीलडौल और भोंडा नाक-नक्शा। रूखा-रूखा और तांबे जैसा रंग। नाक टेढ़ी और मूछे चूहे की दुम जैसी। आखे बड़ी और पीली-पीली। निगाह पैनी और मखौल उडाती-सी। सिर पर नमदे का एक बड़ा-सा टोप और उसमें खुसा हुआ मुर्गे का सिंदूरी पंख। बदन पर एक हरी सदरी, जो चमडे की पेटी से कसी थी। टागो मे लाल पतलून, पैरों में चप्पले, जो तस्मो से कसी थी। तस्मे चमडे के थे, जो पिडलियो को कसते हुए घुटनो तक चले गए थे, ठीक बनजारो की तरह। बस, यही रूप था उसका, जिसमें उसे आज भी देखा जा सकता है। हेमलिन के ईसाई महामठ की खिडकी पर बना चित्र अब भी उसकी याद दिलाता है।

सो, वह महल के सामने बड़े बाजार वाले चौक में रुका और गिरजे की ओर पीठ किए अपना संगीत टेरने लगा। वह गा रहा था

बच रहने वाले देखेंगे,
कि मेरे पीछे रेंगेंगे
सुन बोल मेरा वे नाचेंगे
आएगी खूब बहार!

नगर-सभा अभी-अभी जुटी थी। उसे फिर इस सवाल पर सोचना था कि चूहों की इस बला का क्या किया जाए। नगर को इसकी चपेट से बचाने के लिए किसी से कुछ करते-धरते नही बन रहा था। पिपहीवाले अजनबी ने सभासदो के पास खबर भिजवाई कि अगर भरपूर इनाम मिले, तो मै रात पड़ने से पहले ही आप लोगो को चूहो की इस बला से छुटकारा दिला दूगा। एक भी चूहा बाकी नही बचेगा।

शहर वालो ने सुना, तो एक साथ चिल्ला उठे—"अरे, तब तो यह कोई जादूगर है, जादूगर। हमें इससे बचना चाहिए।"

नगर-सभा का मुखिया अन्य सबसे चतुर माना जाता था। उसने शहर वालो को ढाढस बधाया। वह बोला—"जादूगर हो या कुछ हो, अगर वह पिपहीवाला सच बोलता है, तो यह बात पक्की समझो कि ये भयकर उत्पाती जीव भी इसी ने भेजे हैं, और अब हमें छुटकारा दिला कर पैसे बनाना चाहता है। खैर, हमें भी अब चेतना चाहिए और



एक ग्रोशेन फी दुम पर सौदा तय हुआ।

शैतान को खुद उसके ही जाल मे फसा कर पकड लेना चाहिए। यह काम आप लोग मुझ पर छोड़ दे।"

शहर वालो ने एक-दूसरे से कहा—"हा, हा, यह काम इन पर छोड देना चाहिए।"

पिपहीवाला उनके सामने हाजिर किया गया। उसने कहा—"बस, फी दुम एक ग्रोशेन[1] मिल जाए, तो रात होते-न-होते मै हेमलिन के तमाम चूहो को गायब कर दूगा।"

"एक ग्रोशेन फी दुम!"—शहर वाले चिल्ला उठे—"अरे, तब तो यह कुल मिला कर करोडो समेट ले जाएगा।

नगर-सभा के मुखिया ने अपनी गर्दन हिलाई और पिपहीवाले से कहा—"चलो, सौदा पक्का! अब जुट जाओ। फी दुम एक ग्रोशेन के हिसाब से भुगतान कर दिया जाएगा। ठीक?"

पिपहीवाले ने सबको सुनाते हुए कहा—"सांझ होने पर, चांद के उगते ही, काम शुरू हो जाएगा। नगरवासी उस घड़ी अपने घरों में ही रहें। गली-कूचे लोगो से खाली रहने चाहिएं। जो तमाशा देखना चाहें, वे अपनी-अपनी खिडकियो पर खड़े हो जाएं। सच, चूहो का जुलूस किसी भी तमाशे से कम नही होगा।"

नगर-सभा के मुखिया ने कपट-भरे अन्दाज मे, कहा—"यह तो मुखिया पर छोड़िए।" हेमलिन के भले लोगों ने भी दोहराया:

"हा, इसे मुखिया पर छोड़ दीजिए।"

रात के नौ बजे के आसपास पिपहीवाला फिर चौक बाजार में दिखाई पडा। पहले की तरह ही फिर उसने गिरजे की ओर पीठ की और चांद के उगते ही उसकी पिपही के स्वर गूंज उठे—ग्रारीरा ग्रारी · ग्रारीरा ग्रारी ······

स्वर पहले तो बड़ा ही धीमा था, जैसे कोई प्यार से हल्के-हल्के सहला रहा हो। फिर उसमें थोड़ी जान पड़ी, और फिर पढती ही गई। थोड़ी देर में पिपही का स्वर चारो ओर गूजने लगा और ऐसा लगने लगा, मानो आवाज तीर की तरह दसो दिशाओ

[1] ग्रोशेन पुराने जमाने का जर्मन सिक्का होता था, जो आठ से बारह नए पैसो तक का पड़ता था।

को भेदती-सनसनाती हुई भागी चली जा रही हो। शहर के दूर-दूर के गली-कूचों, कोनो-अन्तरों, जंगल-वीरानो का चप्पा-चप्पा उससे बिंधा जा रहा था।

और देखते-ही-देखते तमाशा शुरू हो गया। तहखानों की तलियो से, अटारियों की मुंडेरो और आराइशों के नीचे से, घरों के ओने-कोनों और दीवारो की दरारों से चूहे-ही-चूहे निकल पड़े। हर चूहा भाग निकलने की राह ढूंढता और खिड़की, दरवाजे, रोशनदान, जहा से भी राह मिलती, वही से छलांग लगा कर सड़क पर कूद पड़ता, और सडक पर कूदते ही नाचना शुरू कर देता—ता थेइ, ता थेइ ! नाचते-कूदते चूहे पात-पर-पात बाधे सनसनाते हुए नगर महल की ओर दौड़ पडे। चूहे इस प्रकार एक-दूसरे से सटे थे कि तिल धरने को जगह न थी।

चौक चूहो से खचाखच भर गया। पिपहीवाले ने मुंह फेरा और अपनी पिपही को उसी तेजी से बजाना जारी रखा। फिर नदी की ओर बढ चला, जो हेमलिन की शहर-पनाह की फसील से सटी बहती थी।

नदी किनारे पहुंच उसने मुड़ कर देखा। तमाम चूहे पीछे-पीछे चले आ रहे थे।

उसने अपनी एक उंगली से ठीक मंझधार की ओर इशारा किया और कहा—"रेंग-रेंग, छपाक। फुदक-फुदक, छपाक !"

अब मंझधार का हाल यह था कि वहां एक भयकर नाचता हुआ भंवर पानी को नीचे पाताल की ओर ढकेल रहा था, और चूहे थे कि 'फुदक-फुदक छपाक' सीधे नदी में छलांग लगाते और तैरते हुए भंवर में पहुंच कर लापता हो जाते।

यह सिलसिला आधी रात तक लगातार चलता रहा। आखिर, जब तमाम चूहे भंवर में लापता हो गए, तब एक बड़ा-सा चूहा, जो बुढ़ापे के मारे जुल-जुल हो रहा था, मुश्किल से घिसटता हुआ आया और किनारे पर आकर रुक गया। यह चूहो के उस पूरे गिरोह का राजा था।

पिपहीवाले ने पूछा—"क्यों यार धौले मियां, सभी आ गए ना ?"

धौला मियां ने जवाब दिया—"हां, सभी आ चुके।"

"और सब मिल कर कुल कितने हुए ?"

"नौ लाख नब्बे हजार नौ सौ निन्यानवे !"

"खूब अच्छी तरह से गिन-गिना लिया है ना ?"

"हां, हां, खूब अच्छी तरह से गिन लिया है।"

"तो फिर जाओ, और जहा सब गए हैं, तुम भी वहीं पहुचो। फिर मिलेंगे। अब छुट्टी दो।"

वह बूढा बौला चूहा भी छलांग मार कर नदी मे कूदा और तैरता हुआ भवर तक पहुच कर लापता हो गया।

इस तरह अपना काम पूरा कर लेने के बाद पिपहीवाला अपनी सराय में आकर पैर पसार कर सो रहा, और हेमलिन शहर के निवासी भी पूरे तीन महीनों के बाद आज पहली बार शान्ति के साथ रात बिता सके।

दूसरे दिन सुबह सवेरे कोई नौ बजे के लगभग पिपहीवाला नगर महल के सामने आ पहुचा। वहा नगर-सभा उसकी बाट जोह रही थी।

उसने सभासदो से कहा--"आपके शहर के तमाम चूहों ने कल नदी में छलांग लगा ली और मेरी ओर से इस बात को पक्का मानिए कि अब एक भी चूहा फिर कभी नही लौट कर आएगा। उनकी तादाद नौ लाख नब्बे हजार नौ सौ निन्यानवे थी। न एक कम, न एक ज्यादा, और हमारे सौदे की दर थी फी दुम एक ग्रोशेन। अब कृपा कर मेरा हिसाब चुका दीजिए।

"तो आओ, पहले दुमो का हिसाब कर लिया जाए। एक ग्रोशेन फी दुम का मतलब हुआ एक दुम फी ग्रोशेन! सो लाओ, पहले दुमो को गिन लें। कहा हैं दुमें?"

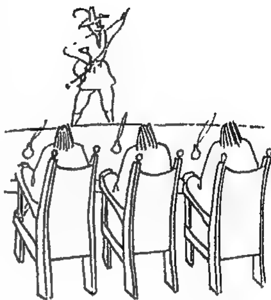
इस बेईमानी की पिपहीवाले को कोई आशका न थी। मारे गुस्से के उसका चेहरा लाल पड़ गया और उसकी आखो से आग बरसने लगी।

"दुम!"—वह चीख उठा—"दुमों की पडी है तुम्हे, तो जाओ नदी में से ढूढ लाओ।"

नगर-सभा के मुखिया ने जवाब दिया--"अच्छा, तो इसका मतलब यही हुआ न कि तुम अपने सौदे की शर्तों को मानने से इन्कार करते हो? हम चाहें तो तुम्हें एक पाई भी न दें। जब तक शर्त पूरी न हो, हम भुगतान करने से साफ-साफ इन्कार कर सकते हैं। लेकिन जाने दो। तुम हमारे काम आए हो, तो हम भी तुम्हें बिना कोई इनाम दिए, यो ही खाली हाथ नही लौटाएगे।" और इतना कह कर उसने कोई पचास तेलर (लगभग ढाई सौ रुपये) देने का रुक्का पेश किया।

गर्व से अकड कर पिपहीवाले ने जवाब दिया—"रख लो अपना इनाम। तुम नही चुकाओगे मेरी मजूरी, तो तुम्हारी आल-औलाद, तुम्हारी आने वाली पीढिया, चुकाएगी। कही जा नही सकती मेरी कमाई।" इतना कह कर उसने अपने टोप को नीचे की ओर

सरकाया, अपनी आंखों को उसकी ओट मे करके सनसनाता हुआ नगर महल से वाहर निकला और शहर के किसी भी प्राणी से जरा भी वोले-वताए विना शहर छोड कर चला गया।



पिपहीवाला गर्व से बोला—"रख लो अपना इनाम·· "

जव हेमलिन वालो ने सुना कि उन्हे मुफ्त मे चूहों से छुटकारा मिल गया, तो वे फूले न समाए। उन्होने खुशी से तालिया वजाई और पिपहीवाले की खूव हंसी उडाई। वे कहने लगे कि वुड्ढे राम खूव फंसे अपने ही जाल मे। लेकिन जिस वात पर उन्हे ज्यादा हंसी आई, वह थी पिपहीवाले की यह धमकी कि मै तुम्हारी आस-औलाद से वसूलूगा! हा हा हा! वाह, लेनदार हो, तो ऐसा हो! भगवान् करे, आगे भी जो लेनदार मिले, ऐसे ही मिले।

अगले दिन इतवार था। तमाम हेमलिन वाले सज-धज कर खुश-खुश गिरजे गए। रास्ते भर इस विचार मे मस्त रहे कि आखिर अव ऐसा भोजन मिलेगा, जो चूहो का जूठन-कुतरन न हो। उन्हे जरा भी आशका न थी कि घर लौटने पर उन्हे कितने भीषण आश्चर्य का सामना करना पड़ेगा। लौट कर आए, तो देखते क्या है कि शहर भर के बच्चो का कही कोई अता-पता नही है। शहर के सारे वच्चे जाने कहा लापता हो गए थे।

गली-गली और कूचा-कूचा एक ही पुकार से गूज उठे—"मेरा वच्चा! हाय, मेरा वच्चा कहा गया?"

और तभी नगर के पूरवी फाटक से, तीन छोटे-छोटे लड़के लौटते दिखाई दिए। तीनो सिर धुन-धुन कर रो-पीट रहे थे, और जोर-जोर से चीख-चिल्ला रहे थे। रो-रोकर जो कुछ उन वच्चो ने वताया, वह यों है.

जिस समय शहर भर के वच्चो के मा-बाप गिरजा गए हुए थे, ठीक उसी समय शहर मे एक अद्भुत सगीत गूज उठा। सव नन्हे-नन्हे वच्चे-वच्चियां उस संगीत से खिंचे हुए वाज़ार वाले वड़े चौक की ओर चले। वहा पहुंच कर उन्होने देखा कि वही पिपहीवाला अपनी पिपही वजा रहा है। फिर उस पिपहीवाले ने वड़ी तेजी से चलना शुरू


तमाम बच्चे उसके पीछे हो लिए।

कर दिया और तमाम बच्चे उसके पीछे-पीछे हो लिए। वह आगे-आगे अपना बाजा बजाता बढा जा रहा था और बच्चे बाजे की धुन पर नाचते-गाते उसके पीछे-पीछे दौडे जा रहे थे। इसी तरह नाचते-गाते वे उस पहाड की तलहटी मे पहुचे, जो हेमलिन में घुसते ही दिखाई देता है। जैसे ही बच्चे पहाड़ के पास पहुंचे, वह पहाड़ ज़रा-सा खुल गया। पहाड मे खुले उस दरवाजे मे वह पिपहीवाला घुस गया। हेमलिन के सारे बच्चे भी उसके साथ-साथ उसमें घुस गए। इसके बाद वह दरवाजा बन्द हो गया।

बस, ये तीन बच्चे थे, जो बाहर रह गए। इनका छूट जाना भी एक चमत्कार ही था। इन तीनो मे एक बच्चा तो लंगडा था। इसलिए वह औरों जितनी तेजी से नही दौड़ पाया था। दूसरा घर से निकलते समय हड़बड़ी मे एक ही पांव मे जूता पहन सका था। नंगे पांव मे किसी बड़े पत्थर से ठेस लगी थी और दुखते पांव से चलना उसके लिए मुश्किल हो गया था। तीसरा बच्चा पहुचा तो समय पर ही था, पर औरो के साथ पहाड़ मे घुसने की हड़बड़ी मे वह इतनी जोर से एक चट्टान से टकराया कि ठीक उस समय जब कि दरवाज़ा बन्द हो रहा था, पछाड़ खाकर परे जा गिरा।

इस कहानी को सुन खोए हुए बच्चो के मां-बाप और भी जोर-जोर से रोने-कलपने और सिर धुन-धुन कर विलाप करने लगे। फावडे-बेलचे लिए वे पहाड की ओर दौड़े और गई साझ तक चट्टान के उस मुह को ढूढते रहे, जिसने उनके बच्चो को निगल लिया था। जब कुछ पता न चला और रात घिर आई, तो वे हार कर अपने घर लौट आए।

लेकिन शहर में जो आदमी सबसे अधिक दुखी था, वह था नगर-सभा का मुखिया। उसके तीन छोटे-छोटे लड़के और दो प्यारी नन्ही-मुन्नी लड़कियां खो गई थी। इसके

लगभग सारे हेमलिन वाले भी तब ऐसे ही सोच रहे थे। वे यह भूल गए कि अभी एक दिन पहले तक वे सब उनकी हां-में-हां मिला रहे थे।

उन बच्चों का फिर क्या हुआ, जो पहाड़ में खो गए थे?

उनके मां-बाप को आशा थी कि वे मरे नहीं होंगे। पिपहीवाला जरूर पहाड़ से बाहर निकला होगा और बच्चों को भी अपने साथ अपने देश ले गया होगा। इसीलिए कई वर्षों तक वे उन बच्चों को ढूंढ निकालने के लिए हर देश में अपने आदमी भेजते रहे। पर उन बेचारे नन्हे-मुन्नों का कहीं अता-पता नहीं मिला।



फावड़े-बेलचे लिए लोग पहाड़ की ओर दौड़े।

उस घटना के कोई डेढ़ सौ साल बाद, जब कि पुरानी पीढ़ी का कोई भी आदमी नहीं बचा था, खोए हुए बच्चों के मां-बाप और भाई-बहनों में से कोई भी जीवित नहीं रह गया था, एक दिन सांझ को नगर के कुछ सौदागर पूरब की मंडियों से लौटते हुए हेमलिन आए। उन्होंने कहा कि उन्हें शहर वालों से कुछ बातें करनी हैं। उन्होंने बताया कि हंगेरी का देश पार करते समय उन्होंने कुछ दिन आर्चालि यानी त्रासिवानिया नाम के पहाड़ी इलाके में बिताए। उस इलाके के लोग केवल जर्मन भाषा ही बोलते थे, जब कि उसके चारों ओर हंगेरी भाषा बोली जाती थी। वहां के लोगों ने उनसे कहा कि वे जर्मनी से आए हैं, लेकिन उन्हें यह नहीं मालूम कि वे उस अजनबी देश में कैसे पहुंचे।

और फिर उन ब्रेमनी सौदागरों ने कहा—"अब तो यह बात बिल्कुल साफ है कि वे लोग हेमलिन के खोए बच्चों ही की सन्तान थे।"

हेमलिन वालों ने इस पर कोई सन्देह नहीं किया। उस दिन से वे इस बात को बिल्कुल निश्चित मानते हैं कि हंगेरी के आर्चाली उनके अपने ही देश-भाई हैं, जिनके पुरखों को वह पिपहीवाला बचपन में वहां ले गया था। इस पर किसी को विश्वास हो या न हो, पर दुनिया में ऐसी बातों की क्या कमी है, जिन पर विश्वास करना इससे भी अधिक कठिन है।

जीव, जन्तु और पौधे

(1)

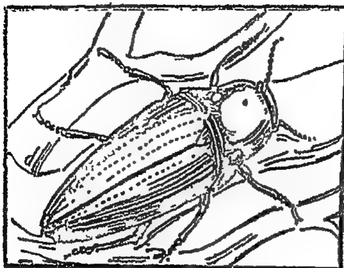
जुगनू



गर्मियो की रात मे जुगनू को इधर-उधर उडते और दमकते देख कर खुशी होती है। ऐसा लगता है, मानो आसमान के तारे जमीन पर उतर आए हो। दक्षिण अमरीका के गर्म भागो के निवासी किसी लकडी या छडी पर वहुत-से जुगनू गोंद से चिपका कर अन्धेरे रास्तो को रोशन करते है। उनकी स्त्रिया शृगार के लिए जुगनू अपने वालो मे लगाती है।

अब तक कुल मिला कर जुगनू की 1,100 किस्मों का पता चला है। जुगनू छोटे कीडो मे औसत कद के होते है। उनका शरीर लम्बूतरा और चपटा होता है। उनके अगले पर पतले मखमली स्याह या भूरे रग के होते है और जिस्म के साथ मजबूती से जुडे हुए नही होते । जुगनू की कुछ ऐसी किस्में भी होती है, जिनमे मादा के पर नही होते। देखने मे वे लारवो की तरह मालूम होती है। वे चमकदार और विना चमक वाली, दोनो प्रकार की होती है। इसके विरुद्ध नर जुगनू के पर अवश्य होते है और वह उड सकता है। लेकिन रोशनी या तो उसमें विल्कुल फीकी होती है या होती ही नही। जुगनू के सिर मे दो पतले धागे जैसे मुलायम रेशे निकले होते है, जिनसे वह दूसरी चीजो को छूकर जानता-पहचानता है। उसके वदन के निचले भाग में पर और पैर होते है। वह भाग वहुत मुलायम होता है और उसके ऊपर एक खोल-सा होता है, जो जुगनू के सिर और पखो के वाहरी भागो को करीव-करीव ढंके रहता है।

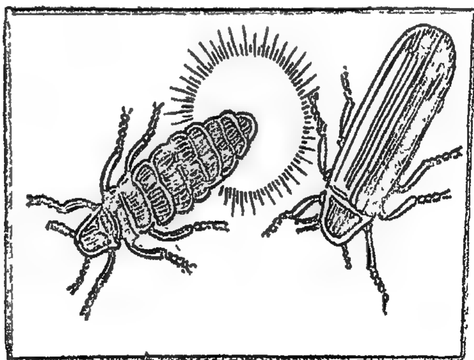
जुगनू दिन के समय घास-फूस मे छिपे रहते है। वे नमदार जगहो मे उगने वाले पौधो के साये मे अपने अडे देते है, जिनमे से लारवे निकलते है। जुगनू का सिर छोटा होता है, मगर जवडे काफी मजवूत होते है, जिनसे वे घोघो, केंचुओ और वनस्पति के कीडो को खाते है। जुगनू के लारवे शक्ल-सूरत मे वडे जुगनू की तरह नही होते। वे कुछ समय वाद वडे जुगनू की शक्ल मे आते है। जुगनू की वहुत-सी जातिया एक साल में एक वार ही वच्चे देती है।



ब्राज़ील का जुगनू

अब यह बात निश्चित रूप से मालूम हो चुकी है कि जुगनू की रोशनी कही बाहर से नही, बल्कि उसके शरीर के खास अगो से निकलती है। उन अगो के अन्दर एक ऐसी परत होती है, जो प्रकाश उत्पन्न करती है, और दूसरी परत उस प्रकाश को बाहर फेंकती है। रोशनी के ये अग आम तौर से इन कीडो के पेट मे नीचे की ओर ही पाए जाते है। रोशनी लूसीफेरिन (Luciferin) नाम के एक मिश्रण के जलने से पैदा होती है। वह मिश्रण जल कर नष्ट नही होता, बल्कि जलने के बाद फिर अपनी असली हालत मे आ जाता है, जिससे जुगनू फिर तुरन्त रोशनी कर सकता है।

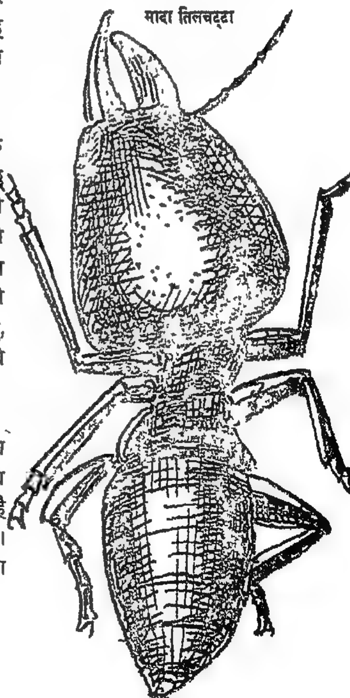
जुगनू की रोशनी मे गर्मी नाम मात्र को होती है। ऐसा खयाल किया जाता है कि नर और मादा जुगनू एक-दूसरे को आकर्षित करने के लिए यह रोशनी करते है।



जुगनू

(2) तिलचट्टा

मौजूदा परदार कीडो मे तिलचट्टा सबसे पुराना है। पुरानी चट्टानो के अन्दर तिलचट्टो के जो शरीर दबे हुए मिलते हैं, उन्हें देखने से पता चलता है कि हजारो वर्ष बीत जाने पर भी तिलचट्टे के शरीर की बनावट मे बहुत कम फर्क आया है। ये कीडे असल मे गर्म देशो के प्राणी हैं, लेकिन तिजारती माल के साथ अब ये भी बडी दूर-दूर तक पहुच चुके हैं। आज ससार मे इनकी लगभग 3,500 किस्में हैं। यह कीडा गन्दगी फैलाने वाला और आदमी की तन्दुरुस्ती के लिए हानिकर कीड़ो मे से है।



मादा तिलचट्टा

आम तौर पर तिलचट्टे की लम्बाई एक इच से भी कम होती है। मगर इसकी कुछ जातियो की लम्बाई दो से छः इच तक भी होती है। इसके शरीर की चौडाई इसकी लम्बाई से ज्यादा होती है और आखो के बीच पतली-पतली धागे जैसी मूछे निकली होती हैं। शरीर मे पैरो के तीन जोडे होते है, जिन पर सख्त रोए होते हैं। पिछले दोनो पैर खास तौर से चलने में काम देते हैं।

तिलचट्टे के पेट मे कुछ गिलटिया होती हैं, जिनसे एक बदबूदार रस निकलता है। जब वह भोजन की तलाश मे चलता है तो रास्ते भर वह रस टपकाता रहता है। इससे यह पता लग जाता है कि तिलचट्टा



तिलचट्टे का जीवन वृत्त अंडे से निकले बच्चे से लेकर पूरा तिलचट्टा बनने तक



दिया गया है। तिलचट्टो की कुछ जातियो के पख नही होते। पूर्वी देशो का झीगुर, काला झीगुर, आदि इसके उदाहरण है। तिलचट्टे की कुछ किस्मो मे नर और मादा, दोनो के पख होते है, किन्तु कुछ ऐसी किस्मे भी है, जिनमे या तो केवल नर तिलचट्टे के पख होते है या केवल मादा के। परदार तिलचट्टो के दो-दो जोडे पख होते है। ऊपरी पख मोटे और भारी होते है, जो नीचे के पतले और पारदर्शक उडने वाले परो की रक्षा करते है। अधिकतर तिलचट्टे भद्दे, गन्दे, काले और लाल होते है, परन्तु गर्म देशो मे कुछ ऐसी हरी या पीली किस्मो के तिलचट्टे भी होते है, जो देखने मे बडे भले और खूबसूरत मालूम होते है।

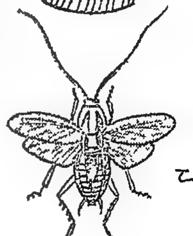




तिलचट्टे दिन की रोशनी मे प्रकट नही होते। वे मास भी खाते है और वनस्पति भी। तिलचट्टे घरो के अन्दर भी रहते है और बाहर भी। किताबो की जिल्दे, जूते, हड्डिया, उनकी अपनी केचुल, थूक, खखार, मल, आदमी का भोजन, खटमल, आदि सभी कुछ इनकी खुराक है। लेकिन घरो मे रहने वाले तिलचट्टे शक्कर और अनाज को बहुत पसद करते है। गर्म और नमदार जगहो मे तिलचट्टे खूब फूलते-फलते है। गर्म पानी के नल, रसोई घर, जलपान घर और उन सब जगहो मे, जहा खाने की चीजे रहती है, वे बडे सुख से रहते है। तिलचट्टे से कोई खास बीमारी नही फैलती, तो भी वे अपने पैरो के जरिए एक जगह से दूसरी जगह तरह-तरह की बीमारियो के कीटाणु ले जाते है। खाने की चीजो पर बैठ कर अपनी खाई हुई चीजो को उन पर उगल कर वे उन्हे गन्दा कर देते है। इस तरह ये आदमी तक बीमारी भी पहुचाते है और गन्दगी भी।







तिलचट्टे के अडे एक झिल्ली मे वद रहते हैं, ताकि सीलन से उनकी रक्षा होती रहे। मादा तिलचट्टा एक वार मे 16 से 40 तक अडे देती है। अडो के फूटने के पहले ही उन पर चढी हुई झिल्ली फट जाती है। इसके अडो से तिलचट्टे की ही शक्ल-सूरत के बच्चे निकलते है। उनमे फर्क केवल यह होता है कि वे कद मे छोटे और विना पख के होते है। वडे होने तक बच्चो को एक के वाद एक लगभग सात वार अपनी केंचुल वदलनी पडती है। इसमे लगभग एक साल लग जाता है। पर इनकी कुछ ऐसी भी किस्मे है, जिनके बच्चो को वडे होने मे दो महीने से दो साल तक का समय लगता है। यह नमी और खुराक पर निर्भर करता है। नर तिलचट्टे के मुकावले मे मादा अधिक जल्दी वढती है।

कुछ समय पहले तक तिलचट्टो के नष्ट करने के लिए घरो मे सोडियम क्लोराइड का इस्तेमाल होता था। लेकिन अव इसके लिए क्लोरडेन का प्रयोग किया जाने लगा है। डी० डी० टी०, फासफोरस, गधक, वोरेक्स और पाइरेथ्रम भी इन्हे नष्ट करने के लिए कारगर साबित हुए है।

जीव, जन्तु और पौधे

(1)



लोकप्रिय जामुन



जंगलों में जामुन के पेड़ सीधे, छरहरे और ऊंचे होते हे। पर खुले मैदानो मे और सड़कों के किनारे उसके तने अक्सर टेढ़े-मेढे, छोटे और मोटे होते हैं। जम्मू के पास एक झील के किनारे जामुन का एक पुराना पेड है, जिसके तने का घेरा लगभग 20 फुट 6 इंच है। ऊंचाई मे 50-60 फुट तक पहुंचना जामुन के लिए मामूली बात है। जामुन के पेड की छाल कोई इंच भर मोटी होती है। यह ऊपर से मटमैली और अन्दर से लाल होती है।

जामुन का पेड़ पंजाब, राजस्थान और कुछ दूसरे सूखे भागो को छोड़ कर, हमारे देश मे सब कहीं होता है। हिमालय की घाटियो मे तो वह 4,000 फुट तक ऊंचे स्थानों पर लगता है। साल के वनों मे और नदी-नालो के किनारे भी जामुन का पेड देखने को मिलता है। पूना के पास महाबलेश्वर मे प्रति वर्ष 200 इंच मेह बरसता है। पर वहां की हल्की पथरीली जमीन पर भी जहां-तहा जामुन के पेड मिलते हे, हालांकि वहा के पेड साधारण पेडो की तरह भारी-भरकम नहीं होते। जामुन की सबसे अच्छी बढत नदियो के किनारे कछार और सैलाबी मिट्टी मे होती है।

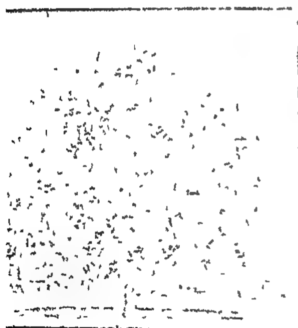
हमारे देश मे जामुन के अनेक नाम हैं। हिन्दी मे उसे जामुन, मराठी मे जाम्बूल, कन्नड मे नेरलू, तमिल मे नावाल और तेलुगू मे नेरडू कहते हैं। लैटिन मे उसका नाम यूजेनिया जम्बोलाना है। जामुन का लैटिन नाम सत्रहवी सदी मे सेवाय के महाराजकुमार यूजीन के नाम पर पड़ा था।

अप्रैल मे जामुन की डालियों पर हल्के धानी रग के छोटे-छोटे फूलो के गुच्छे निकल आते है और अगस्त के महीने मे वे डालिया फलो से लद जाती है। जामुन का फल बैगनी रग का होता है। फल के बीच मे एक गुठली होती है। गुठली के अन्दर दो से लेकर पाच तक बीज होते हैं। जामुन को आदमी, जानवर और चिडिया, सभी चाव से खाते है ।

जामुन का बीज उपजाऊ होता है, पर टिकता नही। जामुन के नन्हे पौधे खुली धूप मे पनप नही पाते, पर वडे हो जाने पर उन्हे छाह की जरूरत नही रहती। छोटे पौधे वहुत धीरे-धीरे वढते है, पर शाखाए छाटते रहने से वे ठीक वढते हैं।

जामुन लगाने की सवसे अच्छी विधि यह है कि वरसात मे बीज को वोकर डलियो मे पौध तैयार की जाए। जामुन की पौध दो वर्ष मे तैयार हो जाती है। सिचाई और साया छोटे पौधे की जान है। डलियो मे तैयार किए हुए पौधे को दो वर्ष वाद जहा चाहे लगाया जा सकता है। जामुन को छुटपन मे पाले और सूखे से वचाना आवश्यक है।

यदि जामुन के पेड को काट दिया जाए, तो उसकी जड से फिर नए कल्ले निकल आते है। उन कल्लो मे से एक को छोड कर वाकी सवको काट देने से वह वढते-वढते नया पेड वन जाता है। भेडें और वकरिया जामुन के पौधो और कल्लो को वहुत हानि पहुचाती है। इसलिए जामुन के छोटे पौधे के चारो ओर काटो की वाड लगा देनी चाहिए।



जामुन

जामुन की लकडी वहुत मजवूत और टिकाऊ होती है। रेलवे के स्लीपर आम तौर से जामुन की लकड़ी के ही वनाए जाते है। यह मकानो के लिए कडी चौखट वनाने के भी काम आती है और इसका ईंधन भी अच्छा होता है।



सड़क के दोनों ओर जामुन की पंक्तियां

जामुन का फल निस्सदेह सर्वप्रिय है, वह बडा गुणकारी है, पाचक है, अनेक दवाओ मे काम आता है और उसकी लकडी भी बडे काम की होती है। फिर भी भारत जैसे गर्म देश मे जामुन अपनी छाया के लिए ही पसद किया जाता है।

(2) उपयोगी कंजी

कंजी का पेड लगभग सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्वी एशिया मे पाया जाता है। वह श्रीलका, अन्दमान, बर्मा, मलय, आदि हर जगह फैला हुआ है।

भारत मे कजी अक्सर नदी-नालो के किनारे ही पनपता और बढता है। पर हिमालय की घाटियो मे 4,000 फुट और दक्षिण की पहाडियो मे 2,000 फुट की ऊचाई पर भी कजी का पेड़ उगता है।

सडको के किनारे और नहरो के किनारे कंजी अक्सर छाये के लिए लगाया जाता है। गर्म, सूखी और रेतीली जमीन मे कजी नही पनपता। यह समुद्र के किनारे भी पाया जाता है।

कजी का पेड़ मझोले कद का होता है। उसकी छतरी का फैलाव बहुत होता है और उसका तना टेढा-मेढा होता है। कजी के पत्ते इतने कम दिनों के लिए झडते हैं कि उसका पेड लगभग पूरे साल हरा-भरा रहता है। उसकी छाल चिकनी, पतली और भूरी होती है। उसके पत्ते कोई तीन इच लम्बे और चटकीले होते है। उनका निचला हिस्सा नसदार होता है। कजी के पेड की ऊचाई लगभग 40-50 फुट होती है।

कजी के पेड मे अप्रैल के महीने मे सफेद फूल आते है। फूलो की सफेदी मे गुलाबी और बैंगनी रग की झलक होती है। फूलो के साथ ही कजी के नए पत्ते भी निकल आते है, और मई मे पेड सज-धज कर तैयार हो जाता है। पर उसकी फलियां अगले साल के फरवरी-मार्च तक पक कर तैयार होती है। एक कजी के पेड से हर वर्ष तीस से चालीस सेर तक फलियां निकलती है। फलियो को कूट कर उसके अन्दर से बीज आसानी से निकाल लिए जाते है। बीज मे तेल होता है, इसलिए वे ज्यादा दिन नही टिकते। एक छटाक मे कोई पचास-साठ बीज चढते है। हर फली मे एक या दो बीज होते है और उनका रग कत्थई होता है।

कजी को हमारे देश के लोग अनेक नामो से पुकारते है। हिन्दी मे पापडी और कजी; मराठी मे करजी, कन्नड मे होंगे, उगेमारा, हुली गिल्ली और बट्टी; तेलुगू मे कागू, कनूग, और करानुगा; मलयालम मे मिनारी, पन्नू और ऊंगूमारम, तमिल मे कानगा, पोनगा, पुनगम और उडागू, पजाबी मे सुख चैन, और उडिया मे कोरोनजो या कोनज कहते है। लैटिन मे उसका वैज्ञानिक नाम पोनगेमिया ग्लोब्रा है।

कजी को लगाना कोई कठिन काम नही है। बीज बो देने से पौधे आसानी से उग आते है। कोई साठ से अस्सी प्रतिशत बीज एक महीने के अन्दर जम जाते है। एक सेर बीज मे लगभग हजार पौधे तैयार किए जा सकते है और पौधों को उखाड़ कर जहा-तहा लगाया जा सकता है। कजी लगाने का एक और भी ढग है। जब पौधो की मोटाई अगूठे जितनी हो जाती है, तो लोग खुदाई करके पौधे को इस तरह उखाड लेते है कि उसकी जड कम-से-कम नौ इच बाकी रहे। फिर एक इच छोड कर उसके तने के

ऊपर का पूरा हिस्सा काट कर फेंक देते हैं। तब उसे जहां चाहे ले जाकर लगा सकते हैं।

कंजी के पौधे अपने-आप ही नदी-नालों के किनारे उग आते हैं। वे बडे पेड़ों के साये तले भी पनप जाते है, पर खुले मे उनकी वढत अच्छी होती है। कंजी, नीम की तरह, हर प्रकार की जमीन में पनप सकता है। कंजी के पेड को काट दिया जाए, तो उसमे से फिर से कल्ले फूट पड़ते हैं।

छोटे पौधे की नलाई और गोड़ाई करने से उसकी वढत अच्छी होती है। उनको और किसी विशेष देख-रेख की आवश्यकता नही होती। पाला उस पर कम असर करता है। खुश्की और गर्मी को वह सह लेता है। उसके छोटे पौधों को मवेशी नही खाते। उसके पत्तों मे कोई ऐसा रस होता है, जो जानवरों को नही भाता। हा, जब पेड़ बड़ा हो जाता है, तब उसके पत्तों को जानवर चाव से खाते हैं। दक्षिण में तो पेड़ को ऊपर से छांट देते हैं। छाटने से नए कल्ले फूट आते हैं। वहा के लोग उसके पत्तों को पशुओं के चारे के लिए काम में लाते हैं।

कजी की लकड़ी केवल ईंधन के काम आती है। वह टिकाऊ नहीं होती। इसलिए कोई पालदार चीज वनाने के लिए उसका उपयोग नही होता। हां, थोड़े दिन पानी में डाले रखने के वाद उसकी लकड़ी से खेती-वाड़ी के छोटे-मोटे सामान बनाए जा सकते हैं।

कंजी का पेड़ साया देता है, उसके पत्ते मवेशियो का चारा और खाद बनते हैं तथा उसके बीजो से तेल निकाला जाता है। कंजी का तेल भारी और रंग मे पीला होता है। उसकी खली खाद के काम आती है।

(3)

सुनहरा अमलतास



अमलतास

अमलतास का पेड हमारे देश मे हर जगह पाया जाता है। जहा एक ओर शिवालिक के जगलो मे अमलतास के पेड बडी सख्या मे पाए जाते है, वहा दूसरी ओर ये उत्तर-प्रदेश मे हिमालय की घाटियो मे चार हजार फुट की ऊचाई तक मिलते है। खाली अमलतास के बगीचे या जगल कही नही मिलते। अमलतास सदा तरह-तरह के पेडो के साथ मिला-जुला ही पाया जाता है। अमलतास का पेड मझोले कद का होता है। अच्छी जमीन में उसकी ऊचाई पचास से साठ फुट तक और उसके तने का घेरा पाच फुट तक पहुच जाता है।

अमलतास के पौधे की छाल चिकनी और हरी होती है। पर जब पेड बडा हो जाता है, तब छाल कत्थई रग की हो जाती है। अमलतास घना सायेदार पेड है। पर पतझड के कारण मार्च से मई तक वह अधिकतर बिना पत्ते के रहता है। उसके बाद जब पेड पर नई और कोमल पत्तिया आ जाती है, तब उसकी शोभा देखने योग्य होती है। नई पत्तिया धानी और ताबे के रग की होती है और बहुत ही सुन्दर लगती है। थोडे दिनों के बाद वह चटकीले हरे रग की हो जाती है। एक-एक डाली पर चार से आठ तक पत्तिया होती है।

अमलतास का पेड ज्यो ही नई और कोमल पत्तियो से सज-धज कर तैयार होता

है, त्यों ही उसकी डालिया भडकीले सुनहरे रग के पीले फूलो से छा जाती है। फूल निकलने के थोड़े ही दिन वाद पेड पर फलिया झूलने लगती है, जो नवम्वर-दिसम्वर तक पकने लगती है। जव पतझड आता है, तव वे फलिया भी पत्तियों के साथ गिरने लगती है। फलियो के अन्दर खाने-से वने होते है, जिनमे मीठा गूदा रहता है। हर खाने मे एक वीज होता है, जो हल्के कत्थई रंग का होता है। वदर, गीदड, भालू, सूअर, आदि जानवर अमलतास की फलियों को वडे चाव से खाते है और उसके वीज को जगह-जगह फैलाते है। फलिया लगभग डेढ फुट लम्वी और एक इच मोटी होती है। अमलतास, के वीजो मे अक्सर कीडे लग जाते है।

अमलतास की फलिया कई तरह की दवाओ मे काम आती है। उसका गूदा दस्तावर होता है, जिसे कभी-कभी लोग खाने के तम्वाकू मे मिला देते है। अमलतास का गोद भी विक जाता है और उसकी छाल को चमडा रगने मे इस्तेमाल किया जाता है।

अमलतास को हमारे देश मे लोग कई नामों से पुकारते है। हिन्दी मे उसे अमलतास, मराठी मे वहावा, कन्नड मे काके, तमिल मे कोनाई, तेलुगू मे रेला और असमिया मे मुनारू कहते है। उसका वैज्ञानिक नाम लैटिन मे कैस्सिया फिस्चूला है।

अमलतास का उगाना कठिन है, क्योकि उसके बीज का छिलका वहुत सख्त होता है। कभी-कभी तो वोया हुआ वीज साल भर तक नही उगता। एक साल पुराना वीज नए वीज की अपेक्षा जल्दी उग जाता है। नए वीज को भी वोने से पहले तेज गर्म पानी मे तीन घटे तक रख देने से उसका छिलका मुलायम पड जाता है, और उसके जमने मे आसानी हो जाती है।

अमलतास को पहले क्यारियो मे वोना चाहिए। मार्च-अप्रैल मे वोकर वरसात मे पौधों को उखाड कर आसानी से कही भी लगाया जा सकता है। यदि पौधो को साल भर तक टोकरी मे रखा जाए, उसके वाद कही लगाया जाए, तो और भी सफलता मिलती है। अमलतास का पेड़ यों भी लगाया जा सकता है कि पौधे मे इच भर कल्ला हो और फुट भर जड।

निराई और गोडाई से पौधे जल्दी वढते है। छोटे पौधो को धूप, खुश्की और पाले से वचाना आवश्यक है। उन्हे जानवरो से कोई खतरा नही होता, क्योकि अमलतास ही एक ऐसा पेड है, जिसके पौधे को मवेशी नही छूते।

अमलतास की लकड़ी मजबूत और टिकाऊ होती है। वह वज़न में भारी और

रग मे पीली कत्थई होती है । उससे खेती के औजार बनाए जाते है । उसका ईंधन भी अच्छा होता है और कोयला भी।

पर अमलतास के पेड को लोग उपयोगी समझ कर नही लगाते है । उसे तो लोग आम तौर से उसके घने साए और सुन्दर सुनहरे फूलों की वजह से पसंद करने और लगाते है।

(4) सर्वप्रिय शीशम

शीशम का पेड लगभग हर गाव मे पाया जाता है । उसकी लकडी इतने काम की होती है कि लोग शीशम को वडे यत्न से लगाते और उसकी रक्षा करते है ।

शीशम उत्तर भारत का पेड है । वह हिमालय की तराई और शिवालिक के जगलो मे, नदी-नालो की रोखटो मे, अपने-आप ही उगता है । पहाडी नालो की लाई हुई नई रेतीली मिट्टी पर वह वडी आसानी से कब्जा कर लेता है । पहाडो की घाटियो में वह दो-तीन हजार फुट की ऊचाई पर भी उगता है । नीचे की खुली मैदानी भूमि मे तो वह सारे उत्तरी भारत मे फैला हुआ है ।

शीशम चिकनी मिट्टी वाली या ककरीली जमीन मे नही पनपता । उसकी सबसे अच्छी वढत वगाल की दुआर जमीन में होती है, जहा हर साल 150 इच वर्षा होती है । अच्छी रेतीली दुमट जमीन मे शीशम के पेड के तने की मोटाई पचास-साठ साल मे आठ फुट तक हो जाती है । ऐसे पेडो की लकडी काफी रोएंदार और पक्की होती है । मदानो में पाए जाने वाले इक्के-दुक्के शीशम के पेड की छतरी का फैलाव तो काफी होता है, पर उसका तना छोटा और टेढा-मेढा होता है । लेकिन घने जगलो में उगने वाले शीशम लगभग सौ फुट ऊचे होते है और उनका तना सीधा और मोटा होता है ।

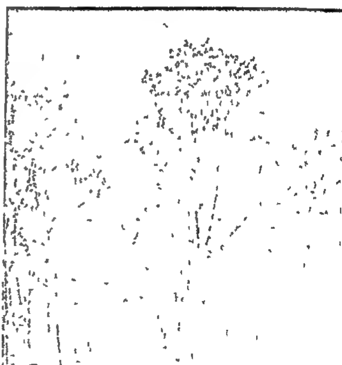
शीशम के तने की छाल मोटी, खुरदरी और मटमैली होती है । उसके पत्ते नवम्बर-दिसम्बर मे झड़ जाते है और पेड़ जाड़े भर नगा रहता है । फरवरी में जव वसत

का आरम्भ होता है, तब शीशम के पेड मे धानी रंग के नए और कोमल पत्ते निकलने लगते हे, जो थोडे ही दिनो मे हरे हो जाते है। पेड की हर डठल पर तीन-तीन पत्ते उगते हें।

नए पत्तो के साथ ही साथ शीशम पर फूल भी आते हे, और मार्च-अप्रैल मे पेड बसती फूलों से ढक जाता है। फिर थोड़े ही दिन बाद फलिया आ जाती हे, जो शुरू मे हरी, फिर पीली और पतझड़ के समय पक कर बादामी रग की हो जाती है। शीशम की फलिया कोई ढाई-तीन इंच लम्बी और लगभग आधा इच चौडी होती है। उनमे एक से तीन तक बीज होते हे, जो टिकाऊ और उपजाऊ होते हैं।

शीशम को हिन्दी मे सिसू या सीसो भी कहते हे। पंजाबी मे उसे टाहली कहते है। लैटिन मे उसका वैज्ञानिक नाम डलवर्जिया सिस्सोद है। शीशम लगाना वहुत आसान होता है, क्योकि वह सीधे बीज बो देने से उग जाता है। इतनी आसानी से लगने वाला शायद ही कोई दूसरा पेड हो। नलाई और गोडाई से उसकी पौध को काफी मदद मिलती है। यदि एक पेड का फासला दूसरे पेड से इतना हो कि उनकी छतरिया आपस मे टकराए नही, तो वे तेजी से वढते है। इसलिए वीच-वीच के पेड-पौधो को निकाल देना चाहिए। शीशम को थाले मे भी लगाते है और सिचाई से उसकी वढत काफी तेज हो जाती है।

शीशम



वोने के लिए शीशम के वीज पेडो पर से ही इकट्ठे करने चाहिए। जमीन पर गिरी फलियो के वीज अक्सर खराव हो जाते हैं। शीशम के छोटे पौधो को पाला मारने का डर नही रहता, पर वे खुश्की नही सह सकते। छोटे पौधो को जानवरो से वचाना पड़ता है। यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि उन पर वडे पेडो का साया न पडे।

शीशम की लकडी बहुत मजबूत, भारी और टिकाऊ होती है। न वह सूखने पर फटती है, न उसको चीरने-काटने में ही कठिनाई होती है। उस पर पालिश और वार्निश भी खूब चढ़ती है। शीशम की लकडी मेज, कुर्सी, बक्स, अलमारी, इत्यादि बनाने के काम आती है। उससे दरवाजे, चौखट और खेती के सामान भी बनाए जाते हैं। उसका बुरादा जलाने के काम आता है। शीशम की इतनी माग रहती है कि उसके मुहमागे दाम मिलते है।

(5) शानदार सेमल

जाड़े के दिनो मे बड़े-बडे लाल फूलो से लदा हुआ सेमल दूर से ही अपनी तड़क-भडक की घोषणा करता है। उसका सीधा, सपाट और गोल तना चादी की तरह चम-चम चमकता है। रेगिस्तानी या सूखी जमीन को छोड कर सेमल हमारे देश मे हर जगह होता है। वह हिमालय और दूसरे पहाडो में चार-पाच हजार फुट की ऊचाई पर भी उगता है। भारत मे शायद ही कोई ऐसी जगह हो, जहा सेमल न होता हो। पर उसकी सबसे अच्छी बढत तराई, भाभर और बाढ की रेतीली मिट्टी में होती है।

सेमल को अच्छी जमीन मिले, तो वह सौ-सवा सौ फुट तक ऊचा, और उसके तने का घेरा बारह फुट तक मोटा हो जाता है। कोई-कोई पेड़ तो दो सौ फुट तक ऊचे हो जाते है। सेमल का भारी-भरकम पेड अपना बोझ सम्भालने के लिए अपने तने पर पुश्ते बनाता है। उन पुश्तो के बीच मे आदमी तो क्या, हाथी तक समा सकता है।

हमारे देश मे सेमल के भिन्न-भिन्न नाम है। उसे हिन्दी मे सेमल, मराठी मे सयर, कन्नड मे सौरी या बुर्ला, तेलुगू मे बुर्गा और तमिल मे इल्लवू कहते है। लैटिन मे उसका वैज्ञानिक नाम बौम्बैक्स समालाबैरीकम है।

सेमल का पतझड जाड़ो मे होता है। सेमल के छोटे पौधे के तने पर काटे होते है, मानो प्रकृति ने अपनी ओर से उसकी रक्षा का प्रबन्ध कर दिया है। पेड़ के बड़े



सेमल

होने पर कांटे झड़ जाते हैं। सेमल की छाल सपाट और सलेटी रंग की होती है। उसकी डालियां एक-सी जगह से चारों ओर फैलती हैं और उनके चटकीले पत्ते आदमी के हाथ की उंगलियों की तरह गुच्छों में निकलते हैं।

जाड़ों के अन्त (जनवरी-फरवरी) में जब पतझड़ के बाद सेमल में नए पत्ते आते हैं, तब वह लाल रंग के भड़कीले फूलों से ढक जाता है। उसकी डालियों पर लगे

फूलो को चिड़िया और नीचे गिरे फूलो को जानवर बड़े चाव से खाते है। लोग सेमल के फूल की तरकारी भी बनाते है।

सेमल के गुद्दे या फल मार्च-अप्रैल मे तैयार होते है। वे कोई 6 इंच लम्बे होते है। वे अप्रैल-मई तक पक जाते है और पेड पर ही फूट जाते है, और उनके अन्दर की नरम-नरम रेशमी रूई हवा के झोको से बिखर कर उड़ने लगती है। सेमल के बीज उसके फलो के अन्दर रूई के बीच मे होते है। इसलिए जब रूई हवा मे उडती है, तब बीज भी साथ उडते हुए मीलो तक चले जाते है और जगह-जगह फैल जाते है।

सेमल के बीज बहुत हल्के होते है। एक छटाक मे कोई 1,500 बीज चढते है। क्यारियो मे बोने पर वे बडी आसानी से जम जाते है। सेमल के बीज मे एक प्रकार का तेल होता है, इसलिए वह जल्दी खराब नही होता। एक जगह से दूसरी जगह लगाने

सेमल की बहार



में सेमल का पौधा अक्सर मर जाता है। इसलिए सेमल के अंगूठे भर मोटे पौधे की कोई एक फुट जड़ और एक इंच तना रख कर, बाकी पौधे को काट कर फेंक देते हैं और थाले बना कर उन्हें जहा चाहे लगा देते हैं। पौधो को बरसात शुरू होने पर ही थालों में लगाना चाहिए। सेमल का पौधा बहुत तेजी से बढता है। नलाई और गोडाई से उसकी बढत और भी तेज हो जाती है।

नए पौधे को पाले से बहुत नुक्सान पहुंचता है। पशु भी उसे खाने से नही चूकते। सेही और सूअर तो उसे जड़ से ही खोद कर खा जाते हैं। यही कारण है कि सेमल के पौधे को बबूल के काटों से रूंध देते हैं। काटेदार झाडियो में तो वह अपने-आप ही उग कर बड़ा हो जाता है।

सेमल की लकडी देखने में सफेद, वजन में हल्की और कमजोर होती है। वह केवल दियासलाई बनाने के काम आती है। उसके हल्के बक्स भी बनाए जाते हैं। लोग सेमल के पेड के तने को खोखला करके छोटी-छोटी नावें भी बना लेते हैं, क्योंकि सेमल की लकड़ी पानी पीने से और भी टिकाऊ हो जाती है। सेमल के पेड से एक प्रकार का गोंद निकलता है, जिसे मोकारस कहते हैं और जो दवा के काम आता है। उसकी छाल के रेशो की रस्सी बनाई जाती है। सेमल के बीज का तेल भी उपयोगी होता है।

(6) पारसी बकाइन

बकाइन एक विदेशी पेड है। कहा जाता है कि बकाइन को मुसलमान ईरान से लाए थे और उन्होंने उसे सबसे पहले पंजाब और कश्मीर में लगाया था। बाद में वह धीरे-धीरे सारे भारत में फैल गया। वह मैदानो से लेकर हिमालय की घाटियो में 6,000 फुट की ऊंचाई तक लग सकता है।

बकाइन देसी नीम की ही जाति का एक पेड है और नीम की ही तरह वह बिना किसी कठिनाई के सब जगह उगाया जा सकता है। न उसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है, न सूखे का डर रहता है।

बकाइन को हिन्दी में बकाइन, पंजाबी में ध्रेक, तेलुगू में येरीवेप्पा, तमिल में वेम्ब, और मराठी में पेजरी कहते हैं। लैटिन में उसका वैज्ञानिक नाम मेलिया अजेदाराक

है और फारसी मे उसे आजाद दरख्त कहते है। सम्भव है, आजाद दरख्त से ही अजेदाराक हो गया हो।

बकाइन मझोले कद का पेड है। उसका तना छोटा और उसकी छतरी काफी फैली हुई होती है। उसकी छाल नसदार, भूरी और लम्बी होती है।

बकाइन का पतझड जाडो मे होता है, और बसत ऋतु मे उस पर नए पत्ते आने लगते है। अप्रैल-मई मे उस पर बैगनी रग के सुन्दर फूल निकल आते है और जाडो मे फल। बकाइन के फल के पीले-पीले गुच्छे अगली गर्मी तक लटकते रहते है। उसके फल बहुत हल्के होते है और एक छटाक मे कोई 70-80 चढते है।

बकाइन का बीज बडी आसानी से जम जाता है। पहले उसे क्यारियो मे बो देते है, और जब पौधे हाथ-हाथ भर के हो जाते है, तब उन्हे उखाड कर डालियो मे एक जगह से दूसरी जगह ले जाकर लगा देते है। नलाई और गोडाई से उसकी बढत को बहुत मदद मिलती है। बकाइन को यो भी लगा सकते है कि उसके अगूठे भर मोटे पौधे का



वकाइन

एक टुकडा इस तरह काट लिया जाए कि एक इच तना और एक फुट जड बाकी रहे, फिर उसे थाले मे लगा दिया जाए। वकाइन के पौधे साये मे नही पनपते। उन्हे काफी धूप चाहिए।

वकाइन के छोटे पौधे को पाले से बचाना आवश्यक है। उसका पौधा ज्यादा नमी वाली जगहो मे भी नही होता। वकाइन की जड जमीन मे वहुत गहरी नही जाती। इसलिए आंधी-तूफान मे उसके पेड उखड कर अक्सर गिर जाते है। उसका तना भी मजबूत नही होता। उसकी लकडी हल्के गुलावी रग की होती है, जिससे हल्की और मामूली चीजे ही वनाई जा सकती है। चीन और जापान मे उससे वाजे वनाए जाते है। वकाइन के फल से एक तरह की मोटी चर्बी निकलती है, जो जूते की पालिश वनाने के काम आती है। कही-कही लोग उसके फल से एक प्रकार की शराव भी वनाते है।

जीव, जन्तु और पौधे

(1)

गौरैया

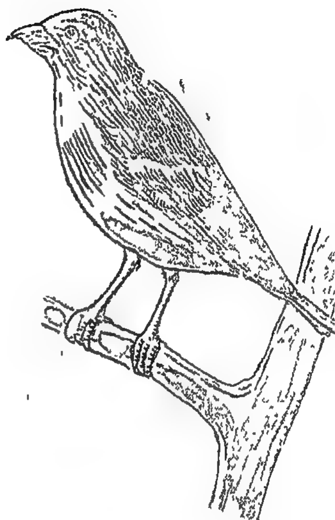




गौरैया एक घरेलू पक्षी है। नर गौरैया को चिडा और गरगौआ भी कहते है। इसके सिर और गर्दन का ऊपरी भाग भूरा और गले का निचला भाग और सीना काला होता है। चोंच के दोनो ओर के भाग यानी गाल बिल्कुल सफेद होते है। इसके शरीर का बाकी सारा निचला भाग कुछ-कुछ पीलापन लिए होता है।

गौरैया करीब-करीब सब जगह सदा से पाई जाती है। परन्तु अमरीका और आस्ट्रेलिया मे इसका परिचय हाल मे ही मिला है। देश-काल के अनुसार इसकी कई किस्मे मिलती है। पर भारत मे इसकी दो ही जातिया खास है—पहाड़ी गौरैया और मैदानी इलाके की गौरैया। पहाडी इलाको की गौरैया मैदानी इलाको की गौरैया से कुछ बडी और अधिक सलोनी होती है।

गौरैया दाने-चारे की सुविधा के लिए अधिकतर आदमियो की बस्ती के आस-पास रहती है। आदमी ने जब और जहा भी नई बस्तिया बसाई है, गौरैया भी उसके साथ रही है। पर यह एक अजीब बात है कि भारत के त्रावणकोर प्रदेश के पहाडी इलाको मे गौरैया बिल्कुल ही नही पाई जाती। ऐसी एक-आध जगहो को छोड कर छोटी या बडी चाहे कैसी भी बस्ती हो, गौरैया सब जगह फुदकती नजर आएगी। शहरो मे खाने-पीने और अनाज की दुकानो पर आप गौरैया को डटा हुआ पाएगे। कभी वह दुबक कर भागने की फिक्र मे होती है, तो कभी बढ कर हाथ साफ करने की घात मे। मतलब यह कि वह मौके को हाथ से नही जाने देती। वह घरो मे भी बराबर आती-जाती है। मगर वहा वह अधिकतर बसेरे की गरज से जाती है, भोजन की खोज उसका मुख्य उद्देश्य नही होता।

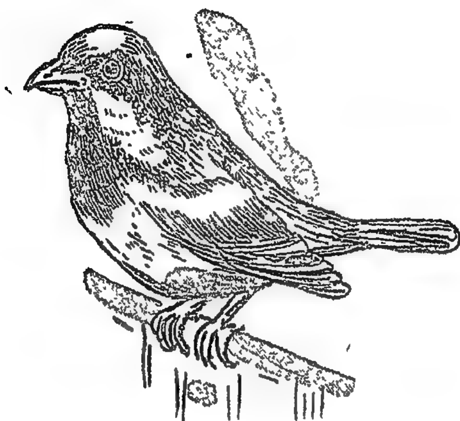


गौरैया

बस्ती के बाहर किसान और रखवाले, दोनो इससे तंग आ जाते हैं। उनके झुंड-के-झुंड पकती हुई फसलों और फल के बागो मे पहुंच कर एक आफत कर देते हैं। नए बोए हुए अनगिनत बीजो को कुरेद-कुरेद कर गौरैया जो नुक्सान करती है, उसे हम हँस कर नही टाल सकते। लेकिन गौरैया मे जो बात सबसे बुरी है, वह यह कि फूलो की कलियों और पंखुडियो को बेमतलब कुतर-कुतर कर खराब कर डालती है। इस तरह गौरैया आदमी की संगति मे रह कर अपने अधिकार से कही ज्यादा आदमी के भोजन पर धावा मारती है। लेकिन इसके साथ-साथ खेती और आदमी की तन्दुरुस्ती को नुक्सान पहुंचाने वाले कीडो को खाकर वह एक हद तक आदमी को फायदा भी पहुचाती है। गौरैया के छोटे-छोटे बच्चे सयाने होने तक गोबरैलो और तितलियो के लारवो को खाकर उनकी सख्या मे काफी कमी कर देते है।

गौरैया के घोसलो का पता लगाना भी कोई बडी बात नही है। मकानो की कार्निस या दीवार मे सूराख उनके बसने की जगह होते है। उनके घोसले मजबूत नही होते। घास-फूस के तिनको, ऊन के टुकडो, भूसा, पख, आदि जमा करके गौरैया अपना घोसला तैयार करती है। छत, छप्पर, दीवार, जहा कही भी थोड़ी जगह मिली कि गौरैया ने घोसले के लिए तिनके ला-लाकर जमा करना शुरू कर दिया।

गौरैया एक बार मे तीन से पाच तक अडे देती है। उनका रंग सफेद, हल्का हरा या पीलापन लिए होता है। उन पर बादामी रग की चित्तिया-सी होती है। नर और मादा, दोनो मिल कर बच्चो का पालन-पोषण करते है। लेकिन अडे सेने की पूरी जिम्मेदारी मादा पर होती है। 14 दिनो मे अडो से बच्चे निकल आते है।



गौरैया के अंडे देने का कोई बंधा समय नही होता । वह लगातार कई बार अंडे दे सकती है । इसीलिए वह इतनी बडी सख्या मे हर जगह दिखाई देती है ।

(2) पहाड़ी कबूतर

भारत के पालतू पक्षियो मे कबूतर एक मनपसद पक्षी है। लेकिन सफेद जाति के पहाड़ी कबूतर अधिक पाले जाते है। ये पहाड़ी कबूतर हमारे पालतू कबूतरो से जोड़ा खाते रहते है। यही वजह है कि भारत मे कबूतरो की तरह-तरह की नस्ले पाई जाती है।

भारत मे पहाडी कबूतर को लोग बहुत चाहते और उसे पसद करते है। भूरा सलेटी रग, पखो पर की दो साफ लकीरो और गले के चारो ओर धातु के रग की-सी चमक से उसे पहचाना जाता है ।

जगली हालत मे कबूतर खुली हुई पथरीली जगहो मे निवास करते है। यही नही कि कबूतर हमारे घरो के ही नजदीक रहते है, बल्कि वे बाजार की काव-काव और



पहाड़ी कबूतर

चहल-पहल के भी पूरी तरह आदी हो जाते हैं। कुछ लोग जीव-दया के खयाल से इनके आगे दाना-दुनका डालते रहते है, जिससे वे आदमियो से पूरी तरह परच जाते हैं। फैक्टरियो, मुसाफिरखानो, स्टेशनो, गोदामो, आदि की इमारतो मे वे बहुत इत्मीनान के साथ रहते हैं। वहा सूराखो और दराजो में खोता बना कर वे हजारो की सख्या मे रहने लगते हैं और जगह-जगह बीट के मारे नाक मे दम कर देते हैं।

किसान के लिए तो कबूतर एक बहुत बड़ी बीमारी है। बिना नागा सुबह-शाम खेत और गोदामो मे पहुच कर अन्न का नुक्सान करना उनकी आदत मे शामिल है। यह नुक्सान तब और भी अन्दाज के बाहर हो जाता है, जब वे सुबह से ही मक्का और मूगफली के नए बोए हुए खेतो मे पहुंच कर जमीन से बीज चुगना शुरू कर देते हैं।

कबूतर हरदम इतने चौकन्ना रहते हैं कि उनके पास पहुचना आसान नही होता। यहा तक कि जब वे चुगने मे लगे होते है, तब दो-तीन कबूतर उनकी निगरानी करते रहते हैं। ज्यो ही ज़रा-सी आहट हुई, ये कबूतर दूसरो को होशियार कर देते हैं और पूरा झुड झट से उड जाता है। वे काफी तेज़ और सीधी उड़ान भरते हैं, और अधिकतर झुडों मे रहते हैं।

कबूतर अपने घोंसले पतली-पतली टहनियों, कूडा-कबाड, पखो, आदि को जमा करके तैयार करते है। वे घोंसला बनाने के लिए ऐसी जगह चुनते हैं, जहां उनका बचाव हो सके। मादा कबूतर एक बार मे दो सफेद अडे देती है। अडे देने का कोई

खास समय नही होता। कबूतरी साल में किसी समय भी अडे दे सकती है, लेकिन आम तौर से अडे देने का मौसम जनवरी से मई तक होता है। अडे सेने और बच्चो को पालने का काम नर और मादा, दोनो मिल कर करते है।

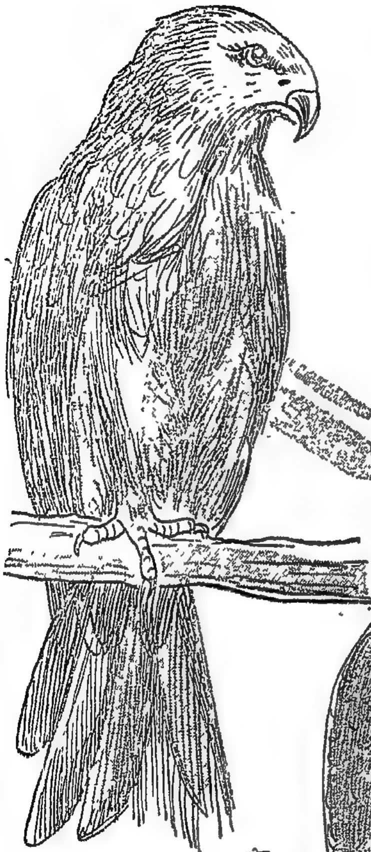
(3) चील

चील भारत मे हर जगह कसरत से पाई जाती है। लम्बे-नुकीले डैने, बाहर को निकले हुए उडान के काले पख, तमाम जिस्म पर छोटे-छोटे भूरे बाल तथा पर, और लम्बी दोफाकी पूछ इसकी खास पहचान है। उसके शरीर का निचला भाग कुछ पीलापन लिए हुए भूरा होता है। इसके पैर छोटे और पीले रग के होते है। पैरो के ऊपरी आधे हिस्से पर चारो ओर छोटे-छोटे पर होते है। चील लगभग 2 I इच लम्बी होती है।

चील का रहन-सहन बहुत गन्दा होता है। इसलिए अच्छी निगाह से उसे कोई नही देखता। वह प्राय. गावो और शहरो के आसपास गन्दी चीजो की तलाश में मंडराती हुई दिखाई देती है। मुर्दा जानवरो का मास उसका मनभाता खाना है। मुर्दा खाते हुए गिद्धो के झुड के करीब दो-चार चीले अवश्य दिखाई पड जाएगी।

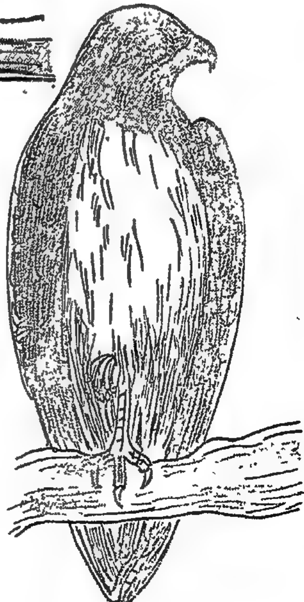
चील एक ढीठ पक्षी है। वह झपट्टा मार कर आदमी के हाथ से खाने की चीजें छीन ले जाती है। इस काम मे वह इतनी चतुर और निडर होती है, और इतना सधा हुआ छापा मारती है कि क्या मजाल, जो झपट्टा खाली जाए। वह हरदम हमला करने के लिए तैयार रहती है। मुर्गियो के चूजे उठा ले जाने मे उसकी खास दिलचस्पी रहती है। केचुए तथा परदार कीडे-पतगे भी उसकी खुराक है।

चील हमारा लाभ भी करती है। बस्तियो के आसपास पडी जानवरो की लाशो और बीमारी फैलाने वाली दूसरी गन्दी चीजो को साफ करके वह हमारी सहायता करती है। वह आसमान मे बहुत ऊचे तैरती हुई-सी सीधी उडती है। इससे चील की ताकत, उसके हल्केपन और हवा मे तैरने की उसकी कुशलता का अन्दाज लगाया जा सकता है।



पतली-पतली लकड़ियों और कंटीली टहनियों को आपस में गूंथ कर और रस्सियों के टुकड़े, लोहे के तार, गूदड़, पत्तियां, आदि उनमे रख कर किसी बड़े और ऊंचे पेड़ पर चील अपना घोंसला बनाती है। इसके अडे कुछ-कुछ गुलाबीपन लिए हुए, सफेद और लम्बूतरे-से होते है। मादा चील एक बार मे चार अडे देती है। चील के नर और मादा की शक्ल-सूरत मे कोई फर्क नही होता। दोनो एक तरह

चील



के होते है। नर और मादा, दोनो मिल कर अपना घोसला बनाते है, दोनो मिल कर अडे सेते है और बच्चो को चुगाते है।

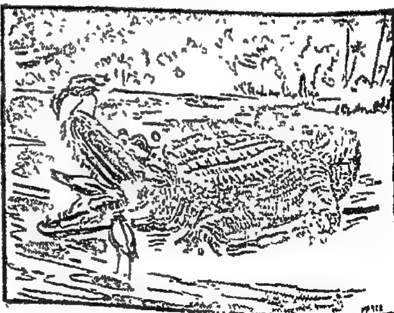


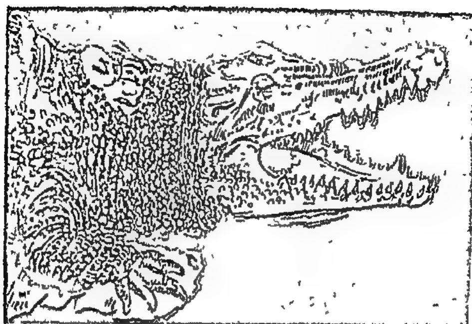
(1)

घड़ियाल

दूसरे देशो की तरह भारत में भी 'मगरमच्छ के आसू' बहाने वाली कहावत प्रचलित है। घड़ियाल सचमुच आसू बहाता हो या न बहाता हो, पर इसमें संदेह नही कि वह एक काहिल और भोडा जानवर है। फिर भी हममे से बहुतो को शायद यह मालूम न हो कि यह बदसूरत जानवर जहा रहता है, वहा के लोगो के धार्मिक विश्वासो और लोक-गीतो में इसका बखान पाया जाता है। घड़ियाल को प्राचीन मिस्र की शिल्पकला और चित्रकला में स्थान दिया गया था। आज भी दुनिया के लाखो बौद्ध घड़ियाल को आदर से देखते है। सैकड़ो जगली जातियो में तो इसकी बाकायदा पूजा होती है। भारत में भी मगर को हजारो बरस से एक तरह के आदर से देखा जाता है।

घड़ियाल

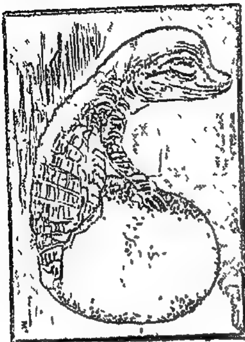




आदमी को खा जाने वाला घड़ियाल

घड़ियाल रेंगने वाले प्राणियो की बिरादरी में आता है। शायद यह कहना गलत न होगा कि मौजूदा रेंगने वाले प्राणियो में घड़ियाल सबसे बड़ा है। इसकी केवल चार किस्में 20 से 30 फुट तक लम्बी पाई जाती है, वैसे आम तौर पर घड़ियाल 16 फुट से अधिक लम्बा नही होता। दूसरे रेंगने वाले जानवरो की तरह घड़ियाल भी जीवन भर बढ़ता रहता है। इसलिए इसकी सही लम्बाई बताना कठिन है। यह यकीन के साथ कहा जा सकता है कि बड़े घडियाल 50 साल या उससे भी अधिक समय तक जिन्दा रहते हैं। घड़ियाल दुनिया के हर गर्म इलाके मे पाए जाते हैं। अब तक उनकी 20 से कुछ अधिक किस्मो का पता लग सका है, जिनमे से केवल चार किस्में भारत में पाई जाती है।

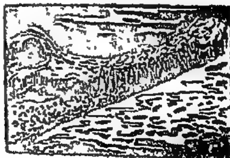
घडियाल खुश्की पर पड़ा हो, तब भी उसे पहचानना आसान नही होता। उसकी वजह उसके शरीर की बनावट है। उसकी पीठ को देखें, तो ऐसा लगता है, जैसे मटमैले रंग के खप्पर एक पर एक जुड़े हुए हो। उसकी दुम के ऊपर आरे जैसे कांटे होते हैं। जब वह पानी में होता है, तब उसके नथुने, कनपटी और आंखो के अलावा शरीर का और कोई भाग दिखाई नही देता। इस तरह वह खुद छिपा हुआ सब कुछ देखता-सुनता और मजे से सांस लेता रहता है। उसके नथुनों और कानो की बनावट ऐसी होती है कि जब वह पानी के भीतर डुबकी लगाता है, तब वे खुद बन्द हो जाते हैं। उसकी आंखो पर ऊपर-नीचे पलकें होती है और आंखो की पतली दर्जों से यह पता चलता है कि वह अन्धेरे मे रहने वाला जानवर है। चूंकि वह पानी



लम्बी नाक वाला घड़ियाल

का जानवर है, इसलिए उसके पैर छोटे होते हैं, इतने छोटे कि वस उसे जमीन से उठाए भर रहते हैं। अगले पैरो मे पाच-पाच और पिछले पैरो मे चार-चार उगलिया होती है, जो बडी मजबूत और एक-दूसरी से झिल्ली द्वारा मिली हुई होती है। अगले पैरो के बीच की तीन उगलियो पर बडे-बडे नाखून होते है। उसकी पूछ वड़ी ताकतवर होती है। जब वह तैरता है, तब उसके अग उसके शरीर से सटे होते है और वह अपनी मजबूत पूछ के सहारे ही पानी को चीरता हुआ तेजी से आगे वढता है। अलग-अलग घड़ियाल की वनावट मे केवल थूथनी का फर्क होता है, वाकी दूसरे अग लगभग एक-जैसे ही होते है। घडियाल की थूथनी सकरी और नुकीली होती है, लेकिन मगर की चौड़ी और कुछ-कुछ गोलाई लिए हुए होती है। नर घडियाल की थूथनी का अगला भाग कुछ उठा हुआ होता है, जिसमे वह सांस लेने के लिए हवा भर लेता है। यही वजह है कि नर घडियाल मादा के मुकावले में अधिक देर तक पानी के भीतर ठहर सकता है।

घडियाल पानी में रहने वाला जानवर है। वह नदियो, झीलो और बड़े-बडे तालावो तथा समुद्रो मे रहता है। दूसरे घड़ियाल की तरह समुद्र के खारे पानी मे रहने वाला घडियाल भी आदमी के लिए बहुत ही खतरनाक होता है। सब घड़ियाल मास खाने वाले जानवर है। वे पानी से वाहर निकल कर आम तौर पर खुश्की में पडे रहते है, लेकिन जरा-सा खटका होते ही झट पानी मे कूद जाते है। पानी में पहुच



दांतों की लम्बी पंक्तियां

कर घड़ियाल अपने को सुरक्षित समझता है, क्योंकि उसमे वह बहुत आसानी और तेजी से चल-फिर सकता है ।

कुछ घडियाल पानी मे शिकार करते है, कुछ शिकार को पकड कर पानी मे घसीट ले जाते है। कुछ पानी मे छिप जाते है और पानी पीने के लिए किनारे पर आए हुए जानवर पर एकाएक हमला कर देते है। कुछ घडियाल, जैसे खारे पानी के घडियाल, आदमी के लिए बहुत खतरनाक होते है। वे हर वर्ष सैकडो आदमियो को पकड कर खा जाते है। जोडा खाने के दिनो मे घडियाल बहुत ही भयकर हो जाता है । उन दिनो कभी-कभी वह अपने रास्ते मे आने वाली छोटी-छोटी नावे तक उलट देता है। अधिकतर घड़ियाल निगलने से पहले अपने शिकार को कुचल लेते है। घड़ियाल के दोनो जबडो मे तेज दातो की एक-एक पात होती है। इसके दांत छोटे-बडे होते है और हर दांत के साथ एक फालतू दात भी लगा रहता है, जो पुराने दात के टूट जाने पर तुरन्त उसकी जगह ले लेता है । यों तो उसकी खास खुराक मछलिया है और उन्ही पर वह निर्भर भी रहता है, लेकिन अगर जमीन पर रहने वाला कोई जानवर उसकी चपेट मे आ जाए, तो वह उसे भी निगल जाता है।

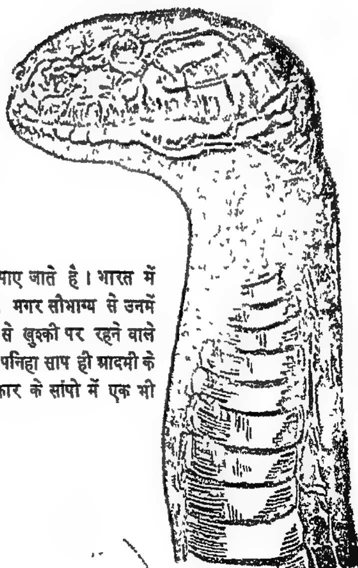
नर-और मादा घडियाल जोडा खाने के दिनो मे एक-दूसरे को सुन कर और सूघ कर तलाश करते है। इस जमाने मे नर घड़ियाल जोर-जोर से डकारता है। उसकी डकार आध मील दूर से भी सुनी जा सकती है। साथ ही वह कुछ गिल्टियो से तेज खुशबू भी छोड़ता है ।

घड़ियाल



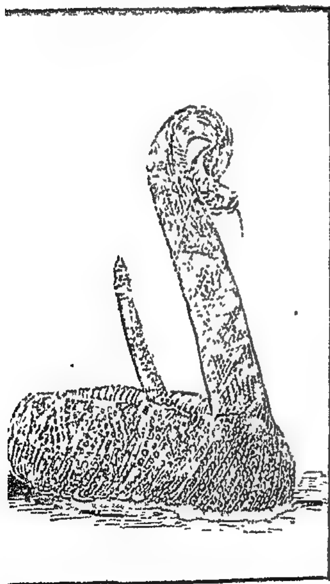
(2)

भारत के सांप



सांप हमारे देश के कोने-कोने में पाए जाते है। भारत में 330 तरह के सांप मिलते है, मगर सौभाग्य से उनमें सब-के-सब जहरीले नही होते। उनमें से खुश्की पर रहने वाले 40 तरह के साप और 29 तरह के पनिहा साप ही आदमी के लिए जहरीले होते हैं। वाकी 261 प्रकार के सांपो में एक भी जहरीला नही होता।

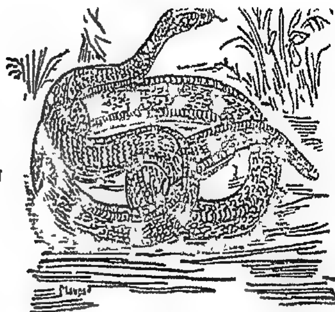
साप के शरीर की बनावट में कुछ बातें बड़ी अजीब है। न साप के हाथ होते है, न पैर। फिर भी वह चल-फिर सकता है, यहा तक कि मौका पडने पर वह अपने दुश्मनो से लड भी लेता है। साप के कान नही होते, लेकिन आम तौर से यह समझा जाता है कि सपेरे की बीन सुन कर साप मस्त हो जाता है। यह बात बिल्कुल गलत है। अगर बजती हुई बीन हिलाई न जाए, तो साप भी फन नही हिलाएगा। इससे यह साफ है कि आवाज का उस पर कोई असर नही होता। साप के कान नही होते, इसलिए तेज-से-तेज आवाज भी उसे सुनाई नही देती। लेकिन, जमीन पर जो धमक पैदा होती है, वह चाहे कितनी ही हल्की क्यो न हो, साप उसे तुरन्त जान लेता है।



डरावनी मुद्रा में सांप

साप एक रेंगने वाला कीडा है। उसके शरीर मे एक छोटा-सा सिर, दो तेज आंखें, चौडाई मे काफी फैल सकने वाला मुह और बीच से दो हिस्सो मे फटी हुई जीभ होती है। उसका बाकी पूरा शरीर गोलाई लिए हुए लम्बा होता है। शरीर का पिछला भाग पतला और नुकीला होता है, जिसे साप की पूछ कहते है। दूसरे जानवरो की तरह साप की पूछ उसके बदन का कोई अलग हिस्सा नही होता। समुद्र मे रहने वाले पनिहा सापो की पूछ चपटी होती है, लेकिन खुश्की के सापो की पूछ गोल होती है।

सांप एक डरपोक जानवर है। मौसम की सख्ती से बचने के लिए वह किसी चौकस जगह पर छिप कर बैठ जाता है और मौसम अनुकूल होने पर वहा से निकलता है। जहा तक बन पडता है, वह हमेशा बच कर भागने की कोशिश करता है। अगर साप के पीछे न पडा जाए, तो वह हर्गिज नही काटता। वास्तव में, साप अपनी रक्षा के



करैत

लिए ही दूसरो पर हमला करता है । कुछ साप चिढ जाने पर जोर से फुकारते हैं। उस समय उनके फेफडो से तेजी से हवा निकलने पर वडी भयानक आवाज होती है । सापो को मोटे तौर पर चार भागो मे बाटा जा सकता है।

(1) खुश्की पर रहने वाले सांप

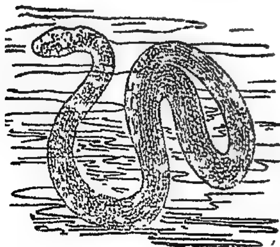
इन सापो मे जहरीले और गैर-जहरीले दोनो प्रकार के साप काफी वड़ी तादाद मे होते है। भारी-भरकम अजगर, चीत, धामिन और अन्य वहुत-से साप गैर-जहरीले सापो की विरादरी मे आते है। करैत, नाग, गडार, गेंहुवन, लोहार, फेटारा और अफई—ये सब साप वहुत जहरीले होते है। दूध पिलाने वाले छोटे-छोटे जन्तु इनकी खुराक होते है। साप अपना भोजन चवाते नही, यो ही निगल लेते है।

(2) पानी में रहने वाले सांप

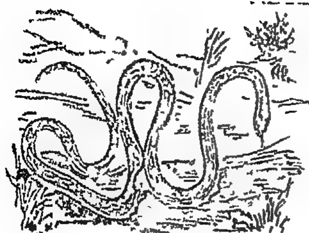
कुछ साप पानी मे रहते है। इनमें समुद्र मे रहने वाले सापो को छोड़ कर कोई भी जहरीला नही होता । हा, समुद्र मे रहने वाले साप वहुत जहरीले होते है। पनिहा सापो के नथुने सिर के विल्कुल ऊपरी भाग मे होते है, ताकि वे आसानी से पानी में सास ले सके। छोटी मछलियां और कीडे उनका भोजन है ।

(3) पेड़ों पर रहने वाले सांप

पेडो पर रहने वाले साप पतले, लम्बे, भूरे या हरे रंग के और देखने मे वहुत सुन्दर



पनिहा साप


धामिन

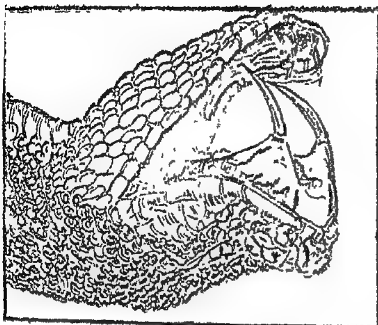
होते हैं। इनमे कुछ ही साप जहरीले होते है, लेकिन उनके काटने से आदमी मरता नही, उनका विप बहुत ही हल्की किस्म का होता है ।

(4) बिलों मे रहने वाले सांप

इस प्रकार के साप जमीन के भीतर रहते हैं। ये कीडो-मकोडो और केंचुओ पर गुजर करते हैं। इनके मुह का अगला भाग नुकीला होता है, जिससे इन्हें अपने बिल बनाने मे बड़ी सुविधा होती है । इनमे एक सांप केंचुए की शक्ल का होता है, जिसे दिखाई नही देता। दुमुही भी इनकी विरादरी मे है। विलो मे रहने वाले साप ज्यादातर जहरीले नही होते ।

साप के जबडो मे दातो की कई पातें होती हैं। जहरीले सापो के ऊपरी जबडे की इन पातो के अतिरिक्त पीछे की ओर झुके हुए दातो का एक और जोडा होता है । ये दोनो दात इजेक्शन लगाने की सूई की तरह होते हैं। इनके मुह मे वादाम की शक्ल की दो गिलटिया होती है, जो तालू मे दोनो तरफ ठीक आखो के नीचे मिलती है और छोटी-छोटी नालियो द्वारा दातो से जुडी रहती है। जब साप काटता है, तो ये गिलटिया दबती है और विप जहरीले दांतो से होकर मनुष्य के शरीर मे पहुच जाता है । साप का जहर चिपचिपा, हल्का पीला और गोद की तरह होता है। साप के जहर मे किसी प्रकार का स्वाद नही होता । अगर साप का जहर सुखा लिया जाए और उसे काफी समय तक रखा रहने दिया जाए, तो भी उसका जहरीलापन बाकी रहता है । साप के लिए उसका जहर बहुत उपयोगी चीज है। बाल और नाखून को छोड कर साप हर खाई हुई चीज को पचा लेता है । सांप का जहर उस समय तक असर नही करता, जब तक वह सीधा खून मे नही पहुचता। इसलिए अगर मुह मे घाव या खरोच न हो, तो इसे बेखटके निगला जा सकता है। खून मे पहुच कर भी यदि साप का जहर रगो मे दौरा न कर सके, तो उसका कोई खास असर नही होता। इसलिए साप की काटी हुई जगह से

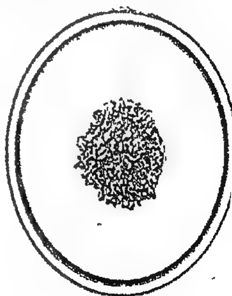

मटिया



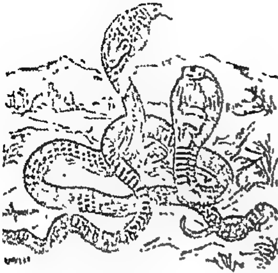
कुछ ऊपर फ़ौरन किसी चीज से मजबूत गांठ लगा दी जाती है। ऐसा केवल इसलिए किया जाता है कि जहर खून में पहुंच कर पूरे शरीर में दौड़ न सकने पाए।

काटते समय बदन में कितना जहर पहुंचता है, यह नाग की काटते समय की हालत पर निर्भर करता है। नाग, जिसे बडजतिया भी कहते हैं, अगर जम कर किसी को काट ले, तो खून में 30 बूंद तक जहर पहुंच जाता है, और अगर तुरन्त इलाज न हो, तो मौत से बचना कठिन हो जाता है। यह 8 से 12 फुट तक लम्बा होता है, मगर 15 फुट या उससे भी अधिक लम्बे नाग पाए गए हैं। हिमालय, असम, बंगाल और बर्मा के घने जंगलों और दक्षिण भारत के पहाड़ी इलाकों में यह ज्यादा पाया जाता है।

भारत के सांपों में काला नाग, जिसे नागराज भी कहते हैं, सबसे अधिक भयानक होता है। फेटारा, गडार, लोहार, गेहुवन और घोड़ा पछाड़ सांप भी लगभग काले सांप ही की तरह जहरीले होते हैं। गेहुवन बहुत बेढब होता है। जब वह बिगड़ जाता है, तब महीनों रास्ता बन्द किए रहता है। घोड़ा पछाड़ सांप दौड़ने में इतना तेज है कि घोड़े को पछाड़ देता है। गांवों में कहावत है कि फेटार का डसा पानी तक नहीं मांगता। गडार का डसा लहर तक नहीं लेता और लोहार के डस लेने से खोपड़ी चटख जाती है। इसी तरह काले नाग के सम्बन्ध में लोग कहते हैं कि उसके सूंघ लेने भर से आदमी मर जाता है, बल्कि उसके आंख भर देख लेने से ही जहर चढ़ने लगता है। गांव वालों की इन बातों में सचाई नहीं है, मगर उनसे यह पता चलता है कि इन सांपों को वे कितना खतरनाक समझते



सुखाया हुआ सांप का जहर

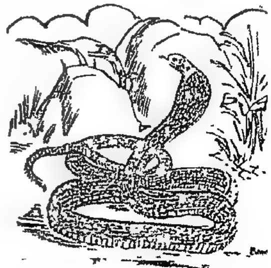

नाग

है । काले नाग को गावो मे करिया, काला और भेंसाडोम भी कहते हैं। यह आम तौर से काले रग का और देखने मे काफी सुन्दर होता है। यह खास तौर से वरसात मे घरो में घुस आता है। इस साप मे करतव सीखने का गुण होता है, इसलिए सपेरे अधिकतर इसे पालते हैं। जब यह अपना फन खड़ा कर ले, तव समझिए कि अब यह पूरी तरह चौकस है । अपने को हर तरह से तैयार रखने के लिए ही यह अपना फन खडा करता है । इसकी गर्दन के ऊपरी भाग मे दोनो ओर मछली के काटो जैसी पसलिया होती हैं। ये पसलिया पुट्ठो से जुडी रहती हैं । जब उसके पुट्ठो मे तनाव पैदा होता है, तव पसलिया दोनों ओर वाहर की तरफ तन जाती है और इसकी गर्दन फैल जाती है। इस तरह नाग अपना फन वनाता है ।

काले नाग की मादा एक वार मे 12 से 22 तक अडे देती है। दो महीने वाद अडे फूटते हैं और उनसे वच्चे निकल आते हैं। नाग के वच्चे और भी खतरनाक होते हैं। वच्चे होने के कारण वे फुर्तीले होते हैं और जरा-जरा-सी बात पर काटने को दौडते हैं। पुराने साप आम तौर से दव्वू होते हैं और वचने की फिक्र मे रहते हैं।

साप के काटने से हमारे देश मे काफी आदमी मरते हैं। साप का जहर तेजी से चढता है और आम तौर पर 2 से 6 घटे के भीतर मौत हो जाती है । साप का डसा हुआ आदमी काटने की जगह पर गहरा दर्द अनुभव करता है । दर्द ऊपर की ओर वढता मालूम होता है । काले नाग की डसी हुई जगह नीली पड़ जाती है या उसमे मटमैले रग का खून वहने लगता है। जहर शरीर पर अपना असर करता है और शरीर धीरे-धीरे वेसुध होता जाता है। साप का डसा हुआ आदमी चाहता है कि वह लेट जाए और आराम करे। उसका सिर भारी होकर झुक जाता है, आखो की पलके झपकने और मुह से लार वहने लगती है। फिर उसे सास लेने मे कठिनाई होती है और थोडी ही देर वाद सास रुकने से मृत्यु हो जाती है ।

नागराज



यदि किसी को जहरीला साप काट ले, तो सबसे पहले यह जरूरी है कि काटी हुई जगह से कुछ ऊपर किसी डोरी से या कपड़े वगैरह से खूब कस कर बांध दिया जाए। कपड़े या डोरी को इतना कस कर बाधना चाहिए कि उस जगह का खून ऊपर न चढने पाए। फिर किसी तेज चाकू या उस्तरे को पहले आग में गर्म करके या खौलते हुए पानी मे उबाल कर उससे काटी हुई जगह को चीर देना चाहिए, जिससे जहरीला खून बह कर शरीर के बाहर निकल जाए। जख्म को लाल दवा से धो देना चाहिए, और तुरन्त डाक्टरी सहायता लेनी चाहिए।

ऐण्टीवीन की सूई लगाना काले नाग के काटे का खास इलाज है। ऐण्टीवीन एक दवा है, जो घोड़े के खून से तैयार की जाती है। उस दवा को तैयार करने की विधि यह है कि पहले किसी घोड़े के खून मे किसी जवान काले साप का जहर रोजाना सूई द्वारा थोडा-थोडा करके पहुंचाते हैं। धीरे-धीरे जहर की मात्रा बढाते रहते हैं। उसका नतीजा यह होता है कि घोडा साप के जहर को सहने का आदी हो जाता है। फिर उस पर साप के तेज-से-तेज जहर का भी कोई असर नही होता। ऐसे घोडे के खून को लेकर उसमे से पनछा या सीरम निकाल लिया जाता है।

इसमे साप के जहर को मारने की ताकत होती है। यही पनछा छोटी-छोटी शीशियो मे ऐण्टीवीन दवा के नाम से भारत के हर अच्छे अस्पताल मे मिलता है। नाग के काटे हुए मनुष्य के शरीर मे जब यह ऐण्टीवीन दवा सुई के द्वारा पहुचती है, तब उसके जहर का असर जाता रहता है। इस तरह आदमी जहर के असर से बच जाता है और उसके जीवित रहने के अवसर बहुत बढ जाते है।

भारत मे कभी-कभी विषहीन सापो के काटने पर भी भय के कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। अगर आदमी बेहोश न हो और दौडता फिरे, तो यह समझ लेना चाहिए कि इस आदमी को विषधर साप ने नही काटा है। उसका दिल बहला कर और ढाढस देकर उसे आसानी से ठीक किया जा सकता है। हा, अगर काटी हुई जगह पर दो विषैले दातो के सूराख मिले, जिनमे से काला रक्त बहता हो और जहर चढने के ऊपर लिखे लक्षण पैदा हों, तो उसे फौरन अस्पताल पहुचाना चाहिए।



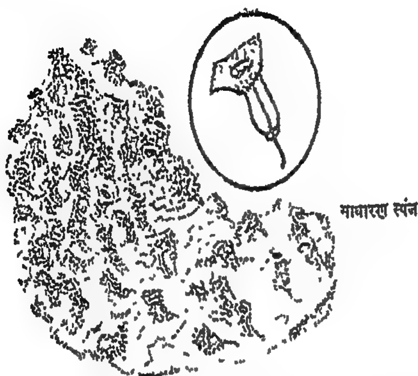
विचित्र जीव

स्पंज

स्पंज पौधो की तरह एक प्राणी है। वह हमेशा पानी मे रहता है। पैदा होने के बाद वह कुछ ही देर चलता-फिरता है और इसके बाद किसी एक जगह पर जम जाता है। स्पंज बहुत तरह के होते हैं। कुछ स्पज आदमी के लिए बड़े काम के हैं। इस बात का प्रमाण मिलता है कि बहुत शुरू के जमाने से स्पज का उपयोग होता आया है। कहावत है कि प्राचीन यूनान मे माताए रोते हुए बच्चो को शहद मे डूबा हुआ स्पज पकडा दिया करती थी, जिसे वे चूसा करते थे। चित्रकारी की कूचियो और फर्श आदि साफ करने के ब्रुशो मे भी स्पज का उपयोग किया जाता था। यूनानी सिपाही पानी पीने के बरतन की जगह अपने साथ पानी मे भीगे हुए स्पज रखते थे।

आजकल भी स्पज का बीसो तरह से उपयोग किया जाता है। घरो मे रसोईघर और गुसलखानो के फर्श और छतो की सफाई के लिए स्पज का उपयोग होता है। डाक्टर लोग चीर-फाड के समय खून को सोखने के लिए स्पज इस्तेमाल करते हैं। लेकिन स्पज का सबसे अधिक उपयोग रेल की पटरियो, मोटरो और मशीनो की सफाई मे होता है। उद्योग-धधो मे, चीर-फाड और आरोग्य सम्बन्धी चीजो के बनाने मे, चमडे की सजावट और मिट्टी की बढिया चीजो मे चमक पैदा करने मे स्पज बडे काम की चीज साबित हुआ है। जौहरी और सुनार जवाहरात को साफ करने के लिए स्पज काम में लाते है। स्पज एक सुन्दर वस्तु है और उससे सजावट का भी काम लिया जाता है।

स्पंज की बनावट इतनी निराली होती है कि बहुत-से वैज्ञानिक उन्हे बहुकोष्ठकी जीवो से बिल्कुल अलग कोटि का जीव मानते हैं। बहुत-सी बातो मे स्पज पौधो की तरह होते है। इसलिए, बहुत दिनो तक यह बहस चलती रही कि स्पज असल मे हे

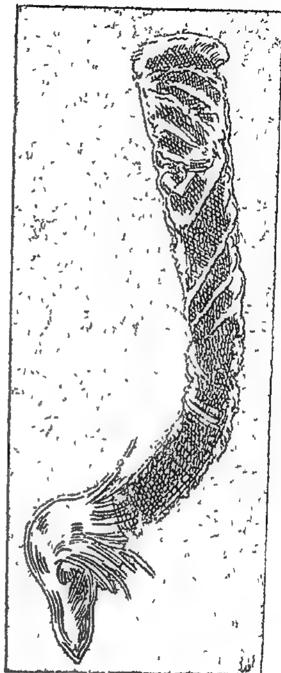


साधारण स्पंज

क्या—पौधा है, या जानवर है ? स्पज मे वह मुख्य तत्व नही होता, जो पौधों की जान होता है। इसके अतिरिक्त स्पज रोएदार लारवो से पैदा होता है । ये दोनो बाते साबित करती है कि स्पज पशु या जानवर है । बहुत-से स्पज ऐसे घोंघों पर भी उग आते है, जिनके भीतर 'वैरागी केकडा' रहता है । यह दोनो के लिए लाभदायक होता है। स्पज के रेशो के नीचे छिपे रहने के कारण केकडे की रक्षा हो जाती है और केकडे पर सवार होने के कारण स्पज उसके साथ-साथ इधर-उधर आता-जाता रहता है । इस तरह से उसे अपना भोजन प्राप्त करने के अच्छे अवसर मिल जाते है। स्पज बदमजा होता है । इसलिए कुछ घोघो को छोड़ कर, दूसरे जानवर उसे नही खाते।

स्पज की ढाई हजार से ऊपर किस्मो का पता चल चुका है, परन्तु मीठे पानी मे रहने वाले स्पंजो की किस्मे 200 से अधिक नही है। बाकी स्पज ससार भर के समुद्रो मे पाए जाते है। यो तो स्पज नदियो और झीलो मे भी रहते है, परन्तु उनके रहने के लिए सबसे अनुकूल स्थान समुद्र के किनारो की पथरीली या कडी तली है और मूगे की वे चट्टाने है, जो 'लगूनेनों' के निकट पाई जाती है।

यों देखने मे स्पज एक बेजान चीज मालूम होता है । पर उसका जानदार होना साबित हो चुका है। अनुभव से यह देखा गया है कि जब पानी की धारा स्पज के शरीर के नन्हे-नन्हे छेदो मे से लगातार बहती है, तो स्पज अपने शरीर को बारी-बारी



से सिकोड़ता और फुलाता रहता है। केवल यही नही कि स्पज वढ़ते और भोजन करते है, वे सन्तान भी उत्पन्न करते है, जो जीवित प्राणियों की सवसे खास विशेषता है। उनके शरीर मे पैर जैसी कोई चीज नही होती, न ही उनके सूत जैसी पतली मूछे होती है। वडे स्पज चल-फिर नही पाते । वे प्राय: किसी चट्टान या समुद्र की तली से चिपक कर एक जगह जम जाते है। उनका कोई निश्चित आकार नही होता। वे गेद, ग्लोब, प्याले या शकु जैसे होते है। नाप मे वे पिन के सिरे जितने छोटे भी होते है और तीन फुट लम्बे और एक फुट चौड़े भी । जहा तक रग का सम्बन्ध है, स्पज सफेद, लाल, गुलाबी, हरे, पीले, नारगी, भूरे और ऊदे, कई रग के होते है।

स्पज का शरीर बिल्कुल छलनी की तरह होता है। उसमें करोड़ो छोटे-छोटे रोम-रन्ध्र (पोर्स) या सूराख होते है, जो या तो उसके शरीर के भीतर की खोखली जगह तक जाते है या फिर उन नालियो मे जाकर मिल जाते है, जो शरीर के पार तक जाती है। इन सूराखो से पानी की धारा वरावर स्पज के शरीर के भीतर जाती रहती है और शरीर के आखिर मे जो कुछ खुली जगह होती है, उससे वाहर निकल जाती है। स्पज के शरीर के आखिर की यह खुली जगह वास्तव मे उन नालियो


स्पंज की कलियाँ

का अन्तिम सिरा होती है, जो उसके शरीर के हर भाग से गुजरती है। इस तरह से स्पज के पूरे शरीर में नालिया-ही-नालिया होती हैं, जिनमे से होकर पानी उसके पूरे शरीर मे दौड़ता है। शरीर का बाहरी ढाचा जेली या शहद जैसे पदार्थ का बना होता है। पर जब हम स्पज को अपने काम मे लाते हैं, तब उसमें यह जेली जैसा पदार्थ बाकी नही रहता।

स्पज को दो परतो में बाटा जा सकता है—एक बाहरी परत और दूसरी भीतरी परत। दोनो की मोटाई मे काफी अन्तर होता है। दोनो परतो को अलग करने के लिए बीच मे एक पर्त और होती है, जिसमे कुछ पेशियां होती हैं। स्पज इन्ही पेशियो से भोजन पचाता है, बच्चे पैदा करता है, और मलमूत्र बाहर निकालता है। लेकिन इस परत की खास विशेषता यह है कि इसमे असंख्य चमकीले रेशे होते है, जिनसे स्पज का पूरा ढाचा सधा रहता है। स्पज के शरीर का यही वह भाग है, जो वाणिज्य, व्यापार, उद्योग और ललित कलाओ मे अधिकतर काम आता है।

स्पज जल के अन्दर तिर रहे सूक्ष्म वनस्पतियो को खाता है। कुछ स्पज शायद जीवाणुओं को भी खाते रहे हैं, पर यह निश्चय नही हो सका है। स्पंज की पानी सोखने की क्रिया बडी मन्द होती है। एक छोटे-से स्पज के शरीर मे पानी के बहाव की गति प्रति सेकंड केवल 3 से 4 इंच तक होती है, जब कि उसमें से होकर रोजाना लगभग 6 गैलन या 36 बोतल पानी गुजरता है। स्पज के शरीर मे पानी के बहाव की गति



स्पंज

को उसके बाहरी छिद्रो के सिकुडने और फैलने की गति धीमा या तेज बनाती है। स्पंज अपने अन्दर जो पानी खीचता है, वह उसके शरीर के बाहरी छिद्रो मे से होकर धीरे-धीरे बहता रहता है और नालियो मे से होता हुआ शरीर के भीतर तक जाता है। इस तरह स्पंज को भोजन करने और सास लेने के लिए आवश्यक आक्सीजन मिलती रहती है।

स्पंज की कुछ पेशियो मे पानी मे छिपे विष के पदार्थों को अलग करने की अद्भुत शक्ति होती है। ज्यों ही पानी मे उसे ऐसे पदार्थों का पता लगता है, उसके शरीर के सूराख तुरन्त बन्द हो जाते हैं और पानी में मिले विषैले पदार्थ शरीर के भीतर नही घुस पाते।

स्पज दो या तीन तरह से अपनी नस्ल बढाते है। एक तो यह कि उनके शरीर के बाहर छोटी-छोटी कलिया-सी निकल आती है, जो बड़ी होकर अलग हो जाती है। इस तरह कलिया निकलती और अलग होकर स्पज बनती रहती है। लेकिन जब प्रकृति की बाहरी परिस्थितिया अनुकूल नही होती और सर्दी, गर्मी तथा अन्य बाधाओ के कारण शरीर के बाहर निकलने वाली कलियों के नष्ट होने का डर रहता है, तब ये कलियां शरीर के भीतर निकलती है। इसके अलावा स्पज के बीजाणु पानी की धारा के साथ बह कर जब मादा स्पज के शरीर के साथ मिलते है, तब वे तैरने वाले छोटे-छोटे रोएंदार लारवों का रूप धारण कर लेते है और उस स्पज से, जिसमे वे पैदा होते है, अलग हो जाते है। लारवे कुछ समय तैर कर किसी जगह नीचे बैठ जाते है। अपना रोएदार रूप त्याग कर लारवे स्पज बन जाते है या स्पजो की एक बस्ती के रूप मे फलने-फूलने लगते है।

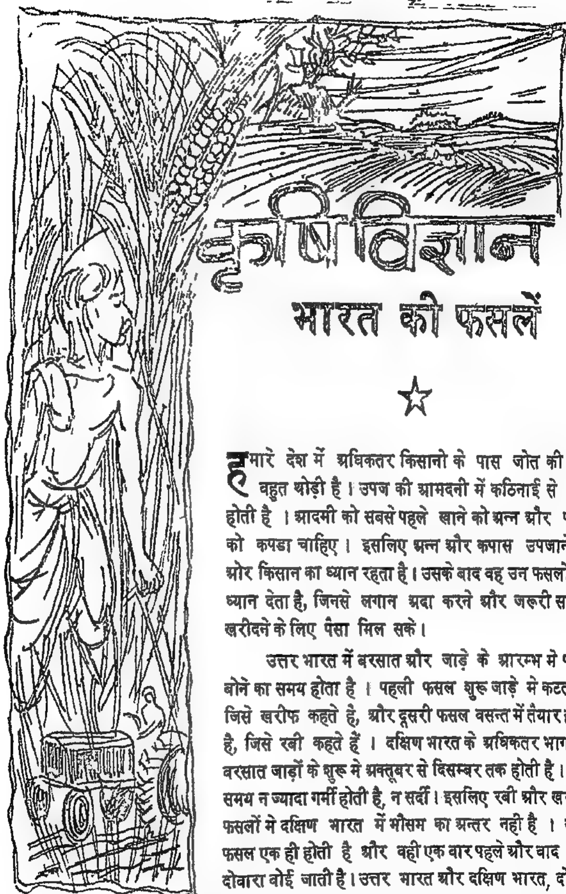




सबसे छोटा स्पंज

संसार के तीन सबसे बड़े स्पंज

स्पंज की बहुत-सी जातियों में यह विशेषता होती है कि उनके शरीर से टूट कर अलग हुए हिस्से फिर उग आते हैं। इस तरह स्पंज के टुकड़ों की मदद से भी उनकी संख्या बढ़ाई जा सकती है, क्योंकि हर टुकड़ा बढ़ कर फिर पूरा स्पंज बन जाता है। स्पंज एक ऐसा जीव है, जो अपना अलग व्यक्तित्व बनाए रखना नहीं चाहता। जब भी दो-तीन स्पंज पास-पास आ जाते हैं, तब वे इस तरह एक-दूसरे में समा जाते हैं कि इसका गुमान भी नहीं होता कि वे कभी अलग-अलग रहे होंगे।



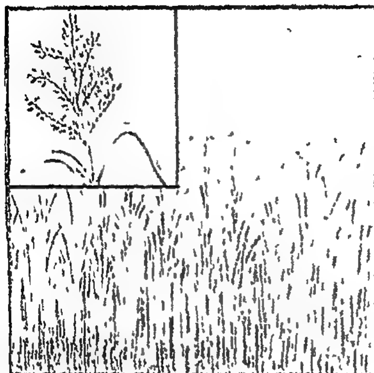
कृषि विज्ञान

भारत की फसलें

☆

हमारे देश में अधिकतर किसानो के पास जोत की भूमि बहुत थोड़ी है। उपज की आमदनी में कठिनाई से गुजर होती है। आदमी को सबसे पहले खाने को अन्न और पहनने को कपडा चाहिए। इसलिए अन्न और कपास उपजाने की ओर किसान का ध्यान रहता है। उसके बाद वह उन फसलो पर ध्यान देता है, जिनसे लगान अदा करने और जरूरी सामान खरीदने के लिए पैसा मिल सके।

उत्तर भारत में बरसात और जाड़े के आरम्भ मे फसल बोने का समय होता है। पहली फसल शुरू जाड़े मे कटती है, जिसे खरीफ कहते है, और दूसरी फसल वसन्त में तैयार होती है, जिसे रबी कहते हैं। दक्षिण भारत के अधिकतर भाग मे बरसात जाड़ों के शुरू मे अक्तूबर से दिसम्बर तक होती है। उस समय न ज्यादा गर्मी होती है, न सर्दी। इसलिए रबी और खरीफ फसलों मे दक्षिण भारत में मौसम का अन्तर नहीं है। वहां फसल एक ही होती है और वही एक बार पहले और बाद को दोबारा बोई जाती है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत, दोनो में खरीफ की फसल मे धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, कपास, गन्ना, आदि पैदा होते है। पर रबी की फसल केवल उत्तर भारत मे होती है, जिसमे गेहूं, जौ, लाही, सरसों, अलसी आदि पैदा होते है। जंतरी के हिसाब से खरीफ की बुवाई आषाढ़ और रबी की बुवाई कार्तिक के महीने में होती है।



धान की फसल और पौधा

चावल

चावल भारत की मुख्य पैदावार है। संसार भर में जितना चावल पैदा होता है, उसका लगभग 90 प्रतिशत पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में पैदा होता है। इसी क्षेत्र में हमारा देश भी है, जहां लगभग 8 करोड़ 35 लाख एकड़ भूमि पर धान की खेती होती है।

1961-62 में विश्व भर में लगभग 29 करोड़ 50 लाख एकड़ भूमि में धान की खेती की गई, जिसमें कुल 24 करोड़ 22 लाख मीटरिक टन धान पैदा हुआ। उस वर्ष भारत में 8 करोड 37 लाख एकड़ भूमि में धान की खेती की गई तथा यहा पर कुल 5 करोड 12 लाख मीटरिक टन की उपज हुई। हमारे यहां बिहार में सबसे अधिक धान पैदा होता है। मद्रास, बंगाल और उड़ीसा का नम्बर उसके बाद आता है। दूसरे इलाको मे भी धान होता है, पर बिहार, बंगाल, उडीसा और मद्रास के अलावा कही उसकी गिनती खास फसलो में नही होती।

धान की बुवाई के लिए खेत की जुताई मई या जून में, यानी आषाढ़ से पहले, होती है। ठीक समय पर जुताई होने से मोथे आदि का उगना रुक जाता है और सरावन या हेंगा चलाने मे मेहनत और खर्च, दोनो ही कम पडते हैं। बुवाई से पहले खेत के चारो ओर ऊंची मेड बना दी जाती है, ताकि बरसात का पानी खेत में रुका रह सके। जुताई बहुत जल्दी खतम करनी पडती है। "तेरह कार्तिक तीन असाढ" की कहावत हर किसान जानता है। इसका अर्थ है कि कार्तिक में खेत तैयार करने के बाद रबी बोने के लिए 13 दिन मिलते हैं, लेकिन आषाढ़ में खरीफ बोने के लिए सिर्फ तीन ही दिन मिलते हैं।

पहले ऐसा समझा जाता था कि जिस खेत में खरीफ की फसल होती है, उसमें रबी की फसल नही हो सकती । इसलिए धान के खेत आम तौर से जाडो मे वेकार रहते थे। पर अब खेती के नए वैज्ञानिक ढग मालूम हो जाने से धान के खेत मे रवी की फ़सले भी बोई जाने लगी है। लेकिन हर खेत मे हर फसल नही हो सकती। अनुभव से मालूम हुआ है कि रबी की फसलों में से मटर, चना और खेसारी हर खेत मे बोई जा सकती है ।

धान उपजाने के दो तरीके है। कही-कही खेत जोत कर बीज छीट दिए जाते है। पौधे उगते, बढते और पक जाते हैं। पकने पर फसल काट ली जाती है। किसान को निराई और सिंचाई के अतिरिक्त और कुछ नही करना पडता । लेकिन यह तरीका वहुत अच्छा नही माना जाता । इस प्रकार की खेती मे बीज अधिक लगता है । एक एकड मे 25-30 सेर बीज डालना पड़ता है । फिर भी उपज कम होती है। इस तरीके से पैदा होने वाले धान का चावल भी बहुत अच्छा नही होता।

धान बोने का दूसरा तरीका यह है कि पहले किसी क्यारी मे बीज छीट कर बेड़न उगा लिए जाते हैं और बाद मे उन्हे उखाड कर तैयार खेत मे रोप दिया जाता है। इसी को जडहन कहते है। बेहन उगाने के लिए मई-जून मे बीज छीट दिए जाते है और जुलाई शुरू होते-होते रोपाई कर दी जाती है। इस तरीके से एक एकड खेत के लिए कोई 10 सेर बीज काफी होता है, निराई मे कम मेहनत पडती है और उपज अधिक होती है । जड़हन का चावल भी अधिक अच्छा होता है ।

आम तौर से किसान खेत में जरूरत से ज्यादा बीज बिखेर देते है। कम और अच्छी किस्म का बीज डालने से फसल अच्छी होती है। बीज अच्छी किस्म का हो, तो खेत की उपज एक एकड़ के पीछे 3 मन तक बढ़ सकती है। आजकल जगह-जगह सरकारी बीज-गोदाम खुल गए है, जहां अच्छी किस्म के बीज मिल जाते है।

अनुभव से पता चलता है कि किसी-न-किसी रूप मे नाइट्रोजन की खाद डालने से धान की उपज जरूर बढ जाती है । एक एकड़ खेत मे ढाई मन तक अमोनियम सल्फेट डाल देना महंगा सौदा नही है। खाद मे जितना खर्च पड़ता है, उपज बढने पर उससे कही अधिक कीमत वसूल हो जाती है । रोपाई के लिए पानी लगाने से पहले इस खाद को दो-तीन इच गहरा डाल देना चाहिए । बहुत-से इलाको मे हरी खाद बनाने के लिए आम तौर से सनई और ढेचा के पौधे उपयोगी होते है। सनई उन

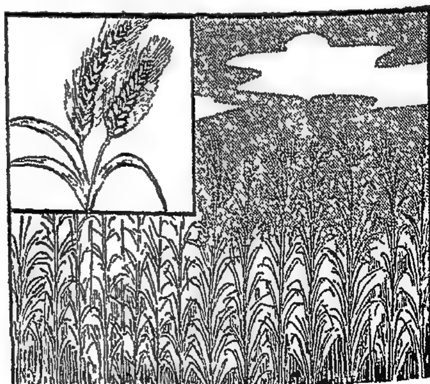
जगहो मे पैदा होती है, जहा पानी कम बरसता है और ढेचा की उपज अधिक बरसात वाली जगहो मे अच्छी होती है।

कुछ दिनो से धान की उपज बढाने के लिए एक नया ढग चला है, जिसे जापानी ढग कहते हैं। जापानी ढग मे (1) बीज थोडा किन्तु बढिया डाला जाता है, (2) बेहन ऊची क्यारिया बना कर उगाया जाता है, (3) रोपाई में पौधे कतारो मे लगाए जाते हैं, जिससे खाद डालने और निराई करने मे आसानी हो, और (4) खेतो मे गोबर की खाद, विलायती खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद और सुपरफास्फेट की खाद डाली जाती है ।

गेहू

गेहू रबी की मुख्य पैदावार है। 1961-62 भारत मे 3 करोड़ 32 लाख एकड भूमि मे गेहू की खेती की गई, जिसमे 1 करोड़ 16 लाख मीटरिक टन की उपज हुई। आजादी के बाद से उत्तर प्रदेश गेहूं उपजाने में दूसरे सब प्रदेशो से बाजी ले गया है। उसके बाद पजाब, मध्य प्रदेश और बम्बई का नम्बर आता है।

गेहू के पौधे को अधिक नमी की जरूरत नही होती। अधिक उपज के लिए मिट्टी मे काफी नाइट्रोजन होना जरूरी है। उसके लिए खाद डालने की निस्बत मिट्टी के प्राकृतिक लसदार तत्वो को कायम रखना अधिक उपयोगी है। जिस मिट्टी मे प्राकृतिक तत्व अधिक होगे, वही चिकनी मिट्टी गेहू की फसल के लिए अधिक अच्छी होगी। इसके अलावा मिट्टी मे जरूरत भर नमी भी होनी चाहिए। गेहू के बीज लेते समय एक बात का ध्यान रखना जरूरी है। कुछ बीज ऐसे होते है, जिन्हे उगने और पकने के



गेहू की फसल और पौधा

लिए बहुत कम गर्मी की जरूरत होती है। दूसरे ऐसे होते हैं, जिन्हे काफी गर्मी चाहिए। हमारे देश में अलग-अलग हिस्सों में कम या अधिक गर्मी होती है। इसलिए गर्मी का ध्यान रखे बिना चाहे जैसा बीज बो देने से खेती खराब हो जाती है। गेहूं की बुवाई बरसात के बाद शुरू होती है। बीज के उगने के लिए भूमि को पहले धीरे-धीरे बढ़ती हुई ठडक मिलनी चाहिए। जब भूमि को आवश्यक ठडक मिल जाती है, तभी गेहूं के बीज बोए जाते है। पर जब कटाई का समय निकट आने लगता है, तब तेजी से बढ़ती हुई गर्मी और बार-बार की सूखी हवा में ही गेहूं के दाने पकते है।

गेहूं की फसल चिकनी करैली मिट्टी मे अच्छी होती है। पर खाद डाल कर तैयार किए हुए किसी भी खेत में अच्छी फसल हो सकती है। गेहू की खेती के लिए बहुत अच्छी जुताई की आवश्यकता है। ठीक समय पर जुताई करना बार-बार जुताई करने से कहीं अच्छा होता है। जिन खेतो मे मोथे आदि उगे हो, उन्हे इस प्रकार जोतना चाहिए कि नीचे की मिट्टी उलट कर ऊपर आ जाए।

गेहू की भी उपज खाद डाल कर बढाई जा सकती है। प्रति बीघा 10-15 गाडी गोबर की खाद डालने पर फसल बहुत अच्छी होती है। सिर्फ हरी खाद से भी उपज बहुत बढ जाती है। एक एकड के पीछे सवा मन अमोनियम सल्फेट डालना बहुत लाभदायक हो सकता है।

सर्दी शुरू होते ही तुरन्त रबी की बुवाई शुरू कर देनी चाहिए। बुवाई कतारो में करनी चाहिए, पातो के बीच कम-से-कम डेढ-दो बालिश्त का फासला रखना चाहिए। मध्य अक्तूबर से मध्य नवम्बर तक का समय बुवाई के लिए सबसे अच्छा होता है। किस खेत में कितना बीज लगेगा, इसका फैसला खेत की मिट्टी, मौसम और बीज की किस्म देख कर ही किया जा सकता है। लेकिन आम तौर से एक एकड के पीछे 15 सेर बीज काफ़ी होता है।

गेहू के पौधो को अक्सर बीज या मिट्टी की खराबी के कारण रोग लग जाते है। उन रोगों को रोकने के लिए कृषि विभाग के कार्यकर्ताओ से राय लेकर पहले बीज को ठीक कर लेना चाहिए।

समय पर सिंचाई करने से फसल निश्चय ही अच्छी होगी। गेहू के खेत सीचने के उचित समय दो होते है, एक तो बोने के बाद अखुए फूटने पर और दूसरा बालिया गदरा जाने पर।

दालें

जो लोग मास नही खाते, उनके लिए दाल आवश्यक भोजन है। दालो से खाने की तरह-तरह की चीजे तो बनती ही है, उनमे क्षार तत्व (प्रोटीन), खनिज तत्व (मिनेरल्स) और जीवन तत्व (विटामिन) बहुत होते है। दाल मास से सस्ती होती है और चूंकि उसे चावल या रोटी जैसी क्षार तत्व वाली चीजो के साथ खाया जाता है, इसलिए वह मास के ही बराबर लाभदायक भी होती है। खाने के काम आने वाली दालो में काले, पीले और सफेद चने, मटर, काले और हरे उडद, अरहर, मूग, मसूर और सोयाबीन महत्वपूर्ण है। कई दाले मिला कर पकाने से भोजन स्वास्थ्य के लिए अच्छा और स्वादिष्ट हो जाता है।

चने की दाल की गिनती सबसे पुरानी दालों मे है। चना बडे पैमाने पर केवल भारत मे ही बोया जाता है। 1961-62 में यहा 2 करोड 38 लाख एकड भूमि पर चने की खेती की गई। चने की उपज चिकनी मिट्टी से लेकर दुमट और बालुई मिट्टी तक मे होती है। लेकिन भारी मिट्टी इसके लिए खास तौर से अच्छी होती है। चना बोने से खेत और अधिक उपजाऊ हो जाते हैं।

रबी की फसलो मे सबसे पहले चना ही बोया जाता है। उसे सितम्बर मे ही बो देते है। जगह-जगह की मिट्टी और मौसम के अनुसार चने के एक एकड खेत में 15 से 40 सेर तक बीज लगता है। खेत बेकार न पडा रहे, इसलिए चना काटने के बाद उसमें खरीफ की फसलो मे से ज्वार, मक्का, आदि बो दिए जाते है। चना बोने के लिए खेत में सरावन चलाने की जरूरत नही पडती। कभी-कभी चने को गेहू, जौ और तिलहनो के साथ मिला कर भी बो दिया जाता है। चने की खेती मे अधिक मेहनत नही करनी पड़ती और चने की फसल पक कर तैयार होने में भी बहुतेरी फसलों से कही कम समय लगता है।

तिलहन

ग्रामो के आर्थिक जीवन मे तिलहन की फसल का एक खास स्थान है। उससे किसान कुछ पैसे खडे कर लेते है। भारत मे तिलहन की मुख्य फसले अलसी, लाही, सरसो, तिल और मूगफली है। 1961-62 मे 3 करोड़ 43 लाख एकड़ भूमि में तिलहन की खेती की गई। देश के बाहर उनका निर्यात भी बडे पैमाने पर होता है। तिलहनो से निकली खली मे नाइट्रोजन होता है, जो खाद के लिए बहुत उपयोगी होता

है । लेकिन तिलहन की अधिकतर उपज विदेश चली जाती है। इससे देश का बहुत-सा नाइट्रोजन भी बाहर चला जाता है। इस घाटे को रोकने के लिए अक्सर विचार किया गया है, पर अभी तक उसका कोई नतीजा नही निकला ।

इसमे सदेह नही कि अगर यह घाटा बन्द हो जाए, तो हमारे ग्रामो को बहुत लाभ होगा । लेकिन इससे किसानो को हानि भी होगी, क्योकि तिलहनो की बिक्री से ही उनको नकद पैसे मिलते है। फिर भी इतना निश्चित है कि यदि देश का सब तिलहन देश मे ही पेरा जाए और खली सस्ती बिके, तो हर प्रकार की फसलो की उपज बढेगी और किसानों को भी अन्त मे लाभ ही होगा ।

एक ही खेत मे अदल-बदल कर फसले उगाने के लिए तिलहन की खेती हर प्रकार की मिट्टी मे हो सकती है। तिलहन के लिए सिचाई और खाद की बहुत कम जरूरत पडती है और अच्छी उपज के लिए केवल दो बातो का ध्यान रखना पडता है। एक तो यह कि खेत की जुताई अच्छी हो और दूसरी इस बात की जानकारी कि किस फसल के बाद किस खेत मे तिलहन बोया जाए। तिल और मूगफली की बुवाई वर्षा शुरू होते ही होती है, क्योकि उनकी फसल वर्षा का पानी पाकर ही तैयार होती है । अलसी, लाही, सरसो वर्षा के बाद बोए जाते है और आम तौर से बिना सिचाई के ही पक कर तैयार हो जाते हैं।

एक एकड़ मे 15-20 सेर मूगफली का बीज लगता है। दूसरे तिलहनो के लिए एक एकड़ के पीछे 2-3 सेर बीज काफी होता है। अधिक उपज के लिए तिलहन को सीधी पातो मे बोना चाहिए और दो पातो के बीच डेढ इच की दूरी होनी चाहिए। कृषि विभाग ने बीज की अच्छी-अच्छी किस्मे खोज निकाली है, जिनसे तिलहन की पैदावार बढाई जा सकती है। मूगफली के लिए एक एकड के पीछे डेढ मन सुपरफास्फेट खाद डालना बहुत लाभदायक होता है ।

लाही और सरसो को गेहू में मिला कर भी बोया जाता है । पजाब की तरफ खेतो मे गेहू के बाद लाही, उसके बाद कपास, और उसके बाद सेजी बोई जाती है। उसके बाद दोबारा उन खेतो मे गेहू बोने से उसकी उपज काफी बढ जाती है। अलसी के बाद मक्का या बाजरा और उसके बाद चना बोने पर भी पैदावार बढती है ।

कपास

कपास की खेती खास तौर से सूखे मौसम मे होती है। पूर्वी भारत मे एक तो कपास बोई ही नही जाती, और अगर बोई भी जाती है, तो उसे महत्वपूर्ण फसल नही

माना जाता। 1961-62 में भारत में कुल 1 करोड़ 87 लाख एकड़ भूमि में कपास की खेती की गई।

कपास की खेती के लिए मुख्य रूप से ऐसा खेत चाहिए, जिसकी मिट्टी नरम और पोली दुमट हो, ताकि उसमें पानी और हवा रिस-रिस कर अन्दर तक पहुंच सकें।

भारत में कपास की उपज बढ़ाने और उसकी क़िस्म सुधारने के सिलसिले में बहुत-सी समस्याएं आती हैं। यह कृषि विज्ञान के पंडितों के लिए काफी दिलचस्पी का विषय है। जिन तरीकों से कपास की काश्त को अच्छा बनाया जा सकता है, उनमें से कुछ तरीके नीचे दिए जाते हैं।

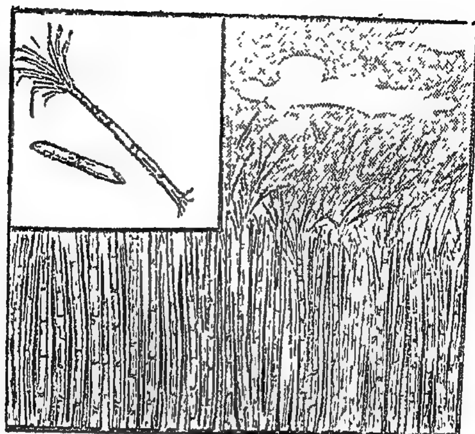
कपास की कई किस्में पैदा की गई हैं। ऐसे अनुभवों से मालूम हुआ है कि कपास की कीमत केवल कच्ची रुई के वजन पर ही नहीं, बल्कि उसके रेशों (तन्तु) की लम्बाई, रंग और बारीकी पर भी निर्भर है। आजकल भारत में उगने वाली कपास की नई किस्मों में ये सब गुण पाए जाते हैं।

कपास की बुवाई का समय अप्रैल या मई है। पहली बरसात में भी बुवाई की जाती है, लेकिन अक्सर वह जाड़ों तक तैयार नहीं हो पाती। कपास 2 से 3 फुट की दूरी पर सीधी पांतों में बोई जानी चाहिए। पांतों के बीच की ठीक दूरी बीज की किस्म देख कर ही तय करनी चाहिए।

खाद से उपज बढ़ने के साथ-साथ कपास की किस्म भी सुधरती है। कपास के खेत में डाली जाने वाली खाद में नाइट्रोजन होना खास तौर से जरूरी है। खेत में मटर, चना, सेंजी या मैथरा बोने के बाद कपास बोने से नाइट्रोजन की जरूरत किसी हद तक पूरी हो जाती है। पर लगभग ढाई मन अमोनियम सल्फेट या चार से पांच मन तक खली और अमोनियम सल्फेट मिला कर खेत में डालना बहुत लाभदायक होता है। ये खादें दो बार में डालनी चाहिए—एक बार बोते समय और दूसरी बार फूल निकलते समय।

गन्ना

गन्ने की फसल पूरे भारत में होती है। 1961-62 में 59 लाख एकड़ भूमि में इसकी खेती की गई। यों गन्ना खास तौर पर उन इलाकों की फसल है, जो काफी गर्म हों, लेकिन भारत में गन्ने की खेती के कुल क्षेत्र का तीन-चौथाई भाग सिंधु-गंगा के मैदानों में है, जो भूमध्य रेखा से काफी दूर पड़ते हैं।



गन्ने की फसल और पौधा

कोयम्बटूर गन्ने के बीजों से उपज बहुत होने लगी है। इसलिए गन्ने की खेती में अब मेहनत और सावधानी की कमी आती जा रही है। लेकिन गन्ने को मेहनत और सावधानी, दोनो की बहुत जरूरत है। कोयम्बटूर के बीज से गन्ने की पैदावार ड्योढी हो जाती है। पूरे भारत मे 100 के पीछे 80 किसान अब कोयम्बटूर गन्ना ही बोते हैं। यदि अधिक ध्यान दिया जाए, तो गन्ने की उपज और भी बढ सकती है। गन्ने को अच्छी भूमि, हल्की चिकनी मिट्टी और खूब पानी मिलना चाहिए। भूमि की कई बार जुताई होनी चाहिए। गन्ने के खेतो मे नई किस्म का हल, जिसमे फाल चौड़ा होता है, और मिट्टी बटुरती आती है, चलाने से मेहनत और खर्च कम बैठता है। बुवाई के समय गन्ना काटते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कटे हुए टुकड़ो मे बीमारी बिल्कुल न हो।

उत्तर भारत मे गन्ने की बुवाई फरवरी-मार्च में की जानी चाहिए। इससे फसल दिसम्बर या जनवरी मे कटने लायक हो जाती है। दक्षिण भारत मे फसल 18 से 24 महीनो मे तैयार होती है। लेकिन उपज ज्यादा होती है। इस फसल को नाइट्रोजन

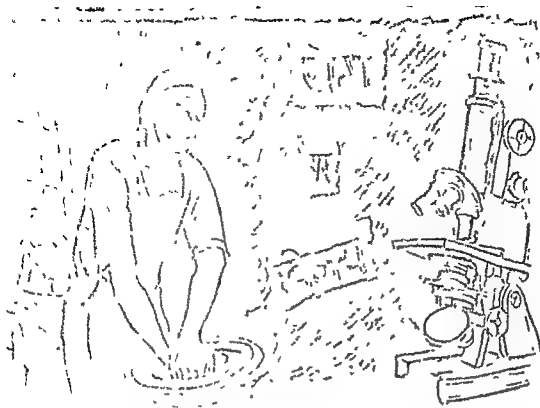
की खाद बहुत चाहिए । बरसात में हरी खाद डालने से भी बड़ा लाभ होता है । बुवाई के समय एक एकड के पीछे आधा मन और अंकुर निकल आने के बाद एक एकड़ के पीछे साढे तीन मन अमोनियम सल्फेट डाल देने से फसल बहुत बढ़िया हो सकती है ।

अन्य फसलें

इसके अलावा आलू, गाजर, शकरकन्द, आदि की भी फसलें हैं। ये चीजें खाने के काम आती हैं। इनमें आलू सबसे महत्वपूर्ण है। यह हर तरह की जमीन में और हर तरह के मौसम में लगाया जाता है। इसकी उपज बहुत होती है और खाने की चीजों में यह बहुत सस्ता बैठता है। आलू को भारत में आए लगभग 300 वर्ष हुए हैं। 1961-62 में भारत भर में करीब 9 लाख एकड़ भूमि में आलू की खेती की गई। भारत में आलू की उपज का औसत एक एकड के पीछे 100 मन है। खेती अच्छी तरह की जाए, तो उपज इससे कही अधिक हो सकती है।

आलू के लिए मिट्टी हल्की और सिंचाई अच्छी होनी चाहिए। इसके लिए ललदार मिट्टी सबसे अच्छी होती है। बुवाई के पहले खेत अच्छी तरह जोत कर तैयार किया जाता है। कई बार सरावन चलानी पडती है। आलू खाद भी बहुत लेता है। एक फार्म में मन भर नाइट्रोजन और फास्फोरिक एसिड, आधा मन पोटाश और दस टन मामूली खाद डालने पर बहुत बडा और अच्छी किस्म का आलू पैदा होगा।

आलू की फसल तैयार होने में बीज की किस्म के हिसाब से अक्सर 3 से 5 मास लगते हैं। उत्तरी भारत में बुवाई जाडो में या बसन्त में की जाती है। अधिकतर खेत सितम्बर-अक्तूबर में बो दिए जाते हैं। समतल खेत में क्यारियां लगा कर आलू डेढ-डेढ फुट के फासले पर बनी कतारों में बोया जाता है। एक एकड में 10-15 मन बीज लगता है। मक्का या तम्बाकू के बाद खेत में आलू बोने से फसल अच्छी होती है। आलू की फसल में बहुत-सी बीमारियां लगने का भय रहता है। इसकी सावधानी बहुत आवश्यक है।



☆

सार्वजनिक स्वास्थ्य

अकेले रह कर मनुष्य का काम नही चल सकता। इसलिए वह परिवार बना कर रहता है। इसी तरह कोई परिवार भी अन्य परिवारो से अलग रह कर अपना काम नही चला सकता। इसी कारण बहुत-से परिवार मिल कर एक समाज बनाते है। इस बात से यह नतीजा निकलता है कि मनुष्य समाज मे रहने वाला एक जीव है।

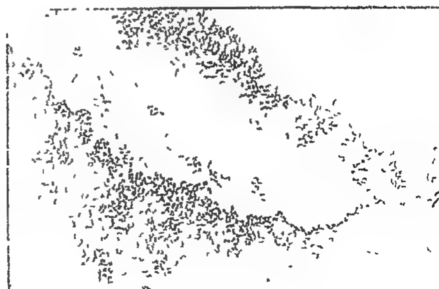
बहुत-से लोगो के एक मुहल्ले, गाव या शहर मे मिल-जुल कर रहने से कितनी ही ऐसी समस्याए पैदा हो जाती है, जो मनुष्य के अकेले रहने से पैदा न होती। उन समस्याओ मे सबसे बड़ी यह है कि आपस के सम्बन्ध कैसे हो—आपस मे मिल कर रहना, झगडा-फसाद न करना, आपसी सहयोग द्वारा पूरे समाज के हित मे काम करना, ऐसी बाते न करना, जिनसे समाज को हानि पहुचे। ये ऐसी बाते है, जिन्हे हर युग के लोग मानते आए है। पर आदमी अभी इतना भला नही बन सका है कि बिना किसी भय के, बिना किसी शासन के, अपने-आप ही समाज के हित के काम करता रहे।

इसलिए लोगो ने मिल-जुल कर समाज के राजकाज और आर्थिक जीवन को ठीक रखने के लिए राज्य और कानून बनाए। लोगो ने यह भी देखा कि बिना किसी पाबन्दी के जहा-तहा जूठन फेंक देने से या पेशाब-पाखाना कर देने से मक्खिया और दूसरे जहरीले कीडे पैदा हो जाते है। ये कीडे हवा और पानी को गदा करते है, बाजार मे बिकने वाली चीजो पर बैठ कर उन्हे गदा करते है और इस तरह पूरे समाज में तरह-तरह की बीमारिया फैलाते है। तब लोगो ने मिल-जुल कर यह सोचा कि हवा

का चिह्न नही है, बल्कि अच्छे स्वास्थ्य का मतलब यह है कि आदमी का शरीर और उसके साथ-साथ उसका मस्तिष्क और उसका सामाजिक जीवन भी ठीक हो।

जीवन के लिए ताजा और साफ हवा बहुत जरूरी है। आदमी सास के द्वारा शुद्ध हवा, यानी आक्सीजन, अपने फेफड़ो के भीतर खीचता है, और गदी हवा, यानी कार्बन डाइ-आक्साइड, बाहर निकालता है। उस गदी हवा के साथ-साथ भाप या पानी के छोटे-छोटे कण भी सास के साथ बाहर निकलते रहते हैं। इसके अलावा धुआ, सडते हुए पेड़-पौधों से निकलने वाली गैस और घरो से उडने वाली तरह-तरह की दुर्गध भी हवा को गदा करती रहती है। ऐसी हालत मे जब सैकडो-हजारो आदमी एक साथ या पास-पास रहेंगे और वहा साफ और ताजा हवा मिलने का ठीक से प्रबन्ध नही होगा, तब लोगो के सास या छीक के साथ निकलने वाली कार्बन डाइ-आक्साइड या रोग के कीटाणुओ को ही लोग सास के साथ अपने फेफडो के अन्दर खीचेंगे। ऐसी गदी और विषैली हवा मे सास लेकर वे बीमारियों के शिकार होगे।

इसलिए इस बात का ध्यान रखना जरुरी है कि हवा साफ रहे। इस काम मे प्रकृति हमारी बराबर सहायता करती रहती है। फिर भी हमारे मकान ऐसे होने चाहिए, जिनमे हवा खूब आए। सडके साफ रहनी चाहिए। घरो के चारो ओर खुली जगह और बाग-बगीचे होने चाहिए, सिनेमा, स्कूल, पचायत घर, आदि की इमारते ऐसी होनी चाहिए कि भीतर की गदी हवा आसानी के साथ बाहर निकल जाए। कारखानो की चिमनिया काफी ऊची होनी चाहिए, ताकि उनसे निकलने वाली गैस बहुत ऊपर जाकर हवा में मिल जाए। सडी-गली चीजे या मरे हुए जानवर बस्ती मे या बस्ती के आसपास नही पडे रहने चाहिए। हवा को साफ और सार्वजनिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए यह सब करना आवश्यक है।



छींक मार रहा मनुष्य

जिस प्रकार हवा के विना जीना असम्भव है, उसी प्रकार पानी के बिना भी मनुष्य का जीना कठिन है। पानी साफ न मिले, तो उससे भी बहुत-सी बीमारिया फैलती है। इसलिए हर मनुष्य को पीने के लिए साफ पानी मिलना जरूरी है। साफ पानी की पहचान यह है कि वह देखने में चमकीला हो, पीने में स्वादिष्ट हो और उसमे किसी प्रकार की रगत और गध न हो। वहुत-सी जगहो के पानी मे नमक या दूसरे खनिज पदार्थ अधिक घुले होते है। कही-कही गंदी और सड़ी-गली चीजें घुल कर पानी मे मिल जाती है, जिसके कारण पानी में बीमारियों के इतने छोटे-छोटे कीडे पैदा हो जाते है, जो दिखाई तक नही देते। ऐसी जगहो का पानी स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर होता है।

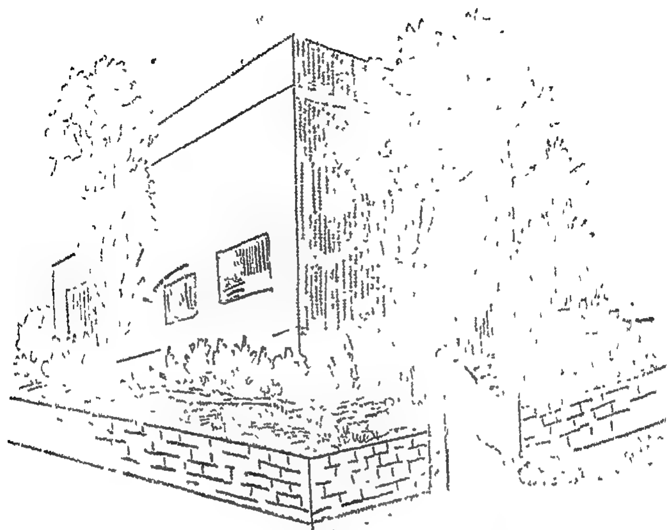
नल का पानी सबसे अच्छा होता है। हाथ के कुए का पानी भी काफ़ी अच्छा होता है, पर नल या हाथ के कुएं सब जगह नही होते। इसलिए अधिकतर लोग कुओ का पानी पीते है। पर बहुत-से कुओ का भी पानी पीने लायक नही होता। आम तौर से, ऐसे कुओ का पानी पीना चाहिए, जो काफ़ी गहरे हो, जो एक निश्चित समय के बाद बराबर साफ किए जाते हो, जिनमे हर महीने पोटाश छोडी जाती हो और जिनकी मुडेर इतनी ऊची हो कि गदगी बाहर से वह कर उनमे न गिरे। कुए के चारो ओर सफाई रखनी चाहिए। अच्छा तो यह है कि कुए को टीन से छा दिया जाए, जिससे हवा के साथ उड़ कर न तो उसमे घास-पात गिर सके और न ही उड़ती चिड़ियो की बीट। कुछ लोगो का कहना है कि पानी को उबाल कर पीना ही सबसे अच्छा है।

इसी प्रकार, खाने की चीजों को साफ रखना भी बहुत जरूरी है। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि खाने की किस चीज का किस चीज के साथ मेल है, और किस चीज का मेल नही है। कौन चीज कितनी खाई जाए, इसका ध्यान रखना भी जरूरी है, क्योकि उनका केवल साफ होना ही काफी नही है। उनमे आपस मे सन्तुलन का होना भी जरूरी है, नही तो स्वास्थ्य बिगडने का डर रहता है—सफाई की इन सब बातो के साथ ही, जहा तक हो सके, रोटी, चावल आदि के साथ हरी सब्जी भी काफी मात्रा मे खानी चाहिए। हरी साग-सब्जी को अच्छी तरह धोकर खाने से पेट की बहुत-सी बीमारिया नही होती। इसलिए उनके गुण और वजन का भी ध्यान रखना चाहिए। चूहे या दूसरे जानवर खाने की चीजो को गदा न करने पाएं। मिठाई की दुकानो और होटलो मे खूब सफाई रहनी चाहिए। दुकानो और होटलो की सफाई पर सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को नजर रखनी चाहिए। उसे

इस बात पर भी रोक लगानी चाहिए कि दूध, मक्खन, तेल, घी, मसाले, आटे और दूसरी चीजों में दुकानदार मिलावट न करें।

घर को हवादार और ऊंची जगह पर बनाना चाहिए, जहां धूप और रोशनी खूब अच्छी तरह पहुंच सके। मकान का रुख पूरब की ओर रहना अच्छा है, जिससे सुबह-शाम घर में धूप पहुंचती रहे। जाडे के दिनों में इससे बहुत आराम मिलता है। कमरों मे दरवाजों के साथ-साथ खिड़कियों का होना जरूरी है और वे आमने-सामने हों, जिससे हवा आर-पार जा सके। कमरों की ऊंचाई कम-से-कम बारह फुट होनी चाहिए। दरवाजे छः फुट ऊंचे और तीन फुट चौड़े अच्छे रहते हैं। कमरों का फर्श ढलुवां हो, जिससे पानी आसानी से बह जाए और सीलन पैदा न हो। मकान के चारों ओर पेड़-पौधे हों, तो बहुत ही अच्छा है। उनसे घर ठंडा रहता है और गर्मी कुछ कम हो जाती है। पर पेड-पौधे घर से बिल्कुल सटे हुए न हों। इससे सीलन पैदा हो जाती है। रसोईघर भी हवादार होना चाहिए, जिससे चूल्हे का धुआं और रसोई की गंध आसानी से बाहर निकल जाए। इसके लिए रसोईघर मे चिमनी जरूर लगानी चाहिए। इक्के-दुक्के मकान का साफ-सुथरा या ढंग से बना होना काफी नहीं होता। मुहल्ले या गांव के सभी मकानों को वैसा ही होना चाहिए। बेढंगे या गंदे घरों में रहने वालों का स्वास्थ्य ठीक नही रहता और उनकी या उनके कारण पैदा होने वाली बीमारियों से साफ मकान वाले भी नही बच पाते। लेकिन अगर घरों के बीच काफी फासला और खुली जगह हो, तो एक हद तक साफ मकान वालों का बचाव हो जाता है।

कुछ बीमारियां ऐसी होती हे, जो इक्के-दुक्के लोगों को ही लगती हे, मगर कुछ ऐसी भी होती हे, जो एक से दूसरे तक फैलती रहती हे। उन्हे छूत की बीमारियां कहते हैं। ताऊन, हैजा, चेचक, दिक, इन्फ्लुएंजा, पीलिया, डिप्थीरिया, खसरा, काली खांसी, गलसुआ, आदि ऐसी ही बीमारियां हे। कोढ़ की बीमारी भी उन्ही मे से एक है, पर वह वर्षों साथ रहने के बाद लगती है। इन्हे रोकने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य के महकमे की देख-रेख के अलावा हर आदमी का सहयोग भी जरूरी है। ऊपर बताई गई छूत की बीमारियों में से अधिकतर ऐसी हे, जो कीड़ो से पैदा होती हैं। बीमार के सांस लेने, खांसने, थूकने और बात करने से उन बीमारियो के कीड़े बाहर निकल कर दूसरों को भी लग जाते हैं। इसलिए रोगी को खांसते समय अपने मुह पर कपड़ा रख लेना चाहिए, और जहां-तहां थूकना नही चाहिए। उसके पेशाब-पाखाना करने की जगह भी तय होनी चाहिए। जहां-तहां पेशाब-पाखाना करने से हैजा, मियादी



एक आदर्श घर

बुखार और पेचिश जैसी बीमारिया फैल सकती है। उनके फैलने मे मक्खियो, गर्द, गदे पानी और खाने की गदी चीजो का भी बहुत हाथ होता है। इसलिए मक्खियो से बचना स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। खाने-पीने की चीजो की सफाई के अलावा खाना खाने से पहले और उसके बाद हाथ और नाखून की, रसोईघर की और बरतनो आदि की सफाई भी बहुत जरूरी है। एक के बरतने की चीजो को, जैसे तौलिया, कघी, साबुन, दात का ब्रुश, आदि दूसरो को नही बरतना चाहिए। आम तौर से जिल्द के रोग इन्ही चीजो से फैलते है।

घर के लोगो को, पडोसियो या गाव वालो को चाहिए कि छूत के रोग की खबर सार्वजनिक स्वास्थ्य के विभाग को तुरन्त दे दें। छूत के रोगो को छिपाना नही चाहिए। इससे रोगी का रोग दूर होने मे भी देर लगती है और उससे मिलने-जुलने वाले भी बीमारी का शिकार हो जाते है। इसलिए हर हालत में—रोगी का इलाज हो रहा हो तब भी—सार्वजनिक स्वास्थ्य के विभाग को रोग की खबर दे देनी चाहिए, जिससे वह दूसरों तक रोग को फैलने से रोकने के उपाय कर सकें।

ऐसे रोगी को या तो घर के किसी सबसे अलग कमरे में रखना चाहिए या उसे छूत के रोगियों के अस्पताल में भरती करा देना चाहिए। रोगी को घर मे अलग रखना आसान नही होता, क्योकि न तो घर में इतने कमरे ही होते है और न परिवार के

लोग इस बात पर कुछ ध्यान ही देते हैं। इसलिए घर से अस्पताल अच्छा रहता है। जो लोग छूत के रोगी से मिलते-जुलते हैं या जो बीमारी फैली जगह से दूसरी जगहों को जाते हैं, उन्हें खास समय तक किसी डाक्टर की देख-रेख में अलग रहना चाहिए। जिस प्रकार हैजा और चेचक का टीका लगवाए बिना और स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र लिए बिना किसी को देश से बाहर नहीं जाने दिया जाता, उसी तरह चेचक आदि छूत के रोग वाले स्थान से किसी को दूसरी जगह नहीं जाने देना चाहिए।

जहां छूत की कोई बीमारी फैली हुई हो, वहां के ऐसे लोगों को भी, जो बीमार न हों, टीका और सूई लगवा कर अपने-आपको रोग के कीड़ों से सुरक्षित कर लेना चाहिए। टीके और सूइयां बिना बीमारी फैले भी लगवाते रहना चाहिए। हैजे की सूई का असर केवल छः महीने तक रहता है। मियादी बुखार की सूई एक साल के बाद लगवा लेनी चाहिए। चेचक से बचने का टीका हर चौथे साल लगवाना चाहिए। परन्तु अगर चेचक कहीं आसपास फैली हो, तो टीका तुरन्त लगवा लेना चाहिए।

अगर रोग पैदा करने वाले कीड़ों को मार दिया जाए, तो रोग का फैलना अपने-आप रुक जाएगा। गर्मी, धूप और कीटनाशक दवाओं से यह काम लिया जा सकता है। जहां छूत का कोई रोग फैल रहा हो, वहां के लोगों को अपने बरतन, बिछौने, तकिए के गिलाफ, तौलिए, आदि खौलते पानी में दस मिनट तक उबाल लेने चाहिए या पांच फी सदी फिनाइल, कारबोलिक या दो फी सदी लाइसोल वाले पानी में एक घंटा डुबा कर रखने चाहिए। ऐसा करने से बीमारी के कीड़े मर जाते हैं। उन्हें मारने के लिए पेशाब-पाखाने और थूकने के बरतनों में भी पांच फी सदी चूना, पांच फी सदी कारबोलिक या दो फी सदी लाइसोल डाल कर उन्हें एक घंटे तक ढक देना चाहिए। पलंग, बिस्तर, कम्बल, आदि को भी झाड़ कर दिन भर धूप में सुखा लेना चाहिए। ऊनी और कीमती कपड़ों को पेट्रोल से धो सकते हैं। कमरों को कीड़ों से बचाने के लिए सफेदी, गंधक का धुआं, फारमेलिन की भाप, आदि काम में लाए जाते हैं। इसी तरह, देह को कीड़े के विष से बचाने के लिए साबुन, स्पिरिट, डेटोल, आदि का इस्तेमाल किया जा सकता है।

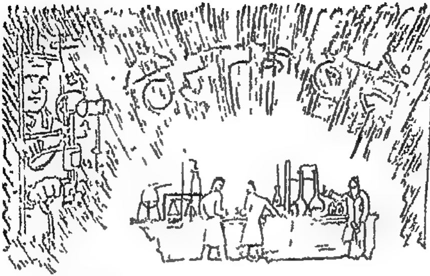
जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग का खास काम है। अगर शुरू में ही रोग का पता लग जाए, तो उसका इलाज करना आसान होता है। इसीलिए अच्छे स्कूलों में समय-समय पर बच्चों के स्वास्थ्य की जांच होती रहती है। बहुत छोटे बच्चों को भी रोग से बचाव के लिए उसी तरह टीके

लगवा लेने चाहिए, जैसे बडों के लगते हैं। यानी हैजे के टीके छः-छः महीने पर, मियादी बुखार के एक-एक साल बाद और चेचक के हर चौथे साल। गर्भवती स्त्रियों के इलाज मे बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। बच्चा होने से पहले किसी डाक्टर से समय-समय पर सलाह लेते रहना चाहिए। गर्भवती स्त्रियों की ठीक से देखभाल न होने के कारण पैदा होने वाली खराबियों को दूर करने के लिए सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग जच्चा-बच्चा या प्रसूति केन्द्रो की व्यवस्था करता है। हमारे देश मे ऐसे केन्द्रो की अभी बहुत कमी है।

सार्वजनिक स्वास्थ्य का अर्थ सबका स्वास्थ्य है, और सबका स्वास्थ्य तभी ठीक रह सकता है, जब सब उसके लिए यत्न करें।



प्रसूता मां और बच्चे की देखभाल



समय पर विजय

आज से लाखों साल पहले कल-कारखाने नहीं थे। लोगों के जीवन में काम बहुत कम थे, फुरसत अधिक थी, इसलिए जो काम होते थे, वे भी धीरे-धीरे फुरसत से होते थे। यही कारण था कि पुराने लोगों को समय के छोटे-छोटे भागों का हिसाब रखने की जरूरत नहीं हुई।

उन दिनों गुफाओं में रहने वाला आदमी किसी ऊंची चट्टान की छाया से ही समय का अनुमान मोटे तौर से लगा लेता था। सुबह जब चट्टान की छाया खब लम्बी होती, तो पुरुष शिकार के लिए निकल जाते, और दोपहर को जब छाया चट्टान के नीचे आ जाती, तो वे शिकार लेकर वापस लौट आते थे। गरज यह कि वे सूरज से ही घड़ी का समय लेते थे।

चट्टानों की छाया से समय का अन्दाज

समय की इकाइयां

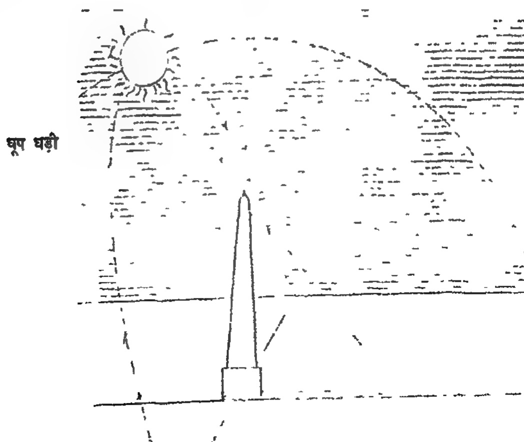
बहुत समय बाद आदमी ने खेती करना सीखा और सिचाई की सुविधा देख कर उसने बडी-बडी नदियो की घाटियो मे खेती की और घर बसाए। तब उसने देखा कि नदियो का पानी एक खास समय पर चढता और एक खास समय पर उतरता है। इससे उसने यह सीखा कि यदि वह पानी को उस समय, जब वह चढता है, गड्ढो और तालाबो मे जमा न कर ले, या खेतो को तुरन्त न सीच ले, तो उसे साल भर सूखे का शिकार होना पडेगा। इसका फल यह हुआ कि उसने बाढ का ठीक-ठीक समय जानने के लिए सूर्य, चन्द्र और ग्रहो की चाल का हिसाब लगाया और समय की इकाइयां तय करने की कोशिश की। समय की सही इकाई तय करने के लिए उसे कोई ऐसा काम बार-बार करना था, जिसके करने में हर बार बराबर समय लगे। इस बात का पता तो आदमी ने पहले ही लगा लिया था कि पृथ्वी अपना एक चक्कर पूरा करने में हर रोज लगभग एक-सा समय लेती है। इससे उसने यह परिणाम निकाला कि सूर्य के एक बार निकलने से दूसरी बार निकलने तक के समय में पृथ्वी एक बार अपनी जगह पर घूम जाती है। उस समय को उसने 'एक दिन' कहना तय किया। सूर्य, चन्द्र और ग्रहो की चाल का और भी बारीकी से हिसाब लगा कर धीरे-धीरे आदमी ने देखा कि पृथ्वी अपनी जगह पर घूमती रहती है और साथ-ही-साथ सूर्य के चारो ओर चक्कर लगाती रहती है। और यह चक्कर $365\frac{1}{4}$ दिन में पूरा होता है। इसलिए उसने उस समय को, जिसमें पृथ्वी

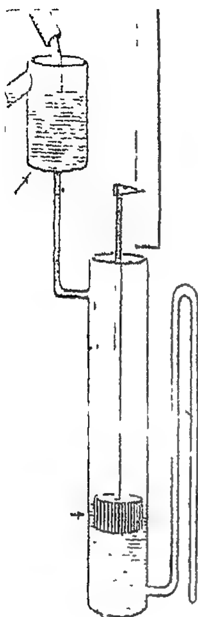
सूर्य के चारों ओर अपना एक चक्कर पूरा कर लेती है 'एक साल' का नाम दिया। फिर, उसने साल को बारह महीनों मे, और एक दिन को, सुबह, दोपहर, शाम और रात मे बाटा।

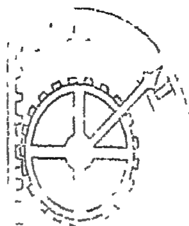
पर जब आदमी की सभ्यता आगे बढी और उसने शहरों मे रहना शुरू किया, तब उसने महसूस किया कि दिन को केवल सुबह, दोपहर, शाम और रात मे बाटने से उसका काम अच्छी तरह नही चलता। इसलिए उसने एक दिन को 8 पहरो मे बाटा और आगे चल कर उसने एक दिन को 24 घटों मे, हर घंटे को 60 मिनट मे, और हर मिनट को 60 सेकड मे बांट दिया। सबसे पहले बाबुल के लोगो ने एक घटे को 60 मिनट मे और एक मिनट को 60 सेकड मे बाटा था। 60 की सख्या चुनने की वजह यह थी कि वह ऐसी छोटी-से-छोटी संख्या है, जो बहुत-सी संख्याओ से पूरी-पूरी बंट जाती है। 60 को दो, तीन, चार, पाच, छ, दस, बारह, पन्द्रह, बीस, और तीस से हम पूरा-पूरा बाट सकते है।

धूप घड़ी—समय की इकाइया तय हो जाने के बाद समय को नापने के साधन सोचे गए। लगभग 3,000 साल पहले धूप घडी बनाई गई। उसके लिए जमीन मे एक डडे को इस तरह गाड दिया जाता था कि वह जमीन की सतह से उस जगह

धूप घड़ी







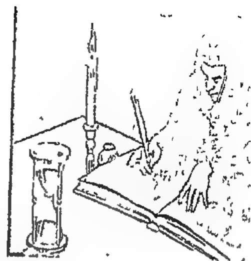


जल घड़ी

के अक्षांश के बराबर कोण बनाता हुआ झुका रहे। ठीक दोपहर को डंडे की छाया छोटी-से-छोटी हो जाती थी। तब छाया के सिरे पर बारह लिख दिया जाता था। फिर उस छाया के बराबर अर्द्धव्यास लेकर एक वृत्त खींचते थे और जिस तरह घड़ी के डायल पर लिखा होता है, उसी तरह वृत्त के बराबर-बराबर बारह भाग करके हर भाग पर क्रम से एक से लेकर ग्यारह तक के अंक लिख देते थे।

लेकिन बादल छा जाने पर या रात होने पर वह घड़ी बेकार हो जाती थी। इसलिए ऐसी घड़ी की जरूरत महसूस हुई, जो सूर्य के भरोसे न रहे। इसके बाद जल घड़ी और रेत घड़ी बनाई गई। जल घड़ी से समय मालूम करने का ढंग यह था कि किसी बरतन के पेंदे में एक बहुत छोटा-सा छेद करके उसमें पानी भर दिया जाता था और बरतन को किसी ऊंची जगह पर इस प्रकार रख दिया जाता था कि छेद ढके नहीं और उससे बूंद-बूंद पानी टपकता रहे। उसके ठीक नीचे एक दूसरा छिछला बरतन रख दिया जाता था, जिसमें धीरे-धीरे एक ही गति से पानी टपकता रहता था। नीचे वाले बरतन में पानी की सतह की ऊंचाई एक बंधी हुई गति से धीरे-धीरे बढ़ती रहती थी, जिसे देख कर समय की नाप की जाती थी। आगे चल कर जल घड़ी में बहुत-से सुधार किए गए। जैसे नीचे के बरतन को बेलन के आकार का बना कर उसमें टपकते हुए पानी की सतह पर लकड़ी का एक पुतला तैरा दिया जाता था। पुतले का हाथ बरतन की दीवार पर रहता था। उस दीवार पर ऊपर से नीचे तक निशान बने होते थे। बरतन में पानी बढ़ने के साथ-साथ पुतला ऊपर उठता जाता था और उसका

हाथ धीरे-धीरे एक के बाद दूसरे निशान पर पहुचता जाता था। इस तरह पुतले का हाथ घडी की घंटे वाली सुई का काम करता था।


रेत घड़ी

कहा जाता है कि यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अफलातून ने जल घड़ी मे एक ऐसी सीटी लगाई थी, जो रोज़ सुबह 4 बजे बज उठती थी। सीटी की आवाज सुन कर उसके शिष्य पढने के लिए ठीक समय पर जाग जाते थे।

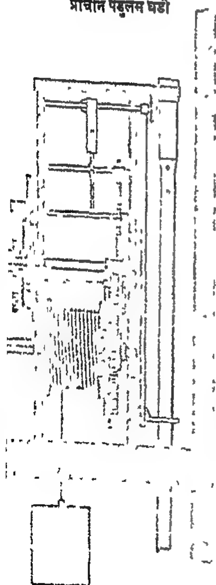
अठारहवी सदी तक जल घडियो का उपयोग बडे पैमाने पर होता था। वे सस्ती थी और उनके अन्दर पेचीदा पुर्जे न होने से उनकी मरम्मत आसानी से हो सकती थी। बढिया प्रकार की जल घडियों मे लीवर लगे थे, जो हर एक घटे के बाद धातु की एक गोली नीचे गिरा देते थे और यह गोली नीचे रखी हुई एक घटी से टकरा कर टन की आवाज पैदा करती थी।

रेत घड़ी—समय के छोटे-छोटे भागो को नापने के लिए रेत घडी भी बनाई गई। रेत घडी डमरू की शक्ल की और कांच की बनी होती थी। बीच का हिस्सा एकदम पतला होता था—इतना पतला कि ऊपर और नीचे के हिस्सो के बीच एक बहुत पतली नली भर रह जाती थी। ऊपर वाले औधे हिस्से मे रेत भर दी जाती थी, जो उस नली से होकर निचले हिस्से मे गिरती रहती थी। इस तरह ऊपर की कुल रेत एक खास समय के भीतर घड़ी के निचले हिस्से मे पहुच जाती थी। यूनानी लोग उस रेत घडी से जेब घडी का भी काम लेते थे। सभा-सोसायटी मे भाषण देने वाले को रेत घड़ी से नाप कर एक या दो 'रेत' का समय दिया जाता था। जहाज की रफ्तार नापने के लिए या लम्बी दौड का समय मालूम करने के लिए भी रेत घड़ी इस्तेमाल की जाती थी। रेत घड़ी थी तो काम की चीज, लेकिन उसमे सबसे बडी कमी यह थी कि उससे समय का एक छोटा-सा हिस्सा ही नापा जा सकता था।


मोमबत्ती की घड़ी से समय की माप

मोमबत्ती से भी समय नापने का एक तरीका निकाला गया था। मोमबत्ती पर नीचे से ऊपर तक बराबर-बराबर की दूरी पर निशान बना दिए जाते थे। मोमबत्ती के एक निशान से दूसरे निशान तक जलने मे लगभग बराबर समय लगता था, इस तरह जले हुए भागो को गिन कर समय की नाप की जाती थी। परन्तु हवा के झोको और दूसरे कारणो से भी मोमबत्ती के जलने की रफ्तार घट-बढ जाती थी। इसलिए मोमबत्ती की घडी से समय की माप हमेशा सही नही होती थी।

कलपुर्जों वाली घड़ी—सन् 1000 से 1800 तक के समय को यूरोप मे मध्य युग कहते हैं। उस युग के गिर्जाघरो मे पादरियो को बहुत-से नियम-कायदो में बंध कर जीवन बिताना पडता था। इसलिए वक्त की पाबन्दी के लिए घड़ी का प्रयोग सबसे पहले गिर्जाघरो में शुरू हुआ। यूरोप में तेरहवी सदी मे इस तरह की पहली घड़ी मार्को पोलो के साथ ईरान से इटली गई थी। तब उसे देख कर वहा पादरियो ने घडिया बनानी शुरू की। ईरान मे इस तरह की घड़िया पहले से बनती थी।


प्राचीन पेंडुलम घडी

इस तरह की पहली घड़ी कमानी से नही, बल्कि लटकते हुए बाट के जोर से चलती थी। एक बेलन पर लिपटी रस्सी के निचले छोर पर एक बाट बंधा रहता था। वह बाट अपने वज़न की वजह से धीरे-धीरे नीचे सरकता जाता था और उसके साथ-साथ बेलन भी घूमता जाता था। बेलन से दातेदार पहिए जुडे होते थे, जो बेलन के साथ-साथ हरकत करते थे। उन्ही पहियो से जुडी हुई एक सूई डायल पर चलती थी, और समय बतलाती थी। घडी बनाने का यह ढग यूरोप वालो ने ईरानियो से सीखा था।

पर उस घडी मे खराबी यह थी कि बाट ज्यो-ज्यो नीचे सरकता जाता था, त्यो-त्यो उसके नीचे गिरने की रफ्तार बढती जाती थी। इसलिए घडी तेज चलने और गलत समय देने लगती थी। बाद में उस खराबी को दूर करने के लिए उसमें 'एस्केपमेंट' नाम का एक पुर्जा लगाया गया, जिसकी मदद से घड़ी की चाल एक-सी

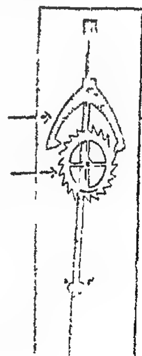


गैलीलियो द्वारा पेंडुलम के सिद्धान्त का 1583 में आविष्कार

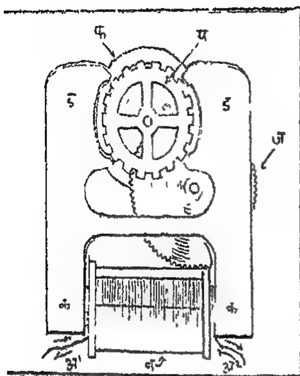
रहने लगी। उन घडियो के पुर्जे भारी-भरकम होते थे और उन्हे अक्सर लोहार ही ठोक-पीट कर तैयार करते थे। मिसाल के लिए, सन् 1380 मे बनी पेरिस की एक घड़ी मे लटकने वाले बाट का वजन 250 सेर था और व्यास एक फुट। उससे चलने वाले दातेदार पहियो का व्यास डेढ फुट था। वह घडी 500 वर्ष तक पेरिस की जनता को सही समय वताती रही थी, और वह पेरिस के सग्रहालय मे आज भी मौजूद है।

पेंडुलम वाली घड़ी—आजकल की दीवार घडी की चाल को साधने के लिए एक लटकन का उपयोग किया जाता है, जिसे पेडुलम कहते हैं। लगभग 400 साल पहले यूरोप मे दूरबीन का रिवाज चलाने वाला गैलीलियो नामक वैज्ञानिक इटली मे पीसा नगर के एक गिर्जे मे प्रार्थना करने गया। उस गिर्जे की छत से झाड-फानूस के लैम्प लटक रहे थे, जो हवा से इधर-उधर झूल रहे थे। उसने अन्दाजा लगाया कि लैम्प को इधर से उधर झूलने मे बरावर समय लग रहा था, चाहे झूलने की जगह का विस्तार कम हो या ज्यादा। इस पर गैलीलियो ने अपने अन्दाजे की सचाई परखने के लिए अपने हाथ की नाडी की चाल से लैम्प के झूलने का समय नापा और उसने पाया कि उसका अन्दाजा विल्कुल सही था। गैलीलियो की इसी खोज की वुनियाद पर पेडुलम वाली घडी की ईजाद हुई। वाद मे घडी के दातेदार पहियो को हरकत देने के लिए लटकने वाले बाट की जगह कमानी का उपयोग किया जाने लगा और घड़ी की चाल को एक-सा वनाए रखने के लिए एस्केपमेंट के साथ पेंडुलम लगाया गया।

झूलता हुआ पेडुलम जब एक खास जगह पहुचता है, तब उसके सिरे पर लगा एस्केपमेंट का पहिया लगर की पकड से छूट कर केवल एक



पेंडुलम घड़ी को कैसे चलाता है



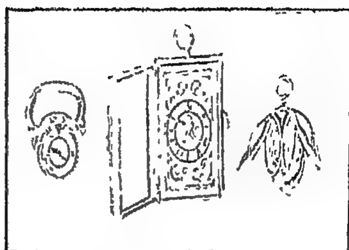
बिजली की घडी का भीतरी भाग

दांत आगे खिसक कर रुक जाता है और जब पेंडुलम द्वारा उसी जगह पहुंचता है, तब एस्केपमेंट का पहिया लंगर से छूट कर फिर एक दांत आगे खिसक जाता है। पेंडुलम की लम्बाई इतनी रखी जाती है कि हर एक सेकंड के बाद वह एस्केपमेंट के पहिए को हरकत देता रहे। इस तरह एस्केपमेंट का पहिया हर एक सेकंड के बाद एक-एक दांत आगे खिसकता रहता है। एस्केपमेंट के पहिए का सम्बन्ध दूसरे दांतदार पहियों के द्वारा मिनट और घंटे की सूई से इस तरह बना रहता है कि जब एस्केपमेंट का पहिया 60 बार घूमे, तब मिनट की सूई का पहिया एक बार घूमे, और जब मिनट वाला पहिया 60 बार घूमे, तब घंटे वाली सूई का पहिया केवल एक बार घूमे।

यात्रियों की सुविधा के लिए बाद में जेब घड़ियां और कलाई घड़ियां भी बनीं। उनमें घड़ी की चाल साधने के लिए पेंडुलम के बजाय बालकमानी काम में लाई जाती है। बालकमानी के खुलने और बंद होने से लंगर इधर-उधर हिलता है। लंगर के हिलने से एस्केपमेंट का पहिया एक-एक सेकंड के बाद एक-एक दांता घूमता रहता है। जेब या कलाई की घड़ियों के पहिए भी कमानी की ऐंठन के बल ही घूमते हैं।

बिजली की घड़ी—बड़े-बड़े होटलों या कारखानों में, जहां पचासों दीवार घड़ियां लगी रहती हैं, रोजाना सब घड़ियों में कूक भरना झंझट का काम है। फिर, उन सबकी चाल को एक-सा बनाए रखना भी आसान नहीं है। इसलिए अब अक्सर उन जगहों में बिजली से चलने वाली घड़ियां लगाई जाती हैं। बिजली की घड़ी में कमानी और एस्केपमेंट लगाने की जरूरत नहीं होती, और न उसमें पेंडुलम और लंगर ही होते हैं। इसीलिए चलते समय उनमें टिक-टिक की आवाज नहीं होती। उनके अन्दर बिजली की मोटर लगी रहती है। मोटर के घूमने की रफ्तार इस बात पर निर्भर होती है कि ए० सी० बिजली एक सेकंड में कितनी बार अपनी दिशा बदलती है। जब तक उसकी दिशा बदलने की रफ्तार एक-सी रहती है, तब तक घड़ी की चाल भी एक समान रहती है। बिजली से घड़ी को चलाने में बिजली का खर्च भी बहुत कम होता है। एक यूनिट में घड़ी महीनों चल सकती है। एक यूनिट बिजली की कीमत 25-30 नए पैसे होती है।

कुछ अद्‌भुत घड़िया

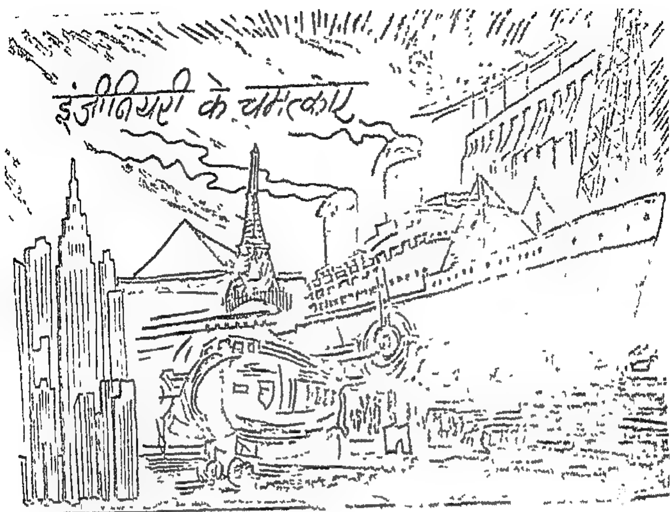


बड़े आकार की घडिया अक्सर बिजली से चलाई जाती है। उदाहरण के लिए, लिवरपूल नगर मे 220 फुट ऊंची मीनार पर एक बहुत बडी घड़ी लगी हुई है, जिसके डायल का व्यास 25 फुट है। वैसी ही चार घडियां मीनार के चारो ओर लगी है। डायल पर लिखे अक करीब-करीब एक-एक गज लम्बे है। सूइयो की लम्बाई 14 फुट और उनके बीच की चौड़ाई 3 फुट है। भीतर के कल-पुर्ज़ों समेत घडी का वजन 50 मन है। प्रतिदिन 10 बजे दिन को ग्रीनविच की वेधशाला से उस घडी का समय मिलाया जाता है। वह घडी इतने कुशल कारीगर ने तैयार की है कि हफ्ते भर मे उसके समय मे केवल दो सेकड का अन्तर पडता है।

जमीन पर लिटाई हुई शायद सबसे बड़ी घडी दक्षिण अफ्रीका के रैण्ड हवाई अड्डे पर है। उसके डायल का व्यास 30 फुट है। मीलो ऊचाई पर उड़ते हुए हवाई जहाज से घडी के डायल पर आसानी से समय देखा जा सकता है।

समय का सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेधशालाओ मे क़ीमती यन्त्र लगे रहते है। वहा दूरबीन की सहायता से आसमान के सितारो को देख कर ठीक-ठीक समय मालूम किया जा सकता है। फिर, उसी समय के अनुसार लोग अपनी घड़ियो का टाइम सही करते है। रेडियो द्वारा दिन मे कई बार सही समय का ऐलान किया जाता है।

चार-पाच सौ साल पहले हमारे देश मे भी विद्वानो ने जयपुर, वाराणसी, दिल्ली, आदि मे समय की सही जानकारी प्राप्त करने लिए वेधशालाए बनाई थी। दिल्ली के जन्तर मन्तर मे लगी धूप घडी और दूसरे यन्त्र अब भी ठीक हालत मे मौजूद है।



(1) स्वेज़ नहर

एशिया और अफ्रीका के महाद्वीप जहा पहले कभी एक-दूसरे से जुडे हुए थे, वहां अब एक बहुत बडी नहर है। उस नहर को स्वेज नहर कहते है। वह भूमध्यसागर को लाल सागर से जोडती है। पर स्वेज नहर सिंचाई की नहर नही है, वह यूरोप और एशिया के बीच जहाजो के आने-जाने का रास्ता है।

पुराने जमाने मे जब स्वेज नहर नही थी, यूरोप के व्यापारी जहाज पूरे अफ्रीका का चक्कर लगा कर भारत आते थे। पर स्वेज नहर के खुल,जाने के बाद यूरोप और दक्षिण एशिया के बीच की दूरी बहुत कम हो गई है। अब भारत आने के लिए जहाजो को अफ्रीका का चक्कर नही लगाना पडता और इस नहर के कारण जहाजो का रास्ता पहले से 5,000 मील कम हो गया है।

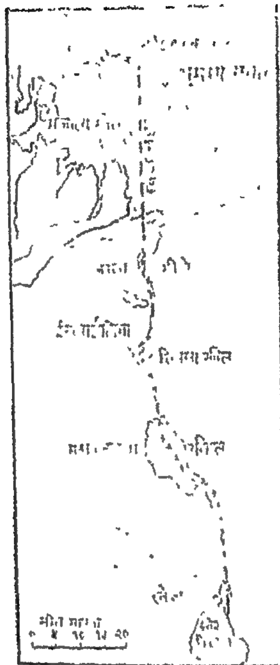
स्वेज नहर के किनारे एक जगह तांबे की एक बहुत बडी मूर्ति खडी है। वह मूर्ति एक फ्रांसीसी राजदूत और इंजीनियर की है, जिसका नाम लेस्सप्स था। लेस्सप्स ने ही आजकल की स्वेज नहर का नक्शा बनाया था और उसी ने खुदाई की देख-रेख की थी। उसी ने इस काम के लिए एक स्वेज कम्पनी भी बनाई थी। लेस्सप्स की मूर्ति

की दाहिनी भुजा दक्षिण की ओर उठी हुई रास्ता बताती रहती है। उस मूर्ति के नीचे फ्रेंच भाषा में लिखा है, "सब राष्ट्रों के सामने धरती का द्वार खोल देने के लिए"। सचमुच ही स्वेज नहर के बन जाने से कम-से-कम यूरोप के लोगो के लिए दक्षिण एशिया के देशों के द्वार खुल गए। दक्षिण एशिया में ही भारत जैसा देश था, जिसे 'सोने की चिड़िया' कहा जाता था। इसलिए कोई आश्चर्य नही कि स्वेज नहर के खुलने से यूरोप के लोगों को ऐसा लगा, मानो उनके लिए समूची धरती का द्वार खुल गया हो।



एम० द लेसप्स

यो, स्वेज नहर भूमध्यसागर और लाल सागर को जोडने वाली पहली नहर नही है। तिजारत के लाभ के लिए इन दोनों सागरो को जोडने का विचार सबसे पहले आज से चार हजार साल पूर्व मिस्र के सम्राट् ऐसोस्त्रिस को सूझा था। बडी मेहनत और काफी लागत से उसने यहा पहली नहर खुदवाई थी। सदियो तक उस जमाने के बडे-से-बडे जहाज उस नहर से दोनो सागरो के बीच आते-जाते रहे। फिर जब मिस्री सभ्यता की अवनति का समय आया, तब देख-रेख न हो सकने के कारण ऐसोस्त्रिस की खुदवाई नहर मे मिट्टी भर गई। उसके बाद ईरानियो का जमाना आया। ईसा से पाच सौ साल पहले ईरान के सम्राट् दारा ने मिस्र को फतह किया। दारा ने उस नहर को फिर से ठीक कराया। सैकडो बरस दारा की बनवाई नहर से जहाज आते-जाते रहे।



स्वेज नहर का चित्र

ईरानियो का भी जमाना खत्म हुआ। सातवी सदी ईसवी में अरबो ने मिस्र को फतह किया। खलीफा उमर ने नए सिरे से जांच-पड़ताल करा कर वहां एक नहर खुदवाई, जो सदियो तक काम देती रही। अरबो का भी दौर समाप्त हुआ। नहर मे फिर मिट्टी भर गई। फ्रांसीसियो ने खलीफा उमर की नहर को ही साफ करा कर और अधिक चौड़ा करके उसे स्वेज नहर का नाम दिया।

13वी और 14वी सदी में तुर्की का साम्राज्य शक्तिशाली हो गया और पश्चिम यूरोप के लिए तुर्की से लेकर भारत आदि आने-जाने का रास्ता बंद हो गया। तब कोलम्बस और वास्को-दे-गामा जैसे यूरोप के साहसी नाविक भारत पहुचने के लिए नया रास्ता खोजने निकले। वास्को-दे-गामा अफ्रीका का चक्कर लगा कर 20 मई, 1498 को भारत के मलाबार तट पर पहुचा, और मलाबार

के राजा जमोरिन का पत्र लेकर अपने देश पुर्तगाल लौट गया। उसके बाद अफ्रीका के किनारों का पूरा चक्कर काट कर यूरोप से दक्षिण एशिया को जहाज आने-जाने लगे।

पर वह रास्ता आसान नही था। एक तो आठ-नौ हजार मील की दूरी तय करना कठिन काम था, दूसरे अफ्रीका के किनारो पर यूरोप के समुद्री लुटेरे, जहाज लिए, जगह-जगह घूमते थे। हमले का डर बराबर बना रहता था। इसलिए यूरोप के लोगो ने यह सोचना शुरु किया कि जो हो, उन्हें अब लाल सागर के रास्ते भारत आदि पहुंचने का रास्ता निकालना ही पड़ेगा।

लेस्सप्स फ्रास के राज-प्रतिनिधि की हैसियत से मिस्र आया। उसने धरती को फिर से काट कर स्वेज नहर बनाने का नक्शा तैयार किया। 1854 में उसने अपनी योजना मिस्र के बादशाह सईद पाशा के सामने रखी और उसके लिए धन मांगा। सईद पाशा ने स्वीकार कर लिया। सईद पाशा के अलावा फ्रास के धनी व्यापारियों ने भी इस काम में कुछ धन लगाने का फैसला किया।

बादशाह सईद पाशा



1858 में काम शुरू हो गया। उन दिनो खुदाई की वैसी मशीनें नही थी, जैसी आजकल है। सारा काम हाथ से ही करना पडता था। मीलो दूर जाकर नील नदी से पानी ढोकर मजदूरो के लिए लाना पड़ता था। शुरू में मिस्र के वादशाह ने नहर खोदने के लिए 25,000 मजदूर नियुक्त किए थे, जिन्हे हर तीसरे महीने वदल दिया जाता था। उन्ही तीन महीनो मे अनेक मजदूर कडी धूप, सख्त मेहनत और प्यास के शिकार होकर प्राण गवा देते थे। दस साल की लगातार मेहनत के वाद नहर तैयार हुई। उन दस वरसो मे लगभग 1,20,000 मिस्री मजदूरो ने इस काम में अपने प्राण गवाए। एक अग्रेज लेखक ने लिखा है कि अगर मिस्र के मजदूरों और कारीगरो ने गुलामो की तरह वेगार न की होती, तो दुनिया को अभी 50 वरस और स्वेज नहर की प्रतीक्षा करनी पडती। स्वेज नहर को बनाने मे लगभग 23 करोड रुपये खर्च हुए, जिसमें से आधा मिस्र ने दिया। 17 नवम्बर, 1869 के दिन नहर का उद्घाटन हुआ। इस अवसर को शानदार तरीके से मनाने पर मिस्र ने भारी रकम खर्च की।

आज स्वेज नहर 100 मील लम्बी और 26 फुट गहरी है। चौड़ाई पेदी मे 72 फुट, और ऊपर 190 से 328 फुट तक है।

एशिया और यूरोप के वीच सवसे निकट का रास्ता होने के कारण यूरोप के सभी देश स्वेज नहर पर अधिकार करने की कोशिश करते रहे है। शुरू मे स्वेज नहर की मालिक 'स्वेज कम्पनी' पर मिस्र और फ्रांस का मिला-जुला अधिकार था। आगे चल कर ब्रिटिश सरकार ने मिस्र के वादशाह इस्माइल पाशा को लगभग सवा पांच करोड रुपये देकर स्वेज कम्पनी के सारे मिस्री हिस्से खरीद लिए। इसके वाद स्वेज कम्पनी पर ब्रिटेन और फ्रास का अधिकार हो गया। जहाजो के आने-जाने का भाडा वसूल करके स्वेज कम्पनी भारी मुनाफा उठाने लगी। पर उस मुनाफे मे से मिस्र को कुछ भी नही दिया जाता था। मिस्र के लोगो को यह वात वहुत खटकी, क्योकि मिस्रियो की ही कुर्वानी से स्वेज नहर वनी थी। इसलिए ब्रिटिश और फ्रासीसी सरकारे हमेशा मिस्र मे ऐसे आदमी को शासक वनाए रखने की कोशिश करती, जो उनके इशारो पर चलता रहे। पर मिस्री जनता इस स्थिति से तग आ गई, और 1955 में कुछ देशभक्त सैनिक अफसरो ने उस समय के शासक शाह फारूक को गद्दी से उतार दिया। राजशाही के स्थान पर लोकतन्त्री सरकार कायम हो गई। थोडे अरसे वाद कर्नल नासिर मिस्र के राष्ट्रपति चुने गए।

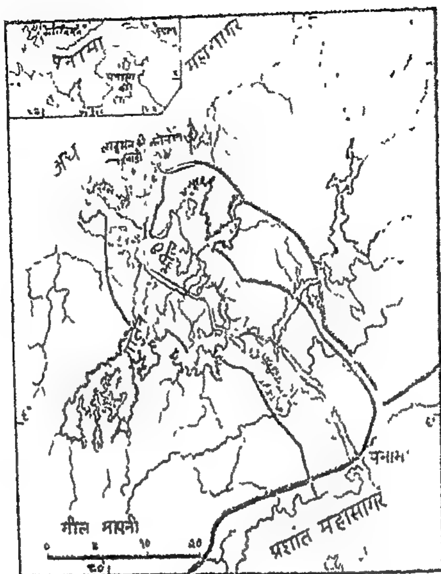
कर्नल नासिर ने राष्ट्रपति होते ही मिस्र की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयत्न शुरू किए। उन्होंने ऐलान किया कि स्वेज नहर मिस्र की सम्पत्ति है। साथ ही, उन्होंने ब्रिटेन और फ्रांस को उचित मुआवजा देने का भी वचन दिया। पर ब्रिटेन और फ्रास इस बात को सहन न कर सके। उन्होंने इजराइल के साथ मिल कर मिस्र पर हमला कर दिया। सारी दुनिया के स्वतन्त्रता प्रेमियों ने इस हमले का विरोध किया। अन्त मे, सयुक्त राष्ट्र संघ में सवाल पेश हुआ, और सभी राष्ट्रों के दबाव से ब्रिटेन और फ्रास मिस्र से अपनी फौजे हटाने पर मजबूर हो गए।

अब स्वेज नहर की मालिक मिस्र की जनता है।

(2) पनामा नहर

अमरीका की पनामा नहर ससार की सुप्रसिद्ध नहरो मे है। वह उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के बीच पनामा थल-सधि पर बनी है, और प्रशान्त महासागर को अटलांटिक महासागर से जोडती है। पनामा नहर के बनने से पहले उत्तरी अमरीका के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे की ओर जाने वाले जहाजो को दक्षिणी अमरीका का पूरा चक्कर लगाना पड़ता था। इस प्रकार सफर बहुत लम्बा हो जाता था और खर्च अधिक पड़ता था। साथ ही, रास्ते मे केपहार्न के पास भयानक तूफानो से टक्कर होती रहती थी। पनामा नहर बनने से पहले सभी जहाज अमरीका पहुचने के लिए मैगलन थल-संधि से गुजरते थे। मैगलन थल-सधि मे बर्फ जमी होने के कारण कभी-कभी जहाज उसमे फस जाते थे और उन्हे बडी कठिनाइयो का सामना करना पड़ता था।

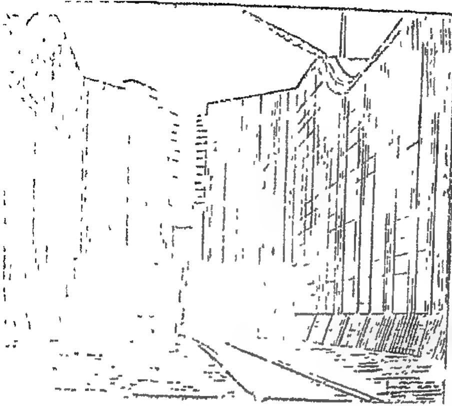
पनामा नहर का निर्माण इंजीनियरी का एक चमत्कार माना जाता है। नहर सम्बन्धी इंजीनियरी की वह, निश्चय ही, एक अद्‌भुत करामात है। कारण यह है कि जिस पनामा थल-सधि की भूमि पर वह बनी है, उसकी सतह बेहद नाहमवार है। बीच के भाग मे क्यूलेब्रा की पहाड़िया है, जो काफी ऊची और लगभग तीस मील लम्बी है। इसके अतिरिक्त, जहां से नहर बनानी थी, वहां चैग्रेस नाम की एक नदी बहती थी।



पनामा नहर का चित्र

पर आदमी की बुद्धि और इंजीनियरी के कौशल ने सब कठिनाइयो को पार कर लिया। पहले तो यह निश्चय किया गया कि स्वेज की तरह पनामा नहर की सतह सब कही एक-सी नही रखी जाएगी। और दूसरे यह कि चैग्रेस नदी पर दो मजबूत बाध बना कर उस नदी को क्यूलेब्रा की पहाडी पर चढाया जाएगा। पहले निश्चय का फल यह हुआ कि नहर की सतह सब कही एक-सी रखने में जो भारी खुदाई करनी पडती, उसकी मेहनत और उसका खर्च बच गया, हालाकि फिर भी क्यूलेब्रा की पहाडियो को कही-कही 500 फुट तक गहरा काटना पडा। दूसरे निश्चय का फल यह हुआ कि पहाडी प्रदेश के ऊचे भाग में चैग्रेस नदी ने न केवल एक 23 $\frac{1}{2}$ मील लम्बी और विस्तृत झील का रूप धारण कर लिया, बल्कि वह पनामा नहर का मध्य भाग भी बन गई। नहर के इस मध्य भाग की सतह नहर के दोनो सिरो की सतहो से 85 फुट ऊची है। इस झील को गातुन झील कहते हैं।

चैग्रेस नदी पर दो बांध बाधे गए। इनमें से एक को गातुन और दूसरे को गैम्बोआ कहते हैं। इन बाधो के जरिए नदी के बहाव को रोक कर पानी को समुद्र की



गातुन के जल रोकने के फाटक

सतह से 85 फुट की ऊचाई पर जमा कर लिया गया है। स्वय बाध 105 फुट ऊचा है। इसमे लोहे के 17 फाटक लगे हैं, जिनसे बरसात की बाढ का पानी झील मे से बाहर निकाल दिया जाता है। चैग्रेस नदी के पानी को बाध कर उसे झील के रूप मे बदल देने के कारण पनामा नहर का पानी कभी कम नही हो सकता। जिस तरह झील मे से फालतू पानी निकालने का प्रबन्ध है, वैसे ही पानी की आवश्यकता से अधिक आमद रोकने का भी प्रबन्ध है।

पनामा नहर की लम्बाई लगभग सवा चालीस मील है। उसे बनाने का काम सन् 1904 मे शुरू हुआ और सन् 1914 मे जाकर खत्म हुआ। नहर को बनाने मे लगभग 50,000 मजदूरो ने काम किया। 24,00,00,000 घनगज मिट्टी खोदी गई, और लगभग 45 अरब रुपये खर्च हुए। पनामा नहर बनाने मे करीब दस साल लगे और अनेक प्रकार की कठिनाइया पेश आई। परन्तु मनुष्य ने अपनी लगन, उत्साह और मेहनत से इन सब कठिनाइयो पर विजय प्राप्त की।

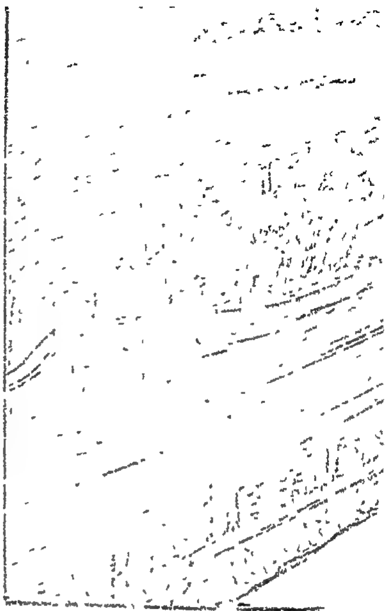
नहर खोदने मे जो सबसे बडी कठिनाई सामने आई, वह यह थी कि नहर के इलाके मे मलेरिया और दूसरे भयानक रोगो के कीडो की भरमार थी। इसका नतीजा यह

गातुन पर फालतू पानी निकालने का बांध



हुआ कि काम करने वाले मजदूर मलेरिया और पीले बुखार के शिकार होकर भारी सख्या में मरने लगे । इस कारण खुदाई का काम जब-तब रुक जाता था। पर बाद मे बीमारी के कीडो से मज़दूरो को बचाने का पूरा प्रबंध कर लिया गया, और काम तेजी से चलने लगा, ऊची-नीची भूमि को नापने और वहा मशीने आदि लगाने मे लगभग तीन बरस लगे।

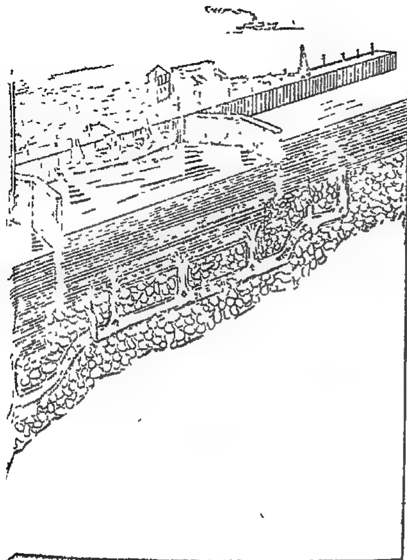
इस तरह, दस साल तक लगातार काम करने के बाद पनामा नहर तैयार हुई, और 15 अगस्त, 1914 को जहाजो के आने-जाने के लिए खोल दी गई। पर उसका बाकायदा उद्घाटन अमरीका के राष्ट्रपति ने 12 जुलाई, 1915 को किया।



जल रोकने के फाटक

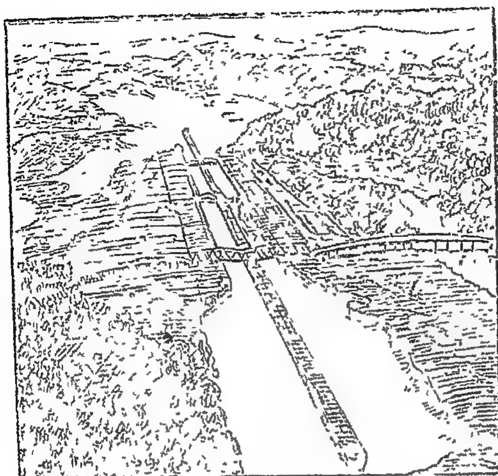
पनामा नहर की अधिक-से-अधिक गहराई 41 फुट है। स्वेज नहर के बाद दुनिया में वह दूसरे नम्बर की नहर मानी जाती है। उसका व्यापारिक महत्व बहुत अधिक है, क्योंकि उसके द्वारा अमरीका के पूर्वी किनारे से पश्चिमी किनारे तक आने-जाने का मार्ग बहुत छोटा और सुगम हो गया है। अब आने-जाने मे पहले से खर्च भी कम लगता है और समय की भी बचत होती है।

पनामा नहर की सबसे बड़ी और आश्चर्यजनक विशेषता यह है कि वह धरती की ऊची सतह पर खोदी गई है, और चैग्रेस नदी के पानी का बहाव रोक और मोड कर उसे ऊपर पहुचाया गया है। इतनी ऊचाई पर जहाजो को चढाने का प्रबध भी कुछ कम विचित्र नही है। अटलांटिक महासागर से प्रशान्त महासागर मे जाने के लिए जहाज पहले लाइमन की खाड़ी मे पहुचते है और वहा से पनामा नहर मे दाखिल होते है। इसके बाद लगभग 6 मील तक पनामा के निचली सतह वाले 500 फुट चौड़े हिस्से मे बेरोक-टोक चलने के बाद वे गातुन बाध के सामने आते है। बाध में जल रोकने के बाडे



कैसे काम करते हैं

(लाक्स बने हुए हैं)। इनके फाटक 65 फुट लम्बे और 7 फुट मोटे हैं और इनकी ऊचाई 47 फुट से 82 फुट तक है। जहाज जब बाड़े के फाटक के पास पहुचने को होते हैं, तब नहर के दोनों तटो के बीच पानी के भीतर एक मोटी और मजबूत जजीर पनबिजली के जोर से उठा दी जाती है। इससे जहाज रुक जाते हैं और पानी रोकने के फाटक से उनके टकराने का खतरा नही रहता। फिर पनबिजली के जरिए ही फाटक खोल दिए जाते हैं और जहाज बाडे मे चले जाते हैं। फिर फाटक बद कर दिए जाते हैं। इसके बाद बाड़े की चार-दीवारियो में बने सूराखो से बाडे मे पानी गिरने लगता है। बाडे मे ज्यो-ज्यो पानी बढता जाता है, त्यो-त्यो जहाज पानी की ऊची होती हुई सतह पर ऊपर उठते जाते हैं। इस प्रकार 30 फुट ऊचे उठ कर वे पहले की तरह ही दूसरे जल-रोक बाडे मे पहुचते हैं और वैसे ही 30 फुट और ऊचा उठते हैं। अन्त मे इसी तरह तीसरे बाडे मे पहुच कर वे नहर की निचली सतह से 85 फुट ऊचा उठ कर गातुन झील में पहुच जाते हैं। बाडो के अन्दर जहाज अपने इजिनो का उपयोग नही करते, क्योंकि उससे जहाज के नहर के फाटको से टकराने का डर रहता है। इसलिए जहाजो को किनारे की पटरी पर चलने वाले रेल के इजिन खीचते हैं। इस काम को दो से लेकर आठ तक इजिन करते हैं। झील मे फिर जहाज अपनी साधारण चाल से चलने लगते हैं। $23\frac{1}{2}$ मील लम्बी झील के अन्तिम सिरे पर पहुच कर जहाजो को दो जल-रोक बाडो द्वारा फिर नहर की नीची सतह पर उतारा जाता है और वे आठ मील चल कर प्रशान्त महासागर मे पहुच जाते हैं। जल-रोक बाडों द्वारा जहाज को नीचे उतारने या ऊपर चढाने की क्रिया सचमुच ही अद्भुत है।



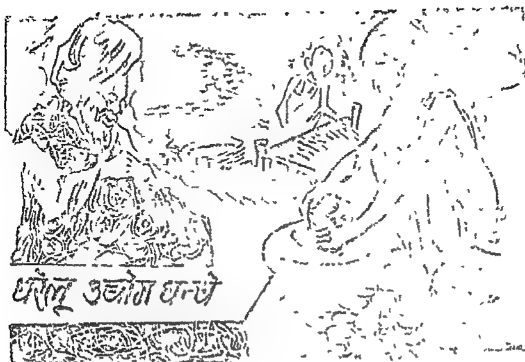
पनामा नहर

पनामा नहर के बनने मे कितने ही ठेकेदारो का दिवाला तक निकल गया। पहले नहर बनाने का ठेका एक फ्रासीसी कम्पनी ने लिया था, जो मजदूरो मे भयकर बीमारी फैलने, रुपये का उचित प्रबध न होने और कर्मचारियो द्वारा गबन किए जाने के फलस्वरूप दिवालिया हो गई। उसके बाद एक दूसरी फ्रासीसी कम्पनी को ठेका दिया गया। पर उसे भी सफलता नही मिली। तब अन्त मे नहर बनाने का काम अमरीका की सरकार के सुपुर्द किया गया और अनेक कठिनाइयो के बाद नहर का निर्माण हो सका।

पनामा नहर से अमरीका के व्यापार को बेहद लाभ हुआ है। ससार के जिन देशो का व्यापार अमरीका के पश्चिमी किनारे से होता है, पनामा नहर के कारण उनका बहुत-सा खर्च बच जाता है। युद्ध काल मे तो वह अमरीका के लिए बहुत ही उपयोगी है, क्योकि युद्ध के समय उस नहर से केवल सयुक्त राज्य अमरीका ही लाभ उठा सकता है।

पनामा जिस भूमि पर बनी है, वह मध्य अमरीका के पनामा गणराज्य की है। पनामा गणराज्य पहले कोलम्बिया राज्य का एक भाग था। सयुक्त राज्य अमरीका ने सन् 1904 में लगभग 13 करोड रुपये मे दी-लेसप्स नाम की कम्पनी से नहर के समूचे कारोबार को खरीद लिया। बाद में जब कोलम्बिया से पनामा अलग हो गया, तब सयुक्त राज्य अमरीका ने पनामा राज्य से एक नवीन सधि की, जिसके अनुसार लगभग 3 करोड बीस लाख रुपये पनामा को उसी समय तथा उस तिथि के 9 वर्ष बाद लगभग 8 करोड़ 10 लाख रुपये वार्षिक देना तय हुआ। बाद में 1938 मे एक नई सधि हुई, जिसके अनुसार सयुक्त राज्य अमरीका से लगभग 85 लाख रुपये सालाना नहर के कर के

रूप मे पनामा गणराज्य को प्राप्त होते है। नहर का प्रवन्ध तथा नहर के किनारो पर बसे प्रसिद्ध नगर कोलन और पनामा की सुरक्षा तथा सफाई का प्रबध सयुक्त राज्य अमरीका के हाथ में है। नहर के उत्तर मे करेबियन सागर तथा दक्षिण मे प्रशान्त महासागर है। पनामा नहर के क्षेत्र का शासन एक गवर्नर के अधीन है, जिसे संयुक्त राज्य अमरीका नियुक्त करता है। नियमों के अनुसार वह पनामा गणतन्त्र के अधीन होता है, किन्तु सकटकालीन अवस्था मे सारा प्रबंध सयुक्त राज्य अमरीका के प्रधान सेनापति की आज्ञा के अनुसार चलता है। नहर के दोनो किनारो पर बडी-बडी कम्पनियों को इमारते वनवाने की आज्ञा दे दी गई है, जिससे जमीन के किराए के रूप मे हर साल काफी बडी रकम मिल जाती है। किनारो की कुछ जमीन खेती के लिए भी किसानों को किराए पर दी जाती है। पनामा गणतन्त्र की आर्थिक उन्नति मे उसने भारी योग दिया है। पनामा नहर का निर्माण प्रकृति पर मनुष्य की विजय का एक जीता-जागता उदाहरण है।



(1)

चमड़े का काम

आज से हजारो साल पहले ही आदमी जानवरो की खाल का उपयोग जान गया था। तब वह गुफाओ मे रहता था और पेट भरने के लिए जानवरो का शिकार करता था। उसी समय उसने अनुभव से यह बात सीखी होगी कि ठड से बचने के लिए जानवरो की खाल पेड़ की पत्तियो और छाल से अधिक उपयोगी है। तभी तो उसने खाल से पोशाक बनाना शुरू किया।

धीरे-धीरे उसने यह भी महसूस किया कि खाल पर लगे बाल बेकार है। इसलिए आगे चल कर उसने उन बालो को खुरचने के लिए पत्थर के औजार बनाए। उस जमाने के बने हुए ऐसे औजार कई जगह पाए गए है।

वेदो मे ठठेरे, जुलाहे, बढई और दूसरे कारीगरो के साथ मोची या चमार का भी वर्णन मिलता है। आगे चल कर महाभारत काल मे चमडे के जूते, मशक, आदि चीजे बनने लगी थी। शेर और हिरन के चमड़े से बने तकिए और गाय की खाल से बनी तलवार की म्याने उस समय खूब प्रचलित थी।

बाइबिल मे एक जगह लिखा है कि "आदम और उनकी पत्नी के लिए ईश्वर ने खाल के कोट बनाए।" बाइबिल में साइमन नाम के एक आदमी का जिक्र मिलता है, जो खाल को कमा कर चमड़ा बनाने का काम करता था। इन बातो से सिद्ध होता है कि आदमी चमडे का उपयोग न-जाने कितने पुराने समय से करता आ रहा है।

खालों को कमाने का आदिम तरीका

ताजा खाल को कड़ी पड़ने या सड़ने से बचाने और उससे मुलायम, मजबूत और टिकाऊ चमड़ा बनाने को 'कमाना' कहते हैं।

आदमी जब गुफाओं मे रह कर जगली जीवन विताता था, तब उसे खाल को 'कमाने' की कला नही मालूम थी। तब वह खाल को केवल धूप मे सुखा कर काम मे लाता था। किन्तु सूखने पर खाल कड़ी हो जाती थी। तब वह उसे नरम बनाने के लिए सुखाते समय हाथ से मलता था और, बाद मे, उस पर जानवरो की चर्बी रगड़ता था। आगे चल कर उसे यह भी पता चला कि मिट्टी की कुछ ऐसी क़िस्में हैं, जिन्हे रगड़ने से खाल मजबूत और टिकाऊ बन सकती है। इसके अलावा कई ऐसे फल हैं, जिनका रस मलने से चमड़ा बिगड़ने नही पाता। उस युग के आदमी ने कुछ ऐसे पेड़ो का भी पता लगाया, जिनकी डाल से टपकने वाले बरसात के पानी के प्रयोग से भी खाल मुलायम और टिकाऊ हो जाती है।

आदिम काल मे खाल 'कमाने' की कला आज की तरह उन्नत नही थी। पर इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि इस कला का जन्म आज से हजारो साल पहले हो चुका था। यूरोप के अजायबघरो मे चमड़े की ऐसी अनेक पोशाकें रखी हैं, जिन्हे रोमन सिपाही पहना करते थे। वे पोशाके बहुत मजबूत और मुलायम हैं। उन्हे देख कर अनुमान होता है कि आज से हजारो वर्ष पहले भी चमड़े का काम काफी उन्नत हो चुका था।

जानवरों की उतारी हुई ताजा खाल को कच्ची खाल कहते हैं। खाल मे कई तहे होती हैं। सबसे ऊपर रोंए या बड़े-बड़े बाल होते हैं। उनके नीचे असली खाल होती है। खाल की सतह दानेदार या खुरदरी होती है। खुरदरी सतह के नीचे एक और सतह होती है, जिस पर नसें होती हैं। उसके नीचे मास की तह होती है।

उतारे जाने के कुछ ही देर बाद खाल खराब होने लगती है। इसलिए कमाने से पहले ताजा खाल मे नमक पोत कर उसे धूप मे सूखने के लिए छोड़ देते हैं। इससे खाल कठोर जरूर हो जाती है, किन्तु कुछ दिनो तक सड़ने या खराब नही हो पाती। खाल इसी दशा मे कसाईखाने से कारखाने या एक देश से दूसरे देशो को भेजी जाती है।

कारखाने मे पहुचने के बाद खाल को बहते हुए पानी में अच्छी तरह और देर तक धोया जाता है। धोने से खाल पर लगा नमक, मैल और खून साफ हो जाता है। साथ ही भीगने से खाल मुलायम भी हो जाती है।

धुलाई के बाद खाल के बालो को साफ किया, जाता है। इस काम मे चूने का घोल इस्तेमाल किया जाता है। अग्रेजी में इस क्रिया को 'लाईमिग' कहते हैं। चूने के प्रभाव से बालो की जडे कमजोर और ढीली हो जाती हैं। फिर खाल को लकड़ी के पटरो पर इस तरह फैला देते हैं कि उनकी बालो वाली सतह ऊपर रहे। उसके बाद कारीगर खुरचने वाले औजारों से बालो को खुरच कर निकाल देते हैं। खुरचने वाले औजार का फल चौडा होता है और उसके दोनो तरफ लकड़ी की मूठ होती है।

ऊन वाली खाल को चूने के पानी में नही डाला जाता। चूने के पानी से ऊन खराब हो जाती है। ऊन को खाल से अलग करने के लिए एक दूसरा तरीक़ा काम मे लाया जाता है। खाल की धुलाई के बाद उसको तहखानों में लटका दिया जाता है। कलो के जरिए इन तहखानो में भाप पहुचाई जाती है, और भाप की नमी से खाल पर जमी ऊन को ढीला किया जाता है। इस तरह खाल को चार या पाच दिन तक तहखाने में रखा जाता है। उसके बाद उसे बाहर निकाल लिया जाता है।

ऊन, रोऐं या बाल को अलग करने के बाद खाल की दूसरी ओर की सतह को खुरचते हैं, ताकि नसो के रेशे, चर्बी और मास के अंग भी निकल जाए। दोनो ओर की सतह के साफ हो जाने पर चमडा तैयार हो जाता है। पर इसके बाद भी उसे किसी घोल या तेजाब से सुधार कर ऐसा बनाया जाता है कि उससे चीजें बन सके। घोल या तेजाब से निकालने के बाद खाल को बहते हुए साफ पानी से फिर धोया जाता है, ताकि घोल का असर भी दूर हो जाए। अब खाल कमाने योग्य हो जाती है। खाल कमाने के चार खास तरीके है।

1 टैनिंग वैज्ञानिक रीति से चमडा कमाने को टैनिंग कहते हैं। बबूल, बलूत, आवला, आदि कई तरह के पेडो की छाल, पत्ती, लकडी और फलो से एक तरह का कसैला रस निकलता है, जिसे 'टैनिक एसिड' या टैनिन कहते हैं। खाल कमाने में इस रस को मुख्य रूप से काम मे लाया जाता है। इसीलिए इस तरह चमड़े के कमाने को 'टैन' करना या 'टैनिंग' कहते हैं। टैनिंग के लिए घोल यानी टैनिन

बनाने के लिए इन पेड़ो की छाल, पत्ती और फलो का निर्यास या रस निकाला जाता है और उसके कड़ेपन के हिसाब से उसकी कई श्रेणिया बना ली जाती हैं। फिर अलग-अलग श्रेणी के रस को अलग-अलग हौजों में भर दिया जाता है। पहले हौज मे हल्का, दूसरे मे कड़ा, तीसरे मे उससे अधिक कड़ा और अन्तिम हौज मे सबसे कड़ा रस भर दिया जाता है। साफ की हुई खाल को पहले सबसे हल्के रस वाले हौज मे डाला जाता है। कई दिनो तक भीगने के बाद उसे दूसरे हौज मे डाला जाता है। फिर तीसरे, चौथे और पाचवें मे। इस तरह खाल को बारी-बारी से हर हौज मे कई दिनो तक भिगोया जाता है। अन्तिम हौज के सबसे कडे रस मे भीगने के बाद उसे निकाल कर धोया और सुखाया जाता है। फिर उस पर भारी-भारी बेलन (रोलर) चला कर उसको समतल और चिकना बनाया जाता है। इन सारे कामो को टैनिंग यानी चमड़ा कमाना कहते हैं।

2. **चमड़े को सफ़ेद करना :** इस काम मे मुख्य रूप से फिटकरी और नमक के घोल काम मे लाए जाते हैं। दस्ताना बनाने का चमडा तैयार करने के लिए उस घोल मे आटा और अडे की जर्दी भी मिलाई जाती है।

3 **सावर का चमड़ा बनाना .** कमाने की इस विधि मे खास तौर से तेल का उपयोग किया जाता है। चूने के पानी मे भिगोने के बाद, यानी लाइमिंग के बाद, खाल को काड नाम की मछली के तेल मे डाला जाता है। फिर पोटाश और सोडे के घोल मे भिगोने के बाद उसे सुखा लिया जाता है।

4 **क्रोम टैनिंग :** खाल कमाने के इस ढग मे प्रधानत 'पोटैसियम बाइक्रोमेट, हाइड्रोक्लोरिक एसिड' का इस्तेमाल किया जाता है। इन चीजो मे खाल को सिझाने के बाद उसे कुछ समय सुहागे के घोल मे रख कर एक निश्चित समय पर निकाल कर रग दिया जाता है। इस ढग से बने चमड़े को क्रोम लेदर कहते हैं।

विभिन्न पशुओ की खालें और उनके उपयोग

विभिन्न प्रकार के चमडे तैयार करने के लिए साप, मगर, भेड, बकरी, हिरन, सूअर, गाय, भैंस, घोडा, गैंडा, आदि अलग-अलग तरह के जानवरो की खाले कमाई जाती हैं। पर सब जानवरो की खाल एक जैसी नहीं होती। सबके गुण और दोष अलग-अलग होते हैं। इसीलिए भिन्न-भिन्न जानवरो के चमडे से भिन्न-भिन्न सामान बनाए जाते हैं। एक ही जानवर के चमडे से हर चीज नहीं बन सकती।

भेड की खाल से बना चमडा अस्तर के काम के लिए बहुत उपयोगी होता है। उससे छोटी-छोटी और सुन्दर चीजे वनाई जाती है, जैसे बटुए, किताबो की जिल्दे, आदि। भेड की खाल से 'टैन' किए हुए भेड के प्राकृतिक रग के चमडे से अधिकतर छोटी-छोटी सुन्दर चीजे वनाई जाती है। गद्दे या स्त्रियो के हाथ-वटुए आदि वडी चीजें वनाने मे उसका उपयोग न करना ही अच्छा होता है। भेड का ऐसा चमड़ा भी मिलता है, जिस पर सूअर, मगर या दूसरे पशुओ की खाल की तरह रग-विरगी छीटे और बनावटे छपी होती है।

वकरे की खाल लगभग भेड की खाल जैसी ही होती है। किन्तु उसके वड़े-वडे टुकडो मे जो बुन्दकिया होती है, वे भेड की खाल के छीटो के मुकाबले मे भद्दी होती है। मोरक्को इसी चमडे से वनाया जाता है।

गाय-बैल की खाल भारी चीजे वनाने के काम आती है, जैसे जूते का तला आदि।

वछडे की खाल का वना और पेडो की छाल से टैन किया हुआ चमडा अपने प्राकृतिक रग मे वढिया वस्तुए वनाने के लिए सवसे अच्छा होता है। हमारे देश मे बछडे की अच्छी किस्म की खाल नही मिलती। अग्रेजी वछड़े की खाल माडेलिंग, शक्लो मे नमूने वनाने, के लिए सवसे अच्छी होती है। वह रंग भी बहुत जल्दी पकडता है। 'विलो काफ' नाम का चमडा जूते और पोर्टफोलियो आदि वनाने के लिए वहुत अच्छा रहता है।

सावर के चमडे की सतह मखमल की तरह चिकनी होती है। ऐनक आदि के शीशे साफ करने और दस्तानो जैसी मुलायम चीजे वनाने के लिए उसका अधिक उपयोग होता है।

स्वेड की सतह सावर के चमडे की सतह से मिलती-जुलती होती है। इस चमडे से छोटे बैग, जते, जाकेट, आदि चीजे वनाई जाती है।

गोह का चमडा स्त्रियो के हैडबैग, स्लीपर, वगैरह बनाने के लिए अच्छा होता है। इससे अधिकतर दूसरे चमडो पर सजावट का काम किया जाता है।

मगर का चमडा वहुत कडा और मजबूत होता है। इसलिए इसके चमडे से ज्यादातर सफरी, सदूक, आदि वनते है।

चमड़ा सूक्ष्म छेदो से भरा होता है। वह सोख्ते की तरह पानी को सोख लेता है। वह बहुत ही मजबूत और एक हद तक लचीला होता है। उसे आसानी से खीचा, ताना और मोड़ा जा सकता है। इन गुणो के कारण चमडे के हजारो उपयोग होते है।

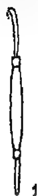
भारत में चमड़े का कलात्मक काम

भारत मे चमड़े का काम न-जाने किस युग से होता आ रहा है। सन् 1925 तक जूते, सूटकेस, जीन और बटुए जैसी चमड़े की बनी आम जरूरत की चीजे हमारे देश मे कई जगह बड़े पैमाने पर तैयार होती रही। उसके बाद सन् 1930 के लगभग चमड़े का एक नए ढंग का कलात्मक या फैंसी काम प्रचलित हुआ। पहले-पहल इस ढग का काम 'विश्वभारती' ने किया। यह एक शिक्षा सस्था है, जिसको रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्थापित किया था। देश के भिन्न-भिन्न भागो से ही नही, बल्कि श्रीलका, नेपाल, कावुल, आदि बाहर के देशो से भी अनेक विद्यार्थी यहा आए और उन्होंने इस कला को सीखा। धीरे-धीरे यह कला एक नया उद्योग बन कर सारे भारत मे फैल गई। दूसरे महायुद्ध के समय हमारे देश मे इसके छोटे-बडे बहुत-से कारखाने खुल गए। उन दिनो इसका व्यापार बहुत उन्नति पर था।

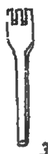
चमड़ा सजाने के ढग और आवश्यक औजार

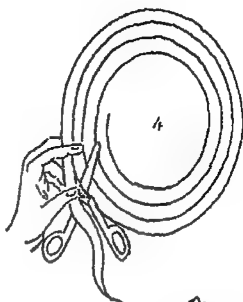
चमड़े को सजाने के लगभग 25 ढग है। हर ढग मे कुछ खास औजारो की जरूरत पड़ती है। सजाने के कुछ आम और जाने-पहचाने ढग ये है (1) माडेलिंग, (2) एप्लिके, (3) प्रिंटिंग, (4) ब्लाइड और गोल्ड टूलिंग (5) पोकर वर्क, (6) स्टेंसिलिंग, (7) पियर्स्ड वर्क, और (8) बटिक वर्क।

माडेलिंग के लिए पेड़ो की छाल से कमाया हुआ बछडे, बकरे या भेड़ का कोमल और प्राकृतिक रग का चमडा ठीक रहता है। चमडा पहले पानी से नरम किया जाता है। फिर जिस चित्र (डिजाइन) को बनाना होता है, उसे चमडे के ऊपर उतार लिया जाता है। इसके बाद एक खास औजार काम मे लाया जाता है, जिसे माडेलर कहते हैं। माडेलर का सिरा चम्मच की शक्ल का होता है। वह लगभग एक इच लम्बा और चौथाई इच चौड़ा होता है। माडेलर आम तौर से इस्पात का बना होता है, जिस पर क्रोमियम या निकल की कलई होती है। उसमे लकडी की एक मूठ लगी होती है।

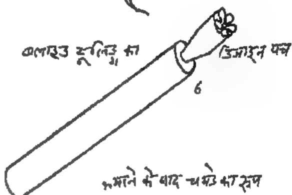

माडेलर
1

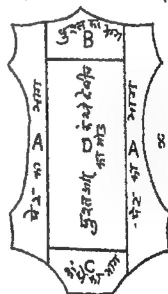

छेद काटने का यंत्र
2


सिलाई का यंत्र
3

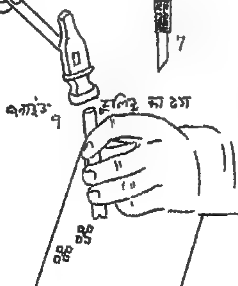

धागा काटने का ढंग
4

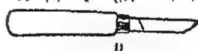

माडेलिङ्ग का ढंग
5


टूलिङ्ग का
डिजाइन यंत्र
6


B
A
D
A
C
8


10


टूलिङ्ग का ढंग
9


11

औज़ार और हाथ का काम

माडेलर की मूठ को दाहिने हाथ से पकडा जाता है और, उसके उभरे हुए हिस्से से चमडे के ऊपर बने हुए नमूने से छूटे चमड़े के सारे बाहरी हिस्से को दबाते जाते हैं। ऐसा करने से नमूना चमड़े पर उभर जाता है।

एप्लिके एप्लिके के काम मे एक चमड़े के ऊपर दूसरे चमड़े के विभिन्न नमूने काट-काट कर लगाए जाते हैं। पहले चमड़े को सजा कर जमीन तैयार कर ली जाती है। उसके ऊपर चमडे के रंग-बिरगे टुकड़े इस प्रकार लगा कर सी दिए जाते हैं कि विभिन्न प्रकार के नमूने बन जाते हैं। सजाने के लिए स्वेड चमडा, बछड़े का चमड़ा या मोरक्को चमडा बहुत अच्छा रहता है।

प्रिंटिंग : धातु या लकडी के ठप्पो द्वारा चमडे पर छपाई करने को प्रिंटिंग कहते हैं। चमडे की छपाई कागज की छपाई की तरह होती है पर चमडे की छपाई के लिए विशेष प्रकार का प्रेस होता है।

ब्लाइंड और गोल्ड टूलिंग यह काम चमडे के ऊपर डिजाइन पच से किया जाता है। डिजाइन पच, सुम्बे की शक्ल का औजार होता है, जिसका निचला हिस्सा नुकीला होने के वजाय गोल, तिकोना या चौकोर होता है। उसके निचले हिस्से में नमूने वने होते हैं। डिजाइन पच को सीधा खडा करके हल्के-हल्के हथौडे से ठोकते हुए उसको वरावर फासले पर खिसकाते रहते है, जिससे चमडे पर बहुत अच्छे-अच्छे नमूने बन जाते हैं। गोल्ड टूलिग का भी काम इसी तरह किया जाता है। लेकिन नमूने छापने से पहले चमडे पर सोने का वर्क लगा दिया जाता है, और डिजाइन पच को आग पर गर्म करके हथौडे से ठोका जाता है। इस प्रकार चमडे पर सुनहरे नमूने वन जाते है। यह ढग अधिकतर जिल्दसाजी के काम मे वरता जाता है।

पोकर वर्क यह जलती हुई गर्म सूई से चमड़े की सतह को खुरच कर किया जाता है। इस काम में इस्तेमाल होने वाली सूई को 'पोकर' कहते हैं। इसके सिरे का व्यास $\frac{1}{8}$ इच होता है, और सूई लकडी की मूठ मे जडी होती है। काम करते वक्त पोकर को गर्म करके लाल कर लेते है और उससे चमडे पर वने हुए डिज़ाइन को खुरचते जाते हैं। इस प्रकार खुरचने से जहा-जहा डिजाइन की रेखाए वनी होती हैं, वहा-वहा का चमडा जल जाता है और वहुत अच्छे नमूने वन जाते हैं।

स्टेंसिलिंग इसमे पहले किसी ऐसे कागज पर नमूने स्टेंसिल कर लेते हैं जो पानी का रग न सोख सके। तव ब्रुश की नोक पर थोडा-थोडा पानी का रग,

पेस्टल कलर, या रोशनाई लगा कर ब्रुश को कटे हुए स्टेंसिल के नमूनों के ऊपर दबाते जाते हैं। इस प्रकार चमडे पर सुन्दर डिज़ाइन बन जाते है।

पियर्स्ड वर्क . इसमे नमूने को कागज पर नहीं, बल्कि चमडे पर ही स्टेंसिल कर लेते है। फिर तेज चाकू से स्टेंसिल के नमूने को चमडे से काट कर अलग कर देते है। इसके बाद इन नमूनो के नीचे रग-रग के चमडो का अस्तर लगा दिया जाता है। इस तरह विभिन्न रग और शक्ल के सुन्दर डिजाइन तैयार हो जाते है।

बटिक वर्क . कपडे को सजाने की एक विधि है, जो जावा से प्रचलित हुई है। इसमे पिघले हुए गर्म मोम से कपडे के ऊपर विभिन्न डिजाइन और नमूने बना लेते हैं। फिर कपडे को रग लेते है। कपडे पर जहा-जहा मोम लगा होता है वहा-वहां रग नही चढता। बाद मे कपडे को गर्म पानी मे धो लेते है, जिससे कपड़े की सतह पर से मोम धुल जाती है और कपडे पर विभिन्न प्रकार के बेलबूटे बन जाते है।

इसी तरह से चमडे पर भी बटिक का काम किया जाता है। पर इसमें रंग की रोक के लिए मोम इस्तेमाल करने की बजाय गोद इस्तेमाल करते है। पहले चमडे पर नमूने (डिजाइन) बना लेते है। फिर चित्रकारी के ब्रुश से डिजाइन में गोद भर देते हैं। सूख जाने पर गोद अपने आप जहा-तहां से चिटक जाती है। उसके बाद रग को स्पिरिट मे घोल कर डिजाइन के ऊपर लगा देते है। वह रग गोद की चिटकी हुई जगहो मे अच्छी तरह बैठ जाता है। रग करने के बाद पानी से गोद धो देते हैं। तब चिटकी हुई जगहो मे भरे हुए रग से प्राकृतिक डिजाइन बन जाता है। चमडे पर बटिक के काम का आविष्कार शान्तिनिकेतन के श्री सन्तोष कुमार भज ने किया था।

चमड़े के काम के खास-खास औजार ये है कैंची, रापी, बेलन, सगमरमर की सिल या शीशा, सेटस्क्वाएर, माडेलर, ट्रेसर, छेद करने का यन्त्र, परकार, पीतल का फुटा, मूगरा, हथौडा, बटन पच, डाई, डिजाइन पच, पालिश और रग करने के ब्रुश।

उत्पादन का व्यापारिक ढंग

हाथ के औजारो द्वारा किए जाने वाले कुछ साधारण कामो का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। चमडे के काम के अनेक दूसरे ढग भी है। बडे पैमाने पर माल

मशीनों द्वारा तैयार किया जाता है। पर मशीनो का उपयोग कुछ ही कामों मे किया जा सकता है, जैसे छपाई, स्टेंसिल काटना, स्प्रे वर्क तथा पियर्स्ड वर्क मे। व्यापारिक ढंग से माल तैयार करने मे अलग-अलग नाप और शक्ल के चमडे के टुकड़े काटने, रोलिंग करने, कतरन काटने, फैलाने, छेद करने, लोहा करने, पट्टी काटने, पालिश आदि करने के लिए मशीनो का उपयोग होता है।

भारत में चमड़ा और चमड़े की बनी वस्तुएं

चमड़े का काम भारत मे अधिकतर छोटे पैमाने या घरेलू उद्योग के तौर पर होता है। यहा चमड़े के सिर्फ कुछ ही बडे कारखाने हैं। फिर भी भारत की गिनती दुनिया मे सबसे अधिक चमडा पैदा करने वाले देशों मे है। अनुमान है कि चमड़े के लगभग 1 करोड़ से अधिक टुकडे प्रतिवर्ष इस देश मे तैयार किए जाते है। चमड़े के कारखाने के सबसे बड़े केन्द्र कलकत्ता, मद्रास और कानपुर हैं। लगभग 25 करोड रुपये की लागत का चमड़ा हर साल भारत से विदेशो को भेजा जाता है। इसमें अधिकतर चमड़ा जूते बनाने के काम आता है। जूतो के बाद सूटकेस, घोडे के साज़, पेटिया, थैले, पर्स, आदि का नम्बर आता है।

(2) मिट्टी के बर्तन

मिट्टी के बरतन-भांडे और खिलौने बनाने की कला बहुत पुरानी है। मिट्टी के पके हुए बरतन-भाडे और खिलौने आदि, जो नील की घाटी की खुदाई में निकले हैं, उन्हे 13,000 वर्ष पुराना बताया जाता है। मिट्टी में पका कर लाल किए हुए पानी रखने के घड़े भी मिस्र में बहुत-सी जगहो पर पाए गए है। ये रंगे हुए है। इनमें लाल रग के भी है और काले रग के भी। इन पर प्राय. पालिश भी किया

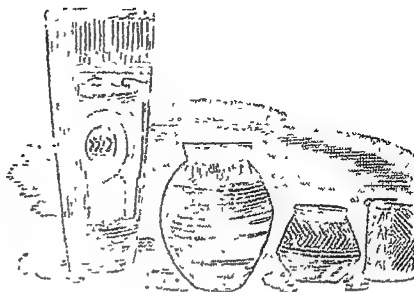

मिस्र के पुराने बरतन

हुआ है। ये ईसा से 5,000–3,500 वर्ष पहले के बने हुए हैं। बेनहसन के भित्ति-चित्रो मे, जो 3,000–1,000 वर्ष ईसापूर्व के हैं, यह भली-भाति दिखाया गया है कि कुम्हार के चाक पर बरतन कैसे बनाए जाते थे और किस तरह उन्हे आवो मे पकाया जाता था। इन चित्रो से पता चलता है कि उस युग मे मिट्टी के बरतन बनाने की कला मिस्र मे काफी उन्नति पर थी। बहुत-सी मूर्तिया, बोतले, तावीज और मिट्टी की दूसरी चीजे, जो सफेद रेत की बनी हुई हैं और जिन पर उम्दा नीली चमकदार पालिश है, मिस्र की पुरानी कब्रो में मिली है। ये चीजे 1,500 वर्ष ई० पू० से कम पुरानी नही बताई जाती। असीरिया और बेबीलोन में मिट्टी की तख्तिया मिली हैं। ये 3,000 वर्ष पुरानी हैं। इन पर वहा के इतिहास की कहानी खुदी है। उम्दा रगी हुई और पालिश की हुई ईंटे, जिन पर अवकाश के समय उभारदार सजावट भी की जाती थी, ईसा से 900 वर्ष पूर्व बनाई जाती थी।

चीन मे भी मिट्टी के चमकदार बरतन बहुत पहले से बलते आए है। चीन के इतिहासकारो के अनुसार ईसा से कोई ढाई हजार साल पहले चीन मे मिट्टी के चमकदार बरतन बनने लगे थे। पहले-पहल हान वश के समय मे पत्थर के भाडे बनाए गए थे। उन दिनो के चीनी कुम्हार अधिकतर बढ़िया मिट्टी का और उन्हे पकाने के लिए अधिक तेज आच का प्रयोग करने लगे थे। इस तरह उन्होंने काच का सामान या घने कणवाले पत्थरो के बरतन बनाने मे सफलता प्राप्त की थी। आखिरकार सातवी सदी मे उन जगहो मे, जहा केओलीन नाम की मिट्टी मिलती थी, कुम्हारो ने पोर्सलेन या 'चीनी मिट्टी' के बरतन बनाने शुरू किए। चूकि चीनी मिट्टी अधिकतर चीन मे ही पाई जाती है, इसलिए मिट्टी के बने हुए अच्छे बरतनो

मिस्र के पुराने बरतन





सुमेर के पुराने वरतन

का नाम 'चाइना-वेयर' या चीनी के वरतन पड गया। 'सिलेडन' नाम के प्रसिद्ध वरतन, जिनका रग सफेदी मायल हरा-नीला होता है, पन्ने के रग को मात करते है। इसी तरह, अन्य कितनी ही तरह के रगों के वरतन वने। उनकी कारीगरी देखते ही वनती है—मुर्गी के अडे के छिलके जितने पतले और खूब चमकदार। रगो और पालिश के हिसाव से उनके अलग-अलग नाम भी पड गए। वैल के खून के रग वाले वरतनो को 'सग डि वोफ' कहा गया। आग की लपट के रग जैसे पोर्सलेन 'आम्वो' कहलाते है। चीनी मिट्टी के वरतन वनाने की यह कला मिग वश (1368–1643) के समय मे चीन मे अपने पूरे निखार पर थी।

भारत मे मिट्टी के वरतन वनाने की कला सिन्धु-घाटी की सभ्यता के युग मे ही काफी उन्नति पर थी। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई में मिले हुए वरतन इस वात के सवूत है। उत्तर भारत मे चमकदार वरतन मुसलमानो के समय मे वनने आरम्भ हुए, पर दक्षिण भारत मे वे मुसलमानो के शासन से भी पहले वनने लगे थे। उत्तर भारत के अनेक स्थानो, कब्रों, मस्जिदों, किलों, आदि की पालिशदार ईंटें इस देश मे मिट्टी के काम की प्राचीन कारीगरी के नमूने है। निजामावाद (आजमगढ) के मिट्टी के काले वरतनों और दिल्ली, खुर्जा, जयपुर, लखनऊ, वम्वई, वेल्लोर, आदि के चमकदार वरतनो की भी अपनी एक अलग विशेषता है। अव मद्रास, वम्वई,



चीन के पुराने वरतन

बंगलोर, दिल्ली, बंगाल, ग्वालियर, आदि में कारखाने खुल गए हैं, जिनमें मिट्टी के बरतन, खिलौने और चीनी मिट्टी की और बहुत-सी चीजें बड़े पैमाने पर बनाई जाती हैं ।

कुम्हार के काम के लिए मिट्टी सबसे महत्त्वपूर्ण कच्चा माल है । सब जगह की मिट्टी एक तरह की नहीं होती, न ही हर मिट्टी में एक-से खनिज पदार्थ होते हैं। अलग-अलग जगहों की मिट्टी भी अलग-अलग तरह की होती है। सफेद, पीली, भूरी, बादामी, आदि कितने ही रंगों की चीनी मिट्टी हमें मिलती है। इन सबकी बनावट और मिलावट एक-दूसरे से अलग होती है।

हर प्रकार की मिट्टी अपने मूल रूप में पत्थर या चट्टान होती है। हवा, आग, पानी और दूसरे मौसमी परिवर्तनों की वजह से पत्थर या चट्टान छीजती रहती है और धीरे-धीरे, युगों के बाद, मिट्टी का रूप धारण कर लेती है। सफेद चीनी मिट्टी में, जो प्राकृतिक मिट्टी का सबसे शुद्ध रूप है, अल्युमिना (वह द्रव्य जिससे अल्यूमिनियम बनता है), सिलिका (एक प्रकार का सफेद खनिज पदार्थ) और थोड़ी मात्रा में अलकली (खार) मिली होती है। दूसरी साधारण मिट्टी में अल्युमिना और सिलिका के अतिरिक्त लोहा, चूना, पोटाश, सोडा, मैगनेशिया और कार्बन मिले होते हैं।

भारत में साधारण मिट्टी से घड़े, कूंडे, सुराही और बिना चमक के मिट्टी के बरतन अब भी वैसे ही बनते हैं, जैसे कि प्राचीन काल में बनाए जाते थे। उन्हें बनाने के तरीके में कोई विशेष अन्तर नहीं आया है।

कुम्हार मैदानों या नदी किनारे की मिट्टी जमा कर लेते हैं। अधिकतर चिकनी और रेतीली दो तरह की मिट्टी की जरूरत होती है। मिट्टी को काम लायक बनाने के लिए कुछ दिन उसे पड़ी रहने देते हैं, क्योंकि ताजा मिट्टी से बनी चीजें बढ़िया नहीं होतीं। छोटे आकार की चीजें बनाने के लिए चिकनी मिट्टी का ही प्रयोग करना चाहिए। कभी-कभी जो चीज बनानी हो, उसके अनुसार चिकनी और बालुई मिट्टी दोनों को मिला कर काम लिया जाता है। यह मिलावट हाथ से भी कर ली जाती है, और पैरों से रौंद कर भी।

कुम्हार का चाक, जिसका आमतौर से भारत में इस्तेमाल किया जाता है, गाड़ी के पहिए की शक्ल का होता है। इसका बीच का भाग एक कीली पर टिका होता है

ग्रौर इसे डंडे के सहारे घुमाया जाता है। दूसरे देशों, ग्रौर कहीं-कहीं भारत में भी, एक दूसरी तरह का भी चाक काम में लाते हैं, जिसे 'पांव-चाक' कहते हैं। 'पांव-चाक', जैसा कि इसके नाम से प्रकट है, पांव मार-मार कर चलाया जाता है। बरतन को चाक पर आकार देने के बाद उसे धूप में सुखा लिया जाता है। बरतन पर नक्काशी, रंगाई, बेलबूटे, आदि बनाने का काम कभी-कभी उसी समय कर लिया जाता है जब वह कुछ-कुछ गीला ग्रौर नरम होता है। बरतन जब बिल्कुल सूख जाता है, तब उसे आवे में पका लिया जाता है। बरतनों को आवे में एक-पर-एक खूब अच्छी तरह जमा कर रख देते हैं। बरतनो के इधर-उधर घास, कंडा, कोयला, आदि ईंधन रख कर आवे को ऊपर से मिट्टी से लेप देते हैं। लेपते समय धुआ निकलने के लिए कुछ सूराख छोड दिए जाते हैं। जब आग लगाई जाती है, तब बरतनो पर सीधे आच पडती है। बरतनो की टूट-फूट ग्रौर उनके टेढे-मेढे हो जाने का यह एक बड़ा कारण है। आवे मे दो-तीन घंटे आग दी जाती है, यहा तक कि उसका भीतर का भाग लाल पड़ जाता है। आग देने के बाद आवे को ठंडा होने के लिए छोड़ दिया जाता है। एक-दो दिन बाद उसमे से बरतन निकाल लिए जाते है।

कुछ जगहो पर नई किस्म के आवे काम मे लाए जाते हैं, जिनमे आच सीधे बरतनो पर नही पडती। ऐसे आवो मे बरतनों को ताप सहने वाली मिट्टी के बने हुए बक्सों में भर कर रखा जाता है। ये बक्से बनावट मे बेलन की तरह होते हैं। इन बक्सों को इस तरह एक-पर-एक रखा जाता है कि उनकी कतारें बन जाती है। यह आवा ऐसा मालूम होता है, जैसे जमीन के ऊपर एक कुआ बनाया गया हो। यह वास्तव मे एक बेलन की शक्ल का खोखला कमरा होता है। इसका फर्श मेहराबदार होता है, जिसमे कई सूराख होते हैं। मेहराबदार फ़र्श ग्रौर जमीन की

सतह से नीचे भट्ठी बनाई जाती है। बरतन भरे खानों की कतार फर्श पर रखी रहती है। भट्ठी की आग फर्श के सूराखों में से होकर ऊपर खाने में पहुंचती है। इस तरह बरतनों पर सीधे आंच नहीं पड़ती।

बरतनों को शक्ल देने के कई तरीके प्रचलित हैं। इनमें सबसे अधिक प्रचलित तरीका चाक पर बरतन बनाने की विधि है। सांचों में गीली मिट्टी डाल कर और उसे दबा कर भी बरतन बनाते हैं। तीसरा प्रसिद्ध तरीका ढलाई का है। इस तरीके मे 'प्लास्टर आफ पेरिस' नाम की मिट्टी के बने सांचों में पतली गीली मिट्टी डालते हैं। बड़े पैमाने पर चीजें बनाने के लिए यह तरीका काम में लाया जाता है। चौथे तरीके को 'जौलीइंग' कहते हैं। इसमें लसदार मिट्टी बना कर और उसे प्लास्टर के बने सांचे पर रख कर नहन्नी आदि कटाव करने वाले औजारों से काट-तराश कर मनमाना आकार देते हैं। मिट्टी को मोड़ कर चीजें बनाने का भी एक ढंग है। इस ढंग से मिट्टी के बरतन बनाने के लिए मिट्टी कड़ी सानी जाती है और जिस तरह लकड़ी को मोड़ते हैं, उसी तरह मिट्टी को भी मोड़ लेते हैं। हाथ से पथाई करने का भी एक तरीका है। साधारण ईंटें लकड़ी के सांचों द्वारा हाथ से ही पाथी जाती हैं।

ईंट की पथाई मे मिट्टी का लौंदा तैयार करके उसे दोनो हाथो से उठा कर जोर से साचे में पटक देते हैं। फालतू मिट्टी को एक तार से छाट देते हैं। फिर साचा उलट देते है और ईंट तैयार हो जाती है। सूख जाने के बाद ईंटें भट्ठे मे लगा दी जाती है और उनके बीच-बीच में कोयला रख दिया जाता है। ईंटें भट्ठे मे इसी तरह पकाई जाती हैं। भट्ठे को बाहर से लेप देते हैं। फिर उसमें आग लगा देते हैं। भट्ठा पकने में कई हफ्ते लग जाते हैं। इसी तरह खपरे भी हाथ से पाथे जा सकते हैं। खपरे पाथने का ढंग भी लगभग वैसा ही है, जैसा कि ईंट पाथने का। ईंटें और खपरे मशीनो से भी बनाए जाते हैं।

पथरौटी बरतन चूंकि प्लास्टिक मिट्टी के बनते हैं, इसलिए वे रंगीन होते हैं। चीनी मिट्टी के बरतन अधिकतर सफेद होते हैं। पथरौटी बरतन बहुत तेज़ आंच पर पकाए जाते हैं (लगभग 13,000 डिग्री सेंटीग्रेड)। इसलिए वे सीसे की तरह सख्त हो जाते हैं। वे इतने सख्त होते हैं कि हवा-पानी या कोई और चीज मुश्किल से उनके आर-पार जा सकती है। इन पर [illegible] मदद से चमक

भट्ठे में ईंटें रखी जा रही हैं।

लगाई जाती है। इसके लिए जब आवा लगभग पकने पर आ जाता है, तब उसमे खाने वाला नमक डाल देते हैं। गदे पानी की निकासी के पाइप, टाइल्ज, तेजाब रखने के मर्तबान, फूलदान, आदि इसी तरह बनाए जाते है।

पोर्सलेन से भी बहुत तरह की चीजें बनती हैं। इसके लिए चीनी मिट्टी, चकमक पत्थर और फेल्स्पर, ये तीन चीजे आपस मे मिला ली जाती हैं। इसमे 50 फीसदी चीनी मिट्टी, 20–25 फीसदी चकमक पत्थर और 25–30 फीसदी फेल्स्पर मिलाया जाता है। कारखानों मे मशीनों के जरिए बडे पैमाने पर चीजे तैयार की जाती हैं। पीसने वाली मशीन से सब चीजे पहले पीस ली जाती हैं, फिर एक-दूसरी मशीन से सब चीजे पानी मे घोल दी जाती हैं। फिर चुम्बक लोहे के यन्त्र से उस घोल में से लोहे का अश अलग कर लिया जाता है। इसके बाद छन्ने की मशीन से उस घोल का पानी अलग करके उसे गाढी लेई जैसा बना लेते हैं। फिर एक मशीन के जरिए उसमे से हवा के बुलबुले निकाल दिए जाते हैं।

बरतन पर चमकीले पदार्थ से पुताई करके उसमे ग्लेज या चमक लाई जाती है। सिलिका, फेल्स्पर, क्षार, सोहागा, चूना, अल्युमिना, आदि को चमक पैदा करने के लिए इस्तेमाल करते हैं। पालिश ऐसी भी हो सकती है, जिसके आर-पार दिखाई दे और उसमे रग हो, और ऐसी भी, जिसके आर-पार दिखाई दे और बे-रंग हो। साथ ही, वह ऐसी भी हो सकती है, जिसके आर-पार दिखाई न दे और उसमे रग हो। बरतनों पर चमक या ग्लेज तीन प्रकार की होती है : (1) कच्ची, (2) बालू या चकमक पत्थर मिली हुई, और (3) नमक की। कच्ची पालिश उन पदार्थो से तैयार की जाती है, जो पानी मे नही घुलते। पक्की चमक या ग्लेज ऐसे पदार्थो से बनती है, जो पानी में घुल सकते हैं। ऐसे पदार्थ सिलिका या दूसरे न घुलने वाले पदार्थों

में मिला कर आग पर पिघला लिए जाते हैं। पिघलाने के बाद जो चीज तैयार होती है, वह पानी मे नही घुलती और उसे ही पक्की ग्लेज या पालिश कहते हैं।

पालिश या ग्लेज की सामग्री को खूब बारीक पीस कर पानी मे पूरी तरह घोल लिया जाता है, जिससे वे आपस मे खूब हल हो जाए। पालिश को बरतन पर ब्रुश या स्प्रे द्वारा छिडक कर लगाते हैं। पालिश को बरतन पर उडेल कर या बरतन को पालिश के घोल मे डुबो कर भी चमक लाई जाती है। बरतनो को रगने के लिए विभिन्न धातुओ के ऑक्साइड काम मे लाए जाते हैं। तावे के ऑक्साइड से हरा, कोबाल्ट के ऑक्साइड से नीला, एण्टीमोनी के ऑक्साइड से पीला और इसी तरह दूसरी धातुओ के ऑक्साइडो से दूसरे रग तैयार किए जाते हैं।

बरतनो पर रगो से चित्रकारी, बेलबूटे या नमूने आदि भी बनाए जाते हैं। ये इन्हे ग्लेज करने से पहले भी बनाए जाते हैं और बाद मे भी। पालिश करने से पहले जो रग काम मे लाए जाते हैं, उन्हे 'अण्डर ग्लेज कलर' कहते हैं। ये रग पालिश करने पर न तो फैलते हैं और न खराब होते हैं। पालिश के बाद वाले रग 'ओवर ग्लेज़ कलर' कहलाते हैं। इसके लिए वे रग काम मे लाए जाते हैं, जो पालिश पर चढ सके। पकाने से पहले भी बरतनो पर रग, नक्काशी, आदि का काम कर लिया जाता है।

आवे कई तरह के होते हैं। आवे की बनावट अधिकतर इस बात पर निर्भर करती है कि उसमे कितनी आच देनी है, और कौन-सा ईंधन इस्तेमाल करना है। छोटे पैमाने पर काम करने के लिए ऐसे आवो की आवश्यकता होती है, जिनमे रुक-रुक कर ऊपर या नीचे से हवा आती-जाती हो, और बड़े पैमाने पर काम करने के लिए ऐसे आवो की आवश्यकता पड़ती है, जिनमें लगातार हवा जाती रहे। सुरगदार आवे हाल की ईजाद है, जो बड़े पैमाने पर काम करने के लिए अच्छे होते हैं।

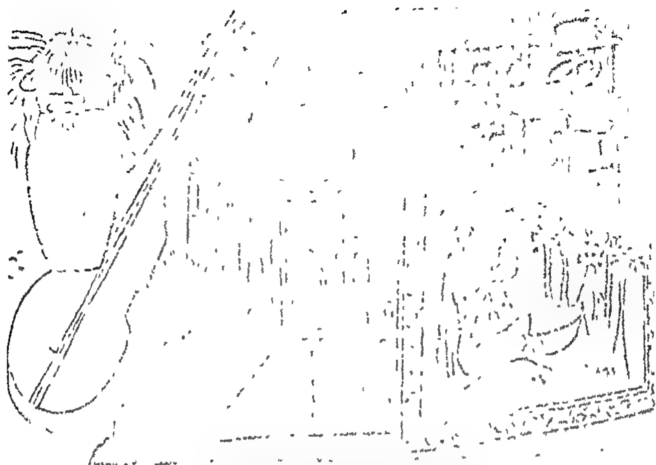


बरतनों पर चित्र बनाए जा रहे हैं।



बरतनों पर बेलबूट बनाए जा रहे हैं ।

आवे मे लकडी, कोयला, तेल, गैस, आदि का इस्तेमाल ईधन के रूप मे होता है। आजकल बिजली के आवो का भी चलन हो गया है। आवे मे आच इतनी देर तक दी जाती है कि ताप आवश्यकता के अनुसार हो जाए। ताप को नापने के लिए एक विशेष प्रकार की चीज का प्रयोग होता है, जिसे 'कोन' कहते हैं। इस 'कोन' की विशेषता यह है कि वह एक खास गर्मी पहुचने पर नरम होकर टेढा हो जाता है। अत जितनी आच देनी होती है, उतनी आच मे पिघलने वाला कोन आवे मे रख दिया जाता है। एक सूराख मे से कोन को देखते रहते है। उसके टेढा होते ही आच बद कर दी जाती है और आवे के पूरी तरह ठडे हो जाने पर पालिशदार बरतन बाहर निकाल लिए जाते है।



सांची के स्तूप

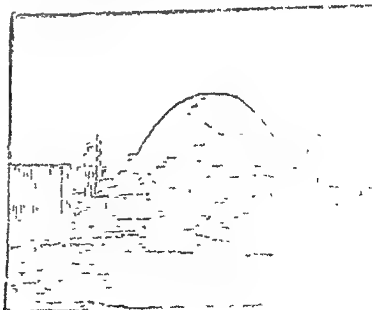
भोपाल रेलवे स्टेशन के पास साची एक स्थान है। यह एक 300 फुट ऊंची पहाडी पर बसा है। पहाडी की ढलान नाना प्रकार के पेडो और लताओ से हरी-भरी है। वसन्त ऋतु में जब ढाक के फूल खिलते हैं, तब दूर से ऐसा मालूम होता है, जैसे वन मे आग लगी हुई हो। शायद स्थान की इस सुन्दरता पर मुग्ध होकर ही बौद्ध उपासको ने वहा अपने स्तूप, चैत्य तथा विहार स्थापित किए। वैसे, साची का बुद्ध भगवान के जीवन की किसी प्रमुख घटना से सम्बन्ध नही है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि पहले-पहल अशोक ने वहा स्तूपो की नीव डलवाई थी। शिलालेखो से पता चलता है कि साची का गौरव ई० पू० तीसरी सदी से बारहवी सदी ईसवी तक रहा। साची का प्राचीन नाम 'काकनावे'



या 'काकनाय' था। बाद मे चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय मे उसका नाम 'काकनादवोट' पड़ा। 13वी सदी के बाद सांची का गौरव समाप्त हो चला। कुछ मुसलमान शासकों ने सांची के पास भिलसा नगर को तो नष्ट किया, किन्तु साची की इमारतो को किसी ने हानि नही पहुचाई। सन् 1818 मे जनरल टेलर ने उन्हे पूरी तरह सुरक्षित पाया। किन्तु बाद मे शिकारियो और कुछ उत्साही परन्तु अनुभवहीन पुरातत्व-प्रेमियो ने साची की कई इमारतो तथा स्मारको को तोड़-फोड़ डाला। अन्त मे सन् 1912 मे सर जान मार्शल नाम के एक अंग्रेज पुरातत्वविशेषज्ञ ने इन स्मारको की सफाई तथा मरम्मत का काम अपने हाथ मे लिया। वह लगभग सात वर्ष तक वहा काम करवाते रहे। आज साची के स्मारक फिर जाग उठे है, और साची ससार भर के इतिहासज्ञो और कला-प्रेमियों का तीर्थस्थान बन गया है।

साची के सबसे महत्वपूर्ण स्तूप को 'महान् स्तूप' कहा जाता है। वह अडाकार है। नीचे का उसका घेर पहले केवल 60 फुट था। बाद मे उसके चारो ओर एक ऊची मेधि (चबूतरे की तरह दीवार) बना दी गई, जिससे उसका घेर 60 से 120 फुट हो गया। उस मेधि पर चढ कर भिक्षु और उपासक स्तूप की परिक्रमा करते थे। स्तूप की रक्षा के लिए चारो ओर खड़े तथा बेंडे पत्थरों की वेदिका (बाड़ या चारदीवारी) बनी है। उसमे चार द्वार थे, जिन पर कई तरह की सजावट अकित थी। आम तौर से विश्वास किया जता है कि 'महान् स्तूप' को अशोक (272 ई० पू० से 232 ई० पू०) ने बनवाया था। शुरू मे वह सादी ईंटो का एक छोटा-सा स्तूप रहा होगा, जिसकी चोटी पर वेदिका (खम्भो की बाड) से घिरी एक छतरी थी। ऐसा लगता है कि अशोक के समय में स्तूप के चारो ओर केवल लकड़ी की वेदिका थी। लगभग सौ वर्ष बाद यानी ई० पू० दूसरी सदी (शुंग काल) मे ईंटो के स्तूप की बाहरी सतह को पत्थरो से छा दिया गया। फिर लकड़ी के स्थान पर पत्थर की वेदिका बनी। इसके बाद द्वारो का निर्माण हुआ। पहले दक्षिण और फिर

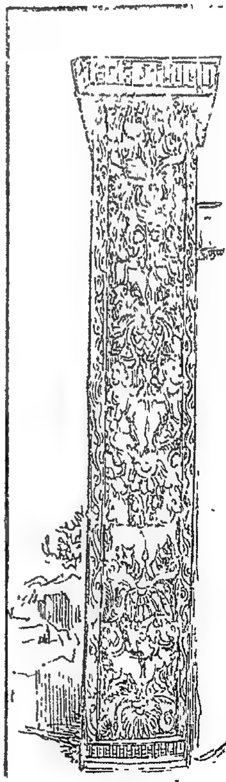


महान् स्तूप, उत्तर-पूर्व की ओर से देखने पर



महान् स्तूप का
उत्तरी द्वार

पश्चिमी द्वार, सजावटयुक्त
दाया खम्भा



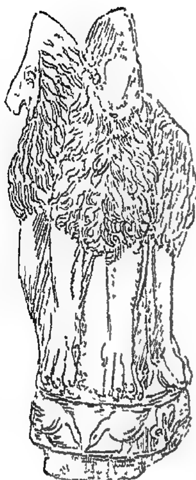
क्रम से उत्तर, पूर्व और पश्चिम के द्वार बने। ये सब द्वार सम्भवत 20 या 30 वर्ष के भीतर बने होंगे।

स्तूप की चोटी पर जो छतरी थी, वह टूट गई थी। ऐसी छतरिया प्राय पत्थर के चबूतरे पर टिकी होती थी। किन्तु महान् स्तूप की छतरी चबूतरे पर न टिक कर पत्थर के उस भारी सदूक पर टिकी थी, जिसमें कभी महात्मा बुद्ध के फूल रखे थे। स्तूप की वेदिका के हिस्से, यानी उसके खम्भे, उसकी सूची (दो

खम्भो को जोड़ने वाला बेडा पत्थर) और उसका उष्णीष (स्तम्भो के सिरे पर रखने के पत्थर) अलग-अलग उपासको के दान से बनाए गए थे। कई खम्भो पर दाताओ के नाम भी खुदे है। पत्थर के जगले की वेदिका से पता चलता है कि उस प्राचीन काल मे भी पत्थर के काम की कला बहुत उन्नति कर चुकी थी। जगले और स्तूप के बीच की भूमि पर बडे-बडे पत्थर बिछाए गए थे। स्तूप के तल से सटी हुई दीवार के चारो ओर भी एक वेदिका बनी थी। उसमे खुदे हुए पशु-पक्षी और मनुष्यो के चित्र बहुत ही सुन्दर है। प्राचीन काल मे महान् स्तूप के द्वार और वेदिका लाल रग से पुने थे। स्तूप की सतह पर सफेद रग चढा था, जिसके चिह्न आज तक मौजूद है। साची मे सबसे दर्शनीय चीज महान् स्तूप ही है, जिसके चारो ओर वेदिका के चार द्वार है। उनमे सबसे पहले दक्षिण वाला द्वार बना था, जो मेधि (स्तूप से सटे चबूतरे) पर चढने की सीढी के ठीक सामने था। पर उत्तर दिशा का द्वार ही इस समय सबसे अधिक सुरक्षित है। उसमे दो खम्भे है और उसके सिरे पर रखी हुई तीन सूचिया है। खम्भो के ऊपरी भाग मे बडे-बडे पत्थर है, जिन पर कमरे से सटे पेट वाले शेर तथा बौनो की मूर्तिया है। पत्थरो से ही झूलती हुई यक्षिणियो अथवा लोक-कल्पना की देवियो की भी मूर्तिया है। यक्षिणियो को प्राय पेडो की टहनी पकडे दिखाया गया है। इसलिए उन्हे शालभजिका या टहनी तोडने वाली देवी भी कहते है।

द्वार के खम्भो के ऊपर जो तीन सूचिया (खम्भो को जोडने वाले बेडे पत्थर) है, उनके बीच मे भी छोटे-छोटे खम्भे लगे है। उन खम्भो पर यक्ष (लोक-देवता) और यक्षिणियो की मूर्तिया अकित है। एक दूसरे खम्भे के बीच घुडसवार या हाथी भी बने है। ऊपरी सूची के दाए-बाए बाहर निकले दोनो कोनो पर बैठे हुए शेर की मूर्तिया है। सबसे ऊपर की सूची पर दो त्रिरत्नो या बौद्ध धर्म के सूचक गोल छल्लसो के ऊपर रखे सीग से बने तीन चिह्नो के बीच मे 'धर्मचक्र' स्थिर है, जिसका एक भाग टूट गया है। सूचियो तथा द्वार के खम्भो पर उभार कर कोरे गए केवल सामने से ही दीखनेवाले अर्द्धचित्र बने है। उनमे बुद्ध के पूर्व जन्म की कहानिया (जातक कथाए), बुद्ध के जीवन तथा मृत्यु के बाद की घटनाए, बोधिवृक्ष, स्तूप, हाथी, वन तथा तालाबो के चित्र अकित है।

साची में बुद्ध भगवान को कही भी मनुष्य के रूप मे नही दिखाया गया है। यह बात ध्यान देने की है कि ईसा से पूर्व पहली सदी की भारतीय कला मे बुद्ध

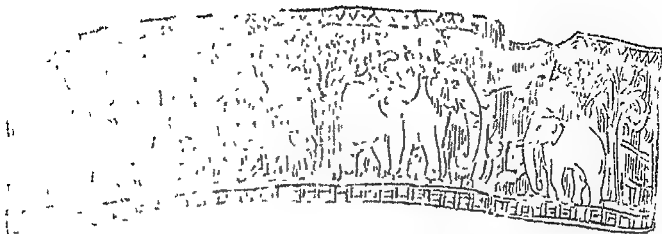


पखधारी शेर

को मनुष्य रूप में कही भी चित्रित नही किया गया। उगसे पहले बुद्ध के जीवन सम्बन्धी घटनाओं के चित्रण में जब कही बुद्ध की उपस्थिति की आवश्यकता होती थी, तब कलाकार पगडी, बोधिवृक्ष, स्तूप या चरण जैसी सांकेतिक वस्तुओ से उनको दिखाते थे। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के बाद इन्ही वस्तुओ के रूप में उनको पूजा जाता था। साची से कुछ पहले का बना एक और स्तूप मध्य भारत में सतना स्टेशन के पास भरहुत नामक स्थान पर है। यहा खम्भो पर जो चित्र अकित है, उनका भी परिचय वही खुदे लेखो से मिल जाता है। उसके उत्तरी द्वार पर बुद्ध के जीवन की चार प्रमुख घटनाए अकित है। उनका जन्म, परमज्ञान (बोधिवृक्ष के नीचे प्राप्त हुआ ज्ञान), धर्मचक्र-प्रवर्तन (ऋषिपत्तन या सारनाथ मे बुद्ध का सबसे पहला उपदेश) और परिनिर्वाण (मोक्ष)।

साची के द्वारो और दूसरे स्थलो पर प्राय यक्षो की मूर्तिया दीख पडती है। इसका कारण यह है कि यक्ष ग्रामो के देवता तथा चारो दिशाओ के रक्षक माने जाते थे। साची में पशु, पक्षी, पेड, फूल, लता, आदि का बहुत सुन्दर चित्रण है। चित्रित पशुओं में हाथी, घोडा, बैल, ऊट और पखधारी शेर मुख्य है। कई जगह कमल के फूल भी अकित है। यह शायद इसलिए कि कमल का लक्ष्मी से सम्बन्ध माना जाता है। कही-कही पर 'अंगूर की बेल' तथा एक और लता, जिसमे पीले-पीले बहुत ही सुन्दर फूल होते है, अकित है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अगूर और दूसरे प्रकार की बेल का चित्रण पश्चिम एशिया से आया, क्योकि वे लताए पश्चिम एशिया की कला मे अक्सर दीख पडती है। भारत मे उनका चित्रण गिनी-चुनी जगहो पर ही मिलता है।

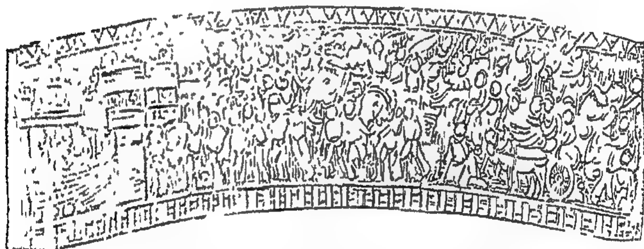
सन् 1882-83 मे स्तूप के दक्षिणी द्वार की मरम्मत का काम बहुत बडे पैमाने पर किया गया था। उसके सिरे की सूची पर बुद्ध के जन्म का दृश्य अकित है। कमल पर खडी माया देवी के अगल-बगल मे एक-एक हाथी है। बीच वाली सूची पर वह दृश्य है, जब सम्राट् अशोक ने नेपाल की तराई मे रामग्राम के स्तूप की यात्रा की थी। सबसे नीचे की सूची पर बौनो के मुंह से कल्पलता दौडती



छदंत जातक (सबसे नीचे का चित्रयुक्त मुख भाग)

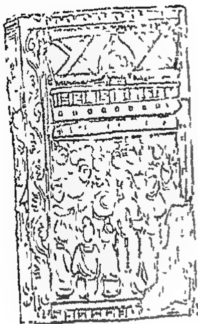
दिखाई गई है। कल्पलता को भारत मे सौभाग्य, आशीर्वाद तथा जीवन का प्रतीक माना गया है।

मूर्तियो के पीछे तीन स्तूपो और पाच पेडो के द्वारा, जिनके नीचे गद्दी बनी है, ऊपरी भाग में छः मानुषी बुद्ध (बुद्ध भगवान से पहले के छ: बुद्ध) तथा गौतम बुद्ध दिखलाए गए हैं।



धातु वितरण (बीच का चित्रयुक्त पृष्ठ भाग)

बीच की सूची पर छदंत जातक की कथा अंकित है। वह कथा यह है कि एक बार बोधिसत्व (ज्ञान प्राप्त करने से पहले बुद्ध का नाम) हाथियो के एक जत्थे के नेता के रूप मे प्रकट हुए। उनके छ दांत थे। हाथियो का यह जत्था हिमालय मे छदंत सागर के पास रहता था। जत्थे के नेता के दो पत्निया थी, चूलसुबुद्धा तथा महासुबुद्धा। चूलसुबुद्धा महासुबुद्धा से डाह रखती थी। इस कारण उसने प्रार्थना की कि दूसरे जन्म में वह बनारस के राजा की पत्नी बने। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। बनारस की रानी बन कर उसने एक शिकारी को बोधिसत्व को मारने के लिए भेजा। इसी सूची पर, पीछे की ओर, धातु वितरण का दृश्य भी अंकित है। इसकी



दक्षिणी द्वार, बाया खम्भा, भीतर की ओर का चित्र
देवलोक में गौतम के केशों की पूजा

कथा यह है कि बुद्ध की मृत्यु होने पर उनके शरीर की राख कुशीनगर के मल्लों (कुशीनगर मे रहने वाली एक जाति) के पास रखी गई। उस राख मे सात अन्य जातियो ने भी अपना हिस्सा मागा। उस पर भारी युद्ध हुआ। इसी घटना को बौद्ध-साहित्य मे धातु वितरण कहते है। इस घटना के चित्रण में जो चहल-पहल और भीड-भाड दिखाई गई है, वह बहुत ही सजीव है। पर सबसे बढ कर राजा-महाराजाओ और गरीबो के कधे-से-कधा मिला कर एक साथ चलने के जो दृश्य उसमे अकित है, भारतीय कला मे वे और कही नही दीखते। उसी द्वार पर एक जगह बुद्ध के बाल तथा चूडा की पूजा का दृश्य अकित है। उसकी भी एक कथा है। भिक्षु बनने से पहले गौतम ने अपने केश काट डाले थे और केशो तथा पगडी को हवा मे फेक दिया था। देवताओ ने उन्हे थाम लिया और उन्हे वे अपने साथ देवलोक में ले गए, जहा उनकी पूजा होने लगी। उत्तरी द्वार के सिरे की सूची पर स्तूप वृक्ष और आसन के रूप मे सात बुद्धो का साकेतिक चित्रण है। यह माना जाता है कि गौतम से पहले छ बुद्ध और जन्मे थे और सातवा अवतार स्वय बुद्ध का था। इस प्रकार सात बुद्ध माने जाते है। सबसे नीचे की सूची पर वेस्सतर जातक की कथा अकित है। कहा जाता है कि बुद्ध होने से पहले बोधिसत्व वेस्सतर नामक एक दानी राजकुमार के रूप मे प्रकट हुए थे, जिसने अपना धन, सफेद हाथी, रथ, घोडे, स्त्री तथा बच्चे सभी एक-एक करके दान कर दिए थे। बीच की सूची पर कपिलवस्तु से गौतम की विदाई का दृश्य अकित है। सबसे नीचे अशोक बोधिवृक्ष की पूजा करते दिखाए गए है। निकट ही एक दूसरे स्तूप के दोनो ओर कमल के फूल लाते हुए हाथी दिखलाए गए है। ऐसा खयाल किया जाता है कि नेपाल की तराई मे रामग्राम मे जो स्तूप था, वह इसी शैली का था।

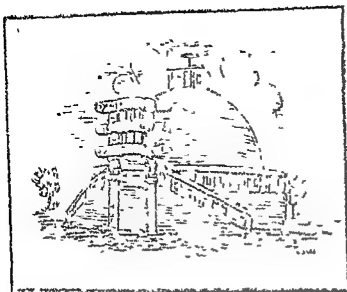
पश्चिमी द्वार की ऊपरी सूची पर बुद्ध से पहले के छ बुद्धो और मैत्रेय (भविष्य मे उत्पन्न होने वाले बुद्ध) का अकन किया गया है। पीछे की ओर मल्ल

जाति के मुखिया द्वारा हाथी पर वुद्ध भगवान की राख ले जाने का दृश्य अंकित है। उसके नीचे का दृश्य वहुत ही मनोहर है। उस द्वार के स्तम्भो पर महाकपि और अधिपेण जातक के दृश्य अंकित है। महाकपि जातक की कथा यह है कि एक बार वोधिसत्व बन्दर की योनि मे उत्पन्न हुए। उनके अधीन 40,000 बन्दर थे। वे एक तालाव के नजदीक रहते थे और पास के एक बाग से आम खाकर जीवन विताते थे। एक वार वनारस के राजा ब्रह्मदत्त ने आम के बाग को घेर लिया। यह देख कर वोधिसत्व ने अपने शरीर का पुल वना कर राजा के हाथियो को बाग मे घुसने से रोक दिया। महाकपि की यही कथा पश्चिम के द्वार पर अंकित है। अधिपेण जातक की कथा यह है कि एक वार इन्द्र, ब्रह्मा तथा अन्य देवता इकट्ठे होकर वुद्ध के पास मनुष्य की मुक्ति का मार्ग जानने के लिए गए। वही इन्द्र एक गुफा मे जाकर वुद्ध की चौकी की पूजा करते दिखाए गए है।

वड़े स्तूप के चारो प्रमुख द्वारो के सामने ध्यान मुद्रा मे बुद्ध की गुप्तकालीन एक-एक मूर्ति रखी है। किसी समय उनके ऊपर फूलदार छतरिया थी। उनमे दक्षिणी द्वार के सामने वाली मूर्ति सवसे श्रेष्ठ है। महान् स्तूप से लगभग 50 फुट की दूरी पर एक और छोटे आकार का स्तूप था। उसके भीतर वुद्ध के दो प्रिय शिष्य सारिपुत्त और महामोग्गलान की राख मिली थी। उस स्तूप की वेदिका नष्ट हो गई है। केवल दो-चार स्तम्भ इधर-उधर विखरे पडे है। पहाड़ी से 50 गज नीचे एक अन्य स्तूप था। उसके भीतर 4 पिटारिया थी, जिनमे 10 बौद्ध भिक्षुओ के फूल रखे थे। शुग राजाओ के काल (ई० पू० दूसरी सदी) मे किसी कारण उन भिक्षुओ की राख को इकट्ठा करके एक ही स्थान पर रख दिया गया था। इससे यह भी पता चलता है कि वुद्ध की मृत्यु के वाद भिक्षुओ और उपासको के फूल भी स्तूपो मे रखे जाने लगे थे।

पश्चिमी द्वार, दायां खम्भा, मुख भाग, महाकपि जातक





स्तूप 3, दक्षिण और दक्षिण-उत्तर की ओर से

साची मे सबसे दर्शनीय स्तूपो की वेदिकाए है। उन्हे देखने से पता चलता है कि कलाकार पत्थर पर सुन्दर-से-सुन्दर बेलबूटे बना सकते थे। किन्तु मनुष्य की आकृति बनाने के लिए उन्हे अभी और कुछ सीखना था। मनुष्यो के चेहरे का वे केवल तीन-चौथाई भाग ही दिखा सकते थे, और मनुष्य का चित्रण वे प्राय एक ही सतह पर कर सकते थे।

साची के स्तूप बडे पैमाने पर बनाए गए थे। उन्हे बनाने मे अनेक कलाकारो ने योग दिया था। साची की कला कही-कही बहुत अच्छी है और कही-कही बहुत साधारण। इससे मालूम होता है कि जिन कलाकारो ने साची के स्तूप बनाने में योग दिया था, उनमे सबके हाथ मजे हुए नही थे। फिर भी कही-कही इतना बारीक काम है कि देखते ही बनता है। एक द्वार पर खुदे लेख से ज्ञात होता है कि वहा की सजावट का नमूना विदिशा के, जिसे आजकल भिलसा कहते है, दन्तकारो, यानी हाथीदात पर काम करने वालो, ने बनाया था।

साची की कला के विषय अधिकतर धार्मिक है। किन्तु लौकिक विषय भी लिए गए है। भारतीय कलाकारो ने साची की कला मे उस समय के भारतीय समाज तथा जीवन के सुन्दर चित्र भी प्रस्तुत किए है।

भारतीय नाच

मनुष्य शुरू से ही नाच से आनन्द लेता और उससे अपना मन बहलाता आ रहा है। आज से हजारो बरस पहले भी आदमी नाच से अपने नीरस और कष्ट भरे जीवन का बोझ हल्का करता था, और आज भी करता है।

नाच एक बहुत पुरानी कला है। नाच हर देश मे मनबहलाव का एक मुख्य साधन रहा है। नाच केवल मनुष्यों के ही नही, देवताओ के भी मनबहलाव का साधन रहा है। लगभग हर देश और हर जाति के धार्मिक कामों में नाच का एक अपना स्थान है। हमारे देश में तो यह कहा जाता है कि नाच का आरम्भ ही देवताओ ने किया था। इसकी कहानी बडी दिलचस्प है। कहते है कि देवताओ को प्रसन्न करने के लिए भरत मुनि ने नाटक की रचना की। नाटक के बीच मे उन्होंने नाच भी रखा। फिर उन्होने जाकर शिव और पार्वती को अपना वह नाटक और नाच दिखाया। शिव और पार्वती उनके खेल को देख कर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होने अपने शिष्य ताडु को आज्ञा दी कि तुम अपना नाच दिखा कर उसके सब नियम भरत मुनि को सिखा दो। भरत मुनि ने ताडु की शिक्षा से नाच की अपनी जानकारी और भी बढा ली। ताडु के नाम पर ही उस नाच का नाम तांडव नृत्य पड़ा। पार्वती जी भी नाचने की कला में दक्ष थी। उन्होंने राजा बाण की पुत्री, ऊषा को नाच सिखाया। ऊषा का व्याह श्रीकृष्ण के पोते अनिरुद्ध से हुआ। ससुराल पहुंच कर ऊषा ने द्वारका और सौराष्ट्र की स्त्रियो को वह नाच सिखाया। इसी तरह धीरे-धीरे वह नाच सारे भारत मे फैल गया। उस नाच मे कोमल भाव अधिक थे, इसलिए उसे लास्य नृत्य कहा गया। भरत के नाट्यशास्त्र में ताडव और लास्य, दोनो तरह के नाचों के नियम मिलते है।

ऊपर की कहानी सच हो या न हो, इसमे सन्देह नही कि भरत के समय तक हमारे देश में नाच की कला मे काफ़ी उन्नति हो चुकी थी। भरत मुनि का समय आज से लगभग दो हजार वर्ष पहले का माना जाता है। दूसरी बातो से भी हमे पता चलता है कि उन दिनों साहित्य, संगीत, चित्रकला, आदि की तरह नाच का भी समाज में काफी मान था। इसका एक कारण यह भी है कि भारत मे नाच को केवल मनबहलाव की चीज़ न मान कर उसे परमात्मा को पाने का एक साधन माना गया। भारत मे यह विश्वास किया जाता रहा है कि नाच भगवान शिव की लीला है। नाच के द्वारा सांसारिक आनन्द तो मिलता ही है, स्वय परमात्मा भी मिल सकता है। नाच के ही कारण शिव का एक नाम नटराज है। नाच की मुद्रा मे मुरली बजाते हुए कृष्ण की मूर्ति कहा नही दिखाई देती!

दूसरी कलाओ की तरह, भारत में नाच का भी धर्म के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। प्राचीन काल के मन्दिरों में बनी हुई मूर्तियों और चित्रो में नृत्य मुद्राएं भरी पड़ी है। नाचते समय कोई भाव दिखाने के लिए शरीर और खास कर हाथो की जो शक्लें बनती है,

उन्हे मुद्रा कहते है। अगर समाज ने नाच को पवित्र और अच्छा न समझा होता, तो अजता और एलोरा की गुफाओ मे, कोणार्क, भुवनेश्वर और खजुराहो के मन्दिरो में, नाच की मुद्राओ की यह भरमार कभी नही होती।

समय के साथ-साथ हर चीज बदलती है। नाचने की कला मे भी परिवर्तन होता रहा। मध्य युग मे बाहर के हमलो और राजनैतिक उथल-पुथल के कारण देश के बहुत से भागो मे नाच की उन्नति रुक गई। इसका नतीजा यह भी हुआ कि नाच का धार्मिक और आत्मा को ऊचा उठाने वाला रूप मद पड गया और वह राजदरबारो मे केवल मनोरजन का साधन रह गया। यहा से इस कला का पतन शुरु हुआ। नर्तक का सम्मान कम होने लगा। समाज मे उसका आदर घटने लगा। धीरे-धीरे ऐसी हालत हो गई कि कम-से-कम उत्तर भारत मे तो, पेशेवर नाचने वालियो के घरो के अलावा समाज में नाच के लिए कोई जगह ही नही रह गई। दक्षिण भारत मे उत्तर भारत की तुलना में नाच का दर्जा इतना नही गिरा। पर वहा भी जनसाधारण के जीवन से निकल कर नाच केवल मन्दिरो और राजदरबारो तक ही सीमित रह गया।

बीसवी सदी मे जब देश मे जागरण की लहर उठी, तब उसके साथ-साथ कला के क्षेत्र मे भी जागृति आई। पुरखो के समय से चली आने वाली अच्छी बातें, जो बीच मे रुक गई थी, उनका रिवाज फिर से शुरू हुआ। अपनी सस्कृति की पुरानी परम्पराओ के लिए हमारे मन मे नए सिरे से आदर जागा। उनमे फिर से जान डालने और उनको जन-साधारण मे प्रचारित करने की कोशिश की गई। नाच भी उनमे से एक था। पढे-लिखे और अच्छे घरानो के लोगो ने इस ओर ध्यान दिया। दक्षिण मे दासी आट्टम अथवा सादिर नृत्य को, जो केवल देवदासियो और पेशेवर नाचने वालियो तक ही सीमित था, भरतनाट्यम् का नाम दिया गया। नाच के पहनावे और तरीको मे भी बहुत-से परिवर्तन हुए। धीरे-धीरे वह नाच ऐसी अवस्था में पहुच गया कि आज फिर से वह जनसाधारण मे प्रचलित होता जा रहा है। अब भरतनाट्यम् को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है। उत्तर भारत मे यह परिवर्तन अधिक धीमा और कठिन सिद्ध हुआ। यहा नाच का प्रचार बहुत धीरे बढा। पर अब पहले के मुकाबले मे ज्यादा लोग नाच मे रुचि लेने लगे है।

शास्त्रो मे नाच के तीन अग माने गए है (1) नृत्त, (2) नाट्य, और (3) नृत्य। लय के अनुसार शरीर के अगो को घुमाने-फिराने, थिरकाने और नाच की मुद्राए बनाने को नृत्त कहते है। नृत्त में केवल नाच होता है। इसमे न तो मन के भाव दिखाए जाते है, न

किसी तरह का अभिनय ही किया जाता है। नाट्य मे अभिनय खास चीज होती है। इसमें लय और ताल की बारीकियो पर ज्यादा ध्यान नही दिया जाता। अभिनय के साथ-साथ ताल और लय के अनुसार नाचने को नृत्य कहते हैं। नृत्य में हाव-भाव, अभिनय, गीत, सब एक नियम से चलते हैं।

भारत मे भाव और अभिनय को ही नाच की खास चीज माना गया है। नाट्य-शास्त्र मे अभिनय की चार विधिया बताई गई है—आगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। आगिक अभिनय का अर्थ है अग का अभिनय, यानी शरीर के अग, हाथ-पैर, गर्दन, आखो, आदि के द्वारा जो अभिनय किया जाए। वाचिक का अर्थ है वाणी से कहा हुआ, यानी मुह से बोल कर किसी की नकल करना। इसमे शब्द और सगीत दोनो आ जाते हैं। किसी का वेष धारण करके उसकी नकल करना या खास तरह का भेष बना कर कोई भाव प्रकट करना आहार्य कहलाता है। भेष बनाने मे वस्त्र, आभूषण, मुख-लेपन, आदि सभी शामिल हैं। सात्विक अभिनय सबसे मुख्य माना जाता है। जब कोई कलाकार बराबर अभ्यास करते-करते इतना दक्ष हो जाता है कि मन के बारीक-से-बारीक भावों को भी अभिनय द्वारा दिखला सके, तभी वह सात्विक अभिनय करने का अधिकारी होता है। कथकली नृत्य मे दक्ष नर्तक अपनी एक आख से रोने और एक आख से हँसने तक का भाव दिखा सकते हैं।

भारत मे नाचते समय कोई भाव दिखाने मे हाथो का बहुत उपयोग होता है। इसके लिए हाथो को तरह-तरह से मोडा और घुमाया जाता है। हाथ और अगुलियो को एक खास तरह से कुछ समय तक एक खास दशा मे रखने को हस्त-आकृति या मुद्रा कहते हैं। नाच मे किसी भाव को दिखाने के लिए कलाकार मुह और आखो आदि से तो मदद लेता ही है, इसके अलावा वह हाथ से भी तरह-तरह की आकृतिया अथवा मुद्राए बनाता रहता है। हाथ और अगुलियो की स्थिति के अनुसार मुद्राओ का नाम बदल जाता है। भिन्न-भिन्न मुद्राओ का मतलब भी भिन्न होता है। नाट्यशास्त्र और अभिनयदर्पण जैसे प्रसिद्ध ग्रन्थो मे हस्त-आकृति या मुद्राओ की बहुत-सी विधिया बताई गई हैं। इनकी थोडी-बहुत जानकारी होने पर शास्त्रीय नाच देखने मे बहुत आनन्द आता है। वह नाच जो नाट्यशास्त्र के नियमो के अनुसार हो, शास्त्रीय नाच कहलाता है। नाच की ये विशेषताए मोटे तौर से हमारे सभी मुख्य नाचो मे पाई जाती है।

अपने देश मे नाच की चार मुख्य शैलियां हैं (1) कत्थक, (2) भरतनाट्यम्, (3) मणिपुरी, और (4) कथकली। नाच के ढब या ढग को शैली कहते हैं। कत्थक नाच

उत्तर भारत की मुख्य शैली है। आजकल यह नाच जिस तरह होता है, उसे देखने से दो बाते साफ जाहिर होती है। एक तो यह कि इस पर मुस्लिम काल की गहरी छाप है। दूसरे यह कि इस नाच का मन्दिरो और धार्मिक समारोहो से गहरा सम्बन्ध रहा होगा। महाराजा कालका प्रसाद और बिन्दादीन जैसे चोटी के कलाकारो ने इसे एक नया ही रूप और गौरव दिया है।

कत्थक नाच राजदरबारो मे पनपा है, और मनोरजन का साधन रहा है। इसीलिए उसका धार्मिक पहलू दब गया और शृंगार का पहलू अधिक उभर आया। भाव और अभिनय की गहराई पर ध्यान नही दिया गया, बल्कि लय, गति और उसके अनुसार पैर चलाने की बारीकियो पर जोर दिया गया। नाचने वाला तरह-तरह की पेचीदा गतियों और तबले-पखावज के बोल आदि पर अधिक ध्यान देता रहा। इस नाच मे राधा-कृष्ण की छेड़-छाड़ आदि ही अधिक रहती है।

कत्थक

कत्थक नाच में घुंघरुओ का उपयोग एकदम अनूठा होता है। घुंघरुओ की सहायता से नाचने वाला बहुत मनोहर वातावरण पैदा कर देता है।

मौजूदा कत्थक नाच के संगीत में लय का जितना महत्व है, उतना स्वर का नही। सारंगी अथवा दूसरे बाजो पर धुन की एक कड़ी शुरू से आखिर तक बजती रहती है, जिसे लहरा कहते है। पिछले कुछ दिनो से कत्थक नाच में संगीत को और अधिक बढावा देने की ओर कलाकारो का ध्यान गया है। इसी प्रकार पोशाक और सजावट में भी पेशवाज और चूडीदार पाजामा जैसी दरबारी पोशाको को छोड़ कर अधिक उम्दा ढंग के कपड़े पहनने की जरूरत महसूस की जा रही है।

भरतनाट्यम् दक्षिण भारत का मुख्य शास्त्रीय नाच है। इसे देश का प्रतिनिधि नाच भी माना जाता है, क्योंकि पिछली सदियों में इसके रूप में बहुत कम परिवर्तन

हुआ है। यह नाच अधिकतर मन्दिरो में ही रहा, जहां देवदासियो ने अपनी मेहनत से इसके असल रूप को जीवित रखा।

भरतनाट्यम् मे नाच की पुरानी शैली की सभी बाते थोड़े-बहुत हेर-फेर के साथ आज भी मौजूद है। इसमे नृत्त और नृत्य, दोनो बराबर मिले है, और अभिनय पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। इस नाच मे बड़े-बड़े कवियो और गवैयो की रचनाओ पर अभिनय किया जाता है। इसलिए इसमे तरह-तरह के भावो और उनकी गहराई दोनो पर जोर दिया जाता है। भरतनाट्यम् सीखने वाले को नाच के अलावा गाने का भी ज्ञान होना जरूरी है। संगीत और साहित्य के साथ इस नाच का गहरा सम्बन्ध होने की वजह से इसको अधिक आदर मिला है। इसकी पोशाक और सजावट मामूली होते हुए भी कलापूर्ण होती है। भरतनाट्यम् केवल स्त्रियां ही करती है, मगर इसके सभी बडे-बड़े उस्ताद पुरुष ही होते आए हैं।

भरतनाट्यम्

देश के उत्तर-पूर्वी भाग मे एक मणिपुर प्रदेश है। वहा का नाच मणिपुरी नाच के नाम से मशहूर है। शास्त्रीय शैलियो मे इसका विशेष स्थान है। मणिपुरी नाच मन के कोमल भावो को उकसाने वाला होता है। मणिपुरी नाच की विशेषता यह है कि इसे बहुत से लोग ज्यादातर मिल कर ही नाचते है। सामूहिक नाच होने की वजह से यह कत्थक और भरतनाट्यम् की तरह नहीं होता। यह नाच मणिपुर के जीवन का अग है और अभी तक मन्दिर और धार्मिक जीवन से इसका गहरा सम्बन्ध है। शास्त्रीय शैली की भांति इसमे भी दक्षता हासिल करने के लिए देर तक शिक्षा और अभ्यास की जरूरत होती है। आम तौर से मणिपुर के हर लडके-लड़की को यह नाच आता है। इस नाच मे भी राधा-कृष्ण के प्रेम की बाते होती है। पर यह प्रेम सांसारिक प्रेम नही, अलौकिक प्रेम माना गया है। नाचते हुए राधा-कृष्ण को मणिपुर निवासी भगवान का रूप

मान कर भक्ति के साथ उनकी पूजा करते हैं, और नाच को पवित्र काम मानते हैं।

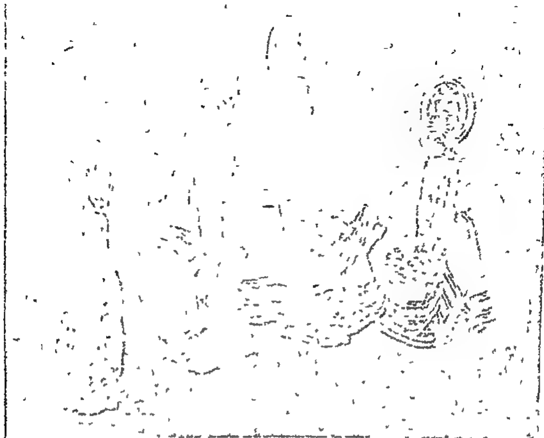
मणिपुरी शैली में नाचने और मन के भाव प्रकट करने की बारीकी पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस नाच की लय जटिल होते हुए भी बड़ी मधुर और सुहावनी लगती है। मणिपुरी नाच की पोशाक और सजावट पर वहां के वातावरण की गहरी छाप है। इतनी सुन्दर पोशाक और सजावट दूसरे किसी नाच की नहीं होती। मणिपुरी गीतों में भी धार्मिक बातें अधिक होती हैं।



मणिपुरी

कथकली नाच दक्षिण भारत के केरल प्रदेश का शास्त्रीय नाच है। इस नाच में एक कथा को लेकर चलते हैं। शुरू से अन्त तक उसी कथा को सही-सही निभाने पर ध्यान रखते हैं। इस हिसाब से यह किसी एक आदमी का नाच नहीं है, बल्कि नृत्य यानी नाच द्वारा नाटक की परम्परा से जुड़ा हुआ है। कथकली नाच के लिए बड़े अभ्यास और परिश्रम की आवश्यकता होती है। यह नाच केरल प्रदेश में जनसाधारण की चीज है और मनोरंजन का सुगम साधन है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि जन-साधारण में रामायण, महाभारत, आदि की कथाओं के नाटक का जो चलन था, वही शास्त्रीय नाच के नियमों में बंध-संवर कर कथकली नाच कहलाया। नाच की मुद्राओं का जितना उपयोग इस नाच में होता है, उतना दूसरे किसी नाच में नहीं होता। इसलिए इसे मुद्राओं की भाषा कहा जाता है। कथकली नाच में गीत के साथ तरह-तरह की मुद्राएं दिखाई जाती हैं, और मामूली नाच के रूप में कोई-न-कोई पौराणिक घटना पेश की जाती है। इस नाच की पोशाक और सजावट बड़ी मनोहर लेकिन जटिल होती है।

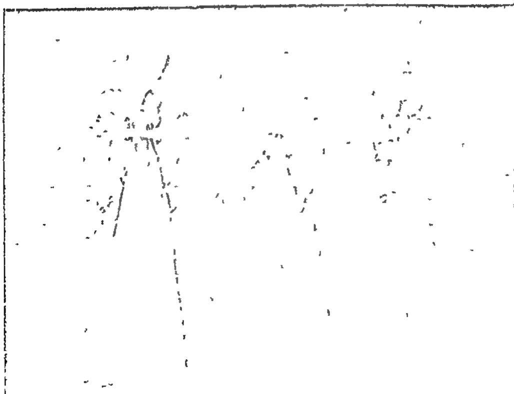
इन चार मुख्य शास्त्रीय शैलियों के अलावा हमारे देश में नाच की और भी



कथकली

कितनी ही शैलिया है। ये दूसरी शैलिया भी लगभग इन्ही के जोड की है, और नाच की शास्त्रीय परम्परा से उनका काफी लगाव है। इनमे उडीसा के ओडीसी और आन्ध्र के कुचीपुडी नाच खास है। हाल ही मे सगीत नाटक अकादमी ने एक नाच गोष्ठी की थी, जिसमे और भी कई नाचो का, विशेषकर असम के 'सत्रीय' नाच और कर्नाटक के

कुचीपुडी



ग्राम नर्तक

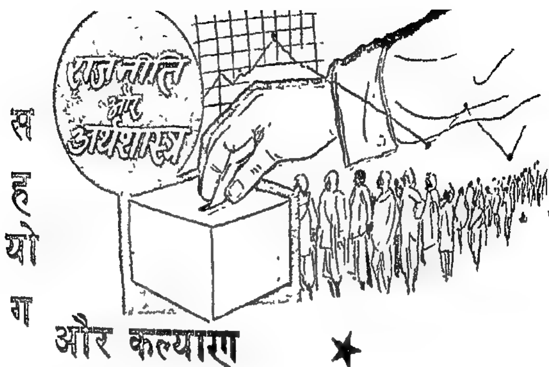
आदिवासियों का नाच

[illegible] का प्रदर्शन किया गया था। हमारे देश में लोक-नृत्य और आदिवासियो के नाच की भी एक बड़ी प्रचलित और प्रसिद्ध परम्परा है। असल में उसे देखे और समझे बिना शास्त्रीय नाच को पूरी तरह नही समझा जा सकता। इन लोक-नृत्यो में भी मोटे तौर से वे सब गुण और नियम मिलते है, जो शास्त्रीय नाच में पाए जाते हैं। इससे यह विश्वास और भी पक्का हो जाता है कि हमारे मौजूदा नाच, जिन्हें हम शास्त्रीय नाच कहते हैं, लोक-नृत्य अथवा धार्मिक नाचो के ही विकसित और सुधरे हुए रूप हैं।

राजस्थानी लोक-नृत्य

आजादी के बाद हमारा ध्यान नाच की अपनी परम्परा की ओर अधिक गया है। हर साल गणतन्त्र दिवस के मौके पर दिल्ली तथा देश की दूसरी जगहों मे लोक-नृत्य भी किया जाता है। अब हम यह समझने लगे है कि हमारे देश मे नाच केवल पैसे वालो के लिए ही नही है, बल्कि यह जनसाधारण के आनन्द और मनोरजन का भी साधन है। नाच के द्वारा जनसाधारण का केवल मनोरजन ही नही होता, उसके जरिए वे अपने परिश्रम और दुख-दैन्य के भार से दबे जीवन को सरस और सुन्दर भी बना सकते है। इसी से आशा है कि नाच की हमारी कला मे और भी निखार आएगा।

बैल



सहयोग और कल्याण

आदमी खाना अकेले बैठ कर खा सकता है, पर खाने के लिए अन्न का होना जरूरी है और आदमी अकेले अन्न नही उपजा सकता। इसी तरह जीवन के लिए जरूरी कामो मे से अधिकतर अकेले नही किए जा सकते। इसलिए आदमी को आपस मे मिल-जुल कर, आपसी सहयोग से, काम करना पडता है। यह आपसी सहयोग काम को पूरा करने के लिए जितना जरूरी है, उतना ही काम मे आने वाली बाधाओ को दूर करने के लिए भी जरूरी है। आपसी सहयोग के जरिए ही आदमी बाधाओ से टक्कर लेता है, उनके खिलाफ सघर्ष या कोशिश करता है। इस प्रकार आदिम युग से आज तक आदमी आपसी सहयोग द्वारा काम और बाधाओ के खिलाफ सघर्ष करता हुआ आगे बढा है। आदमी की आज तक की उन्नति की कहानी उसके आपसी सहयोग और बाधाओ के खिलाफ सघर्ष की कहानी है।

पहला सबक

शुरू-शुरू मे आदमी को नही मालूम था कि आग कैसे जलती है और पानी कहा से आता है। इसी प्रकार उसे और भी बहुतेरी बाते नही मालूम थी। समय-समय पर वह जगलो मे धाय-धाय जलती हुई आग की ऊची-ऊची लपटे देखता था और समझता था कि वह देवता की माया है। इसी प्रकार वह लहराती हुई नदियो को बहते देखता था, घटाटोप बादलो में से मूसलधार वर्षा होते देखता था और वह समझता था कि देवता पानी बरसाते है और नदिया देविया है।

वह प्रकृति की शक्तियो से डर कर उनकी पूजा करने लगा। उसको आशा थी कि पूजा से प्रसन्न होकर प्रकृति जहा एक ओर अपनी कृपा द्वारा उसे लाभ पहुचाएगी,

नहा उसे अपने कोप से भी बचाएगी। पर उसने अनुभव से सीखा कि केवल पूजा-पाठ काम नही आता। कभी पानी न बरसा और उसकी खेती सूख गई और कभी इतना मूसलधार पानी बरसा कि उसकी खेती बह गई।

उसने पूजा करना तो नही छोडा, पर पानी के देवता इन्द्र के सहारे बैठे रहना भी उसने स्वीकार नही किया। उसने कुए खोदे, तालाब बनाए और नदियो से पानी निकालने के तरीके खोज निकाले। अब वह अपनी बुद्धि और मेहनत से अपने खेतो की सिंचाई करने लगा। इस तरह के कामो मे उसे आपस मे मिल-जुल कर मेहनत करने की आवश्यकता पडी। इस प्रकार आदमी के आपसी सहयोग का सिलसिला शुरू हुआ। इसी आपसी सहयोग के बल पर वह प्रकृति की शक्तियो से टक्कर लेता हुआ, उनके खिलाफ संघर्ष करता हुआ आगे बढा। उन्नति की ओर आदमी का वह पहला कदम था। वहा से चल कर उसने आज तक उन्नति की अनगिनत मजिले तय की है।

आदमी की उन्नति के इतिहास को मोटे तौर पर पाच हिस्सो या पाच युगो मे बाटा जा सकता है (1) आदिम साम्यवाद का युग, (2) दासता का युग, (3) सामन्ती युग, (4) पूंजीवाद का युग, और (5) समाजवाद का युग।

आदिम साम्यवाद

हजारो साल पहले आदमी जगल मे घूम-फिर कर जीवन बिताता था। उसकी जरूरत बहुत कम थी। पेडो के फल खा लिये, नदी या झरने से पानी पी लिया, छालो और पत्तो से तन ढक लिया और कही आड खोज कर पड रहा। बस, यही जीवन था।

मगर ऐसी जिन्दगी मे जगली जानवरो से खतरा था। इसलिए आदमी ने शिकार करना सीखा और हथियार बनाए। वह मास खाने लगा और खाल के कपडे पहनने लगा। कई लोग मिल कर जगली जानवरो का मुकाबला करने लगे। जानवरो मे कुछ पालतू बनाने योग्य जान पडे। उन्हे पाल लिया। वे शिकार मे मदद करने लगे। कुछ जानवरो से दूध दुहा जाने लगा। जगली जानवरो से बचने और पालतू जानवरो की हिफाजत के लिए लोग सुरक्षित जगह पर मिल-जुल कर रहने लगे। खाल को सीने के लिए औजार भी बने। इस युग मे कोई किसी के अधीन न था। सब बराबर के सहयोगी थे। एक दूसरे की मदद करना हर एक का कर्त्तव्य था। भूमि, पालतू पशु, थोडे-से औजार और



आदिम पुरुष

परिश्रम के अलावा किसी के पास और कोई पूजी न थी। दूसरे को उसकी जरूरत की चीजें दे देने और उससे अपनी जरूरत की चीजे ले लेने का आम रिवाज था। सभी लोग मिल कर मेहनत करते थे। इस मेहनत मे सबका समान रूप से भला था। जब जरूरत पडी, तब सबने मिल कर मेहनत कर ली। मेहनत की जरूरत न रही, तो सबका समय आराम या हँसी-खुशी मे बीत गया। जगली जानवरो या दूसरे कबीले के लोगो से लडते समय बच्चो और पालतू जानवरो को सुरक्षित स्थान यानी घर मे छोड दिया जाता था। धीरे-धीरे उनकी देखरेख के लिए औरतो को घर मे छोड जाने का रिवाज बना।

पर धीरे-धीरे इस समानता के युग मे बडे और छोटे होने लगे। कुछ लोग मुखिया और अगुआ बनने लगे। ईर्ष्या और द्वेष उपजा। अपने और पराए मे भेद होने लगा। चीजे जमा करने की इच्छा बढी। समाज मे धनी और गरीब होने लगे। धनी लोग अपनी जरूरत से ज्यादा जमीन, औजार और पालतू पशु रखने लगे। गरीब उनके अधीन होने लगे। गरीब धनी लोगो के हुक्म पर काम करने लगे। धनी लोग स्वामी कहे जाने लगे और गरीब लोग दास। इस तरह, आदिम साम्यवाद का युग समाप्त हुआ और दासता का युग आया।

दासता का युग

जिन लोगो के पास अपनी जरूरत से ज्यादा जमीन, जगल, पालतू पशु और खेती के औज़ार थे, उन्हे काम लेने के लिए मातहतो यानी दासो की जरूरत पडी। दासो के परिश्रम से स्वामी की सम्पत्ति बढती थी। परिश्रम मे मकान बनाना, शिकार करना, जगल काटना, खेती करना, औजार बनाना, पालतू जानवरो को चराना, आदि सभी तरह के काम शामिल थे। जिस स्वामी के पास अधिक दास होते, वही अधिक सम्पत्ति वाला भी समझा जाता था। इसलिए स्वामियो मे एक-दूसरे से आगे



धनी आदमी गरीब को दास समझता था।

बढने के लिए सम्पत्ति के साथ-साथ दासो पर कब्जा करने की भी होड़ चली। इससे युद्धों के बीज पड़े।

स्वामियो को जरूरत पडी कि दास उनकी और उनकी सम्पत्ति की रक्षा के लिए लड़े। लेकिन दास स्वामी की इस इच्छा को पूरा करने के लिए खुशी से अपनी जान देने के लिए तैयार न थे। एक स्वामी के दासो मे आपसी मेल-जोल बहुत था। वे सब मिल कर काम करते थे। वे सब असन्तुष्ट थे कि उनके परिश्रम से स्वामी की सम्पत्ति बढ रही है, लेकिन वे दीन-के-दीन रह रहे है। एक दास पर सख्ती होती थी, तो दूसरो को उनके साथ सहानुभूति होती थी। धीरे-धीरे स्वामियो की समझ में यह बात आ गई कि यदि दासो को सम्पत्ति में हिस्सा न दिया गया, तो सम्पत्ति की रक्षा में उनकी दिलचस्पी नहो हो सकती। इसलिए दासों को भूमि देकर रैयत या किसान बना लिया गया। उन्ही में से स्वामी ने सिपाही भर्ती करके फौज बनाई। ये किसान और सिपाही मातहत तो थे, पर दास न थे।

सामन्ती युग

इस युग मे स्वामी सामन्त बन गए। अब उनके पास फौज थी। अनगिनत मातहत किसान थे। इन्ही सामन्तो को जमीदार, ताल्लुकदार, नवाब, राजा, महाराजा, बैरन, लार्ड, आदि अलग-अलग नामो से पुकारा गया है। इनका युग दुनिया के हर देश में सदियो तक रहा है। इस युग की कई खास बातें है। किसान के पास भूमि थी। वह भूमि पर मेहनत करके अन्न उपजाता था। किसान के ही घरों के लोग सिपाही बन कर सामन्त के लिए जान देते थे। युद्ध के लिए अच्छे-अच्छे हथियारो की जरूरत पडती थी। सामन्त के मातहत गांवो में ही इन हथियारो के बनाने वाले कारीगर पैदा हुए।

सिपाही सामन्त से ही वेतन पाते थे। उन्हें वेतन देने के लिए सिक्के का चलन हुआ। सिक्के की वजह से माल खरीदा और बेचा जाने लगा। कुछ लोग दुकानदारी का धन्धा करने लगे। जगह-जगह पर पैठ, बाजार, मडी और मेले लगने लगे, जिनमे पशु और माल बेचे और खरीदे जाते थे। देहात के कारीगर कपड़ा, औज़ार



इन्हीं सामन्तों को जमींदार, ताल्लुकदार, आदि नामों से पुकारा जाता था।

हथियार और जरूरत के दूसरे सामान बना कर बाजारों में बेचते थे। इस युग में लोगों की रोजी खेती, दस्तकारी, व्यापार या नौकरी हो गई थी। सामन्त इन किसानों, व्यापारियों और कारीगरों से उनकी आमदनी का एक हिस्सा कर के रूप में वसूल करता था। कर की वसूली वेतन पाने वाले नौकर करते थे।

सामन्तों को इस प्रकार बिना परिश्रम सम्पत्ति मिलती थी। इससे उनमें ठाट-बाट और आरामतलबी बढ़ी। जिस सामन्त का जितना बड़ा इलाका होता, जितनी अधिक रैयत होती, उसकी सम्पत्ति उतनी ही अधिक बढ़ती। इसीलिए सामन्तों ने एक-दूसरे के राज्य पर कब्जा करने की कोशिश शुरू कर दी। राज्यों में आपस में युद्ध होने लगे। आरामतलबी और युद्ध, दोनों में खर्च बढ़ता है, इसलिए सामन्तों को धन की ज्यादा जरूरत पड़ी। उन्होंने यह बढ़ा हुआ खर्च भी रैयत से वसूलना शुरू किया। किसान और देहाती कारीगर यों ही तबाह होने की हालत में थे। उनकी कमाई का काफी हिस्सा मंडियों के व्यापारियों की जेब में चला जाता था। उनके परिवार भी बढ़ रहे थे। बढ़े हुए परिवार का खर्च चलाना कठिन हो रहा था। इसलिए, सामन्तों ने जब कर बढ़ाया, तब किसान अपनी जमीन और कारीगर अपना धन्धा छोड़ कर भाग खड़े हुए और मंडियों में आकर बसने लगे। सामन्ती युग के अन्तिम दौर में मंडियां धीरे-धीरे शहर का रूप लेने लगीं। देहात से किसान और कारीगर रोजी की तलाश में



जिस सामन्त की जितनी बड़ी रैयत होती, उसकी सम्पत्ति उतनी ही अधिक होती।

शहरो मे इकट्ठा होने लगे, जो नौकरी, चाकरी या मजदूरी कुछ भी करने को तैयार थे।

मशीन का जन्म

भिन्न

ठीक इसी समय दुनिया मे एक नई घटना घटी। विज्ञान ने भाप से काम लेने की तरकीव मालूम कर ली। इससे पहले लोग आदमी, जानवर, हवा और पानी की शक्ति से ही काम लेते थे। अब भाप की शक्ति से भी काम लिया जा सकता था। चूंकि भाप की शक्ति आदमी, जानवर, हवा और पानी से कही अधिक होती है, इसलिए बडे-बडे कारखाने भाप से चलने सम्भव हो गए और यह भी सम्भव हो गया कि उनके द्वारा काफी सामान बनाया जाए। लेकिन बडे कारखाने बनाने के लिए बडी पूंजी की भी जरूरत थी। शहरो के व्यापारियो के पास पूंजी थी। व्यापारी काफी अर्से से व्यापार करते आ रहे थे। इनका व्यापार न केवल अपने देशो में, बल्कि दूसरे देशो मे भी फैला हुआ था। विदेशों से व्यापार करने के लिए इन व्यापारियो ने मिल-जुल कर बडी-बड़ी कम्पनियां बना ली थी, जैसे भारत से व्यापार करने के लिए इग्लैण्ड मे ईस्ट इंडिया कम्पनी बनी थी। इस कम्पनी ने भारत मे राज करना भी शुरू कर दिया था। यही हाल यूरोप की दूसरी कम्पनियो का भी था। एशिया और अफ्रीका मे व्यापार करके इन कम्पनियों ने धन जमा कर लिया था। इसी धन से उन्होंने बडे-बडे कारखाने बनाए, जो भाप से चलते थे। बाद में विज्ञान ने बिजली की शक्ति से भी काम करने की तरकीव निकाली और बहुत-से कारखाने बिजली से भी चलने लगे।

पूंजीवाद का युग

इसके बाद जो युग आया, उसको पूंजीवाद कहा जाता है। पूंजीपतियो ने बडे-बडे कारखाने खोले। इनमे गावों से आए हुए किसान और कारीगर मजदूर बन कर काम करने लगे। बडे-बडे कारखानो मे धडाधड़ माल बनने लगा। इस युग में छोटे कारीगर और किसान कारखानेदारो से बहुत पीछे रह गए। घरो मे छोटे औजारो से काम करने वाले कारीगर इतना ज्यादा माल तैयार नही कर पाते थे। कारखानेदार किसान को कच्चे माल की कीमत कम-से-कम देते हैं। मजदूरो को मजदूरी भी कम-से-कम दी जाती है। इसका फल यह हो रहा है कि कारीगर भी गरीब होता जा रहा है और

किसान भी। लोग बराबर गाव छोड़-छोड कर मजदूरी की खोज मे शहर की ओर खिचे चले आ रहे है। गावो की तबाही और शहरो में आबादी की बाढ पूंजीवादी युग की खास पहचान है।

इस युग मे पूजीपति अपने कारखाने मे माल इस्तेमाल के लिए नही, बल्कि मुनाफे के लिए तैयार कराता है। मुनाफे से पूजी बढती है, तो उससे नए कारखाने बनाए जाते है। उनसे मुनाफा बढता है। कारखानो मे तैयार माल देश मे ही नही, विदेशो मे भी बेचा जाता है। विदेशो मे माल विकने के लिए यह जरूरी है कि वहा ऐसे कारखाने न हो, जो इनके तैयार माल से मुकाबला करे। इस ख्याल से कि वे मुल्क आगे न बढ जाए, उन्हे गुलाम बनाने की कोशिश की जाती है। इसे साम्राज्यवाद कहते है। यह पूंजीवादी युग की एक खास देन है। दूसरे देशो को गुलाम बनाने या अपने असर मे रखने के लिए पूजीपतियो में एक होड-सी होती है, जिसका फल अक्सर युद्ध होता है। ये युद्ध विश्व-महायुद्ध तक का रूप ले लेते है।

होते-होते पूंजीवाद का यह फल होता है कि दुनिया दो भागो में बट जाती है। एक तरफ उन्नत पूंजीवादी देश और दूसरी तरफ पिछड़े हुए गुलाम या अधीन देश। उन्नत पूजीवादी देशो मे भी कुछ पूजीपतियो को छोड कर आम जनता मजदूर, नौकरी पेशा और गरीब रह जाती है। तब समाज के हित और पूजीपति के हित में सघर्ष शुरू हो जाता है। गरीब चाहते है कि जरूरी सामान सस्ता मिले। पूजीपति चाहते है कि माल के दाम चढ़े रहे।

यह सघर्ष तीन मोर्चों पर शुरू हुआ। तीनो मोर्चो पर सघर्ष करने वालो ने आपसी सहयोग किया। मजदूरो ने अपने संगठन बना कर मुनासिब वेतन और उचित सुविधाओ के लिए जोर लगाया। जनता ने पूंजीपति की मनमानी रोकने के लिए कानून बनवाने की जरूरत महसूस की। बड़े-बड़े आन्दोलन हुए कि कानून आम जनता की राय से ही बनने चाहिए। जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियो को कानून बनाने का हक इन्ही आन्दोलनो के कारण मिला। इसे लोकतन्त्र के लिए संघर्ष कहते है। पिछडे और गुलाम देशो की जनता ने विदेशी गुलामी के खिलाफ आजादी की लडाई छेड़ी। आज अधिकाश देश विदेशी गुलामी की जजीरे तोड़ कर आजाद हो चुके है। इस दौर मे कई नए विचार सामने आए। उनमें से कुछ ये है

कारखाने मजदूरो के बल पर चलते है, इसलिए उनका प्रबध मजदूरो और आम जनता की इच्छा के अनुसार होना चाहिए। राज्य मे कानून जनता के लिए बनते

है इसलिए कानून बनाने का भी हक जनता को ही होना चाहिए। हर देश की जनता को इस बात का हक होना चाहिए कि वह अपनी मर्जी से अपनी तरक्की का रास्ता चुने। यह बेजा बात है कि कोई देश किसी दूसरे देश को गुलाम और पिछड़ा हुआ रखे। इन विचारो ने पूजीवाद और साम्राज्यवाद की जडे हिला दी। परन्तु पूजीपति और साम्राज्यवादी, दोनो मिल कर भी जनता की महान् शक्ति के सामने टिक न सके। यह बात आखिर मान ली गई कि आदमी को हक होगा कि वह किसी के मुनाफे के लिए मेहनत नही करेगा, बल्कि अपने और पूरे समाज के लिए मेहनत करेगा। यही असूल आदिम साम्यवाद मे भी था। आज इसी को समाजवाद कहा जाता है।


कारीगर और पूजीपति

समाजवाद

आज कई देशो मे पूजीवाद और साम्राज्यवाद आखिरी सासे ले रहा है, और कई देशो मे समाजवाद के प्रयोग हो रहे है। सोलह वर्ष हुए, भारत आजाद हुआ है। भारतीय जनता आज समाजवाद के दरवाजे पर खड़ी है।

समाजवाद में पूरी जनता को सबके हित मे अपना हित देख कर आपसी सहयोग करना होता है। यह तभी सम्भव है, जब सबकी मेहनत का फल कुछ लोगो को नही, बल्कि सब लोगो को मिले। कल-कारखानो मे जो कुछ बने या उससे जो मुनाफा हो, उसका इस्तेमाल एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियो के गुट के भले के लिए न होकर पूरे समाज के भले के लिए हो। कारखानो पर एक पूजीपति या कई पूजीपतियों के गुट का अधिकार होने के बजाय उन पर पूरे समाज का अधिकार हो। इसलिए कहा जाता है कि पैदावार के साधन पर व्यक्तियो का नही, बल्कि समाज का अधिकार होना चाहिए। कल-कारखाने भाप, बिजली, आदि की शक्ति, नई वैज्ञानिक खोजे; भूमि, उसके जगल और खनिज पदार्थ—इन सबकी गिनती पैदावार के साधनो में की जाती है।

इस सिलसिले मे यह सवाल किया जाता है कि यदि सब साधन समाज के हो गए, तो व्यक्ति का क्या रहेगा? दूसरे शब्दो में यह सवाल यो समझना चाहिए कि व्यक्ति का समाज से क्या नाता होगा। समाजवाद के युग में व्यक्ति और समाज मे भेद नही रह जाता। व्यक्ति समाज का छोटा रूप और समाज व्यक्ति का बड़ा रूप हो जाता है।

किसी व्यक्ति का अहित हो, तो पूरे समाज का अहित हुआ। समाज का अहित हो, तो हर व्यक्ति का अहित हुआ। यहां तक कि अहित करने वाले व्यक्ति का अपना भी अहित हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति का हित समाज का हित और समाज का हित हर व्यक्ति का हित हुआ। ऐसी हालत में समाज के लिए सब व्यक्तियों में सहयोग ही हो सकता है। व्यक्ति और समाज में कभी संघर्ष नहीं हो सकता। आदमी का आदमी से संघर्ष करना समाजवाद के युग में असम्भव है। इस युग में तो संघर्ष केवल प्रकृति से होगा। इस संघर्ष में सब मनुष्य समाज के हित के लिए एक-दूसरे से सहयोग करेंगे।

शुरू में हमने देखा कि मनुष्य का आपसी संघर्ष इसलिए शुरू हुआ कि कुछ लोगों ने अपनी जरूरत से ज्यादा चीजों पर कब्जा कर लिया था। कुछ लोगों के पास अधिक सम्पत्ति हो और कुछ लोगों के पास न हो या बहुत कम हो, तो संघर्ष जरूर होगा। इसीलिए कहते हैं कि मनुष्य का आपसी संघर्ष असमानता के कारण होता है। इससे यह मालूम हुआ कि यदि समाजवाद के युग में असमानता रही, तो इस युग में भी आपसी संघर्ष हो सकता है।

भारत में सहयोग

भारत आजाद देश तो है, लेकिन अभी पिछड़ा हुआ है। आजाद भारत की आजादी तभी पक्की होगी, जब वह इस काबिल हो जाएगा कि उन्नत देशों के कन्धे-से-कन्धा मिला कर खड़ा हो सके। दो सौ साल की गुलामी के दौर में हम उन्नति की दौड़ में और देशों से बहुत पीछे रह गए हैं। हमें जल्द-से-जल्द उनके बराबर पहुंचना है। इस पिछड़ेपन को जल्द-से-जल्द दूर करने के लिए हमारी सरकार ने देश में पंच-वर्षीय योजनाएं शुरू की हैं। दो योजनाएं पूरी हो चुकी हैं। तीसरी योजना का तीसरा वर्ष चल रहा है। इन योजनाओं को समाजवाद की तरफ पहले कदम कह सकते हैं। इस समाजवाद को जल्द लाने के लिए योजना के साथ पूरी जनता का सहयोग, और इस योजना के रास्ते में जो बाधाएं आए, उनके साथ संघर्ष जरूरी है।

तीसरी योजना के तीन अंग हैं। पहले अंग में बड़े-बड़े कारखानों को कायम करना है, दूसरे अंग में छोटे-छोटे धन्धों और कारीगरों को सहायता देना और तीसरे अंग में खेतिहरों और खेती की तरक्की के लिए काम करना है। तीनों अंगों की अलग-अलग तरक्की तो होगी ही, इन तीनों अंगों को भी एक-दूसरे से सहयोग करना होगा, तभी योजना सफल होगी।



दुनिया के मजदूर, इकट्ठे हो जाओ !

नमूने के लिए बडे कारखानो को ले लीजिए। इन कारखानो मे मजदूरो की पचायतें बनेंगी। इन पचायतो को कारखाने के मालिको और सरकार के प्रतिनिधियो का सहयोग लेकर कारखानो का पूरा प्रबंध करना है। प्रबध मे काम, मजदूरी, कारखाने की तरक्की, सस्ता और काफी माल तैयार करने की कोशिश, मजदूरो की दवादारू, पढाई-लिखाई, खेल-कूद, सभी कुछ शामिल है।

इसी तरह छोटे उद्योग-धन्धो के सहकारी सगठन बनेंगे। इन छोटे-छोटे धन्धो के सामने सबसे बडी कठिनाई यह है कि न उनके पास पूंजी है, न माल की निकासी के अच्छे जरिए है। सहकारी सगठन इन कठिनाइयों का हल निकालेगे।

सबसे ज्यादा गरीबी और तबाही देहात में है। भारत की अधिकाश आबादी गावो में बसी है। इसीलिए कहा जाता है कि असली भारत गावो मे रहता है। गावो की हालत सुधारे बिना भारत को उन्नत देश नही कहा जा सकता। गावो मे खास उद्यम खेती है और जो थोडे-बहुत कारबार है, उनकी भी उन्नति खेती की उन्नति पर निर्भर है। खेती की हालत आज अच्छी नहीं है। खेत छोटे है। गरीबी के कारण किसान अच्छी खाद और अच्छे बीज का उपयोग नही कर पाते। किसानो के बच्चे अच्छी शिक्षा नही पा सकते। इसीलिए खेती के अच्छे ढग भी वे नही जान पाते। किसानों के अनपढ होने का फायदा बनिये, सूदखोर महाजन, सरकारी कारिन्दे सभी उठाते है। खेतो की सिंचाई का उचित प्रबध नही है और बरसात अक्सर धोखा देती है। सरकार बीज और खाद का प्रबध कर रही है। लेकिन इतने से ही सारी

मुसीबते दूर नही होगी। तीसरी योजना मे गाव की पचायतो को बेहतर करना भी शामिल है। ये पचायतें गाव की भलाई के लगभग सभी काम करेंगी और ये पचायते सबके सहयोग से बनेगी। दवादारु, पढाई, सडके, तालाब, रोजगार, आदि का पूरा प्रबध यही पचायते करेगी।

आज हम सहयोग और सघर्ष के उस नए मोड पर है, जहा सब मनुष्य आपस में सहयोग करके प्रकृति की उन बाधाओ से सघर्ष करेंगे, जो हमारी उन्नति के रास्ते मे आएगी। शास्त्रो में कहा गया है—"सघे शक्ति: कलौ युगे" (कलियुग मे सघ यानी सहयोग ही शक्ति है)। कलियुग को अब कलयुग यानी कल-कारखानो का युग समझना चाहिए। आज सभी समझदार कौमे आपस मे सहयोग करके, प्रकृति से संघर्ष करके, उससे नई शक्ति जीत कर पूरे समाज का जीवन सुखी बनाने के लिए आगे बढ रही है।

खेल कूद

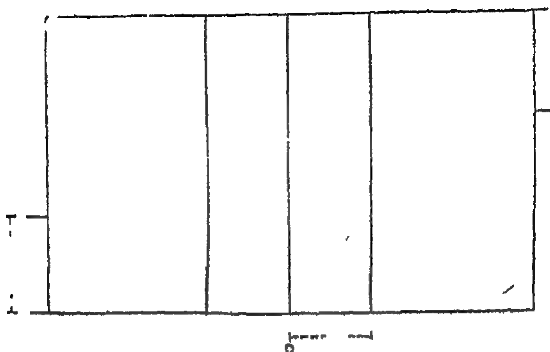
(1)

वालीबाल



वालीवाल का खेल भारत मे अमेरिका से आया है। कुछ वर्ष पहले इस खेल को भारत के लोग जानते भी न थे। लेकिन थोडे ही दिनो मे इसका प्रचार हो गया। अब तो यह खेल स्कूलो, कालेजो, रेलवे स्टेशनो, पुलिस थानो और फौजी छावनियो में हर जगह खेला जाता है। भारत के चुने हुए खिलाडी वालीवाल खेलने के लिए विदेशों की यात्रा करते है और विदेशो के खिलाडी वालीवाल खेलने हमारे देश मे आते है। वदे हुए खेल को मैच कहते है और खिलाडियो की टोली को टीम।

इस खेल के अधिक प्रचार का सबसे बडा कारण यह है कि और खेलो के मुकावले मे यह सस्ता है, इसे खेलना आसान है और यह खेल दिलचस्प भी खूब होता है। फील्ड यानी खेल का मैदान वनाना भी वहुत आसान है। फील्ड के लिए अधिक जमीन की जरूरत नही होती। फुटवाल की गेद जैसी, पर उससे कुछ छोटी, इसकी गेद होती है। और 60 फुट लम्बे तथा 30 फुट चौडे चौरस मैदान की लम्बाई के बीचोबीच दोनो ओर एक-एक वल्ली गाड कर कही भी फील्ड वनाया जा सकता है। उन दोनो वल्लियो मे एक जाल वाधा जाता है, जिसे नेट कहते है। नेट जमीन से 8 फुट 2 इच की ऊचाई पर वाधा जाता है। नेट की लम्बाई 31 फुट 2 इच और चौडाई 3 फुट सवा

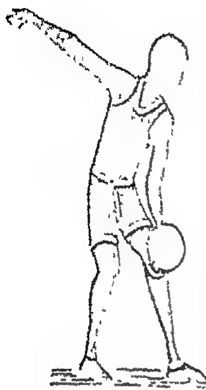


वालीवाल का मैदान

3 इंच होती है। नेट के दोनो तरफ मैदान के दो बराबर भाग बन जाते है। उन्हे कोर्ट कहते हैं।

इस खेल मे दो टीमे एक-दूसरे के खिलाफ खेलती है। एक टीम के खिलाडी फील्ड मे नेट के एक तरफ और दूसरी टीम के खिलाडी नेट की दूसरी तरफ खडे हो जाते है। हर टीम मे 12 खिलाडी होते है। पर एक-एक समय मे दोनो ओर के केवल 6-6 खिलाडी ही खेलते है। बाकी खिलाडी बदली के लिए तैयार खडे रहते है। खिलाडी बदलने के लिए हर टीम का कप्तान रेफरी से 1 मिनट के आराम की माग कर सकता है। उस एक मिनट के समय को टाइम आउट कहते है। टाइम आउट मे खिलाडी का बदलना आवश्यक है। टाइम आउट मे सब खिलाडी मैदान से बाहर नही जा सकते। केवल एक खिलाडी बाहर जाता है और उसके बदले मे दूसरा मैदान मे आ जाता है। वह बाहर गए हुए खिलाडी की जगह पर ही खेल सकता है। मैचो मे हर खिलाडी की पीठ पर नम्बर होता है।

दोनो टीमो के 6-6 खिलाडी अपनी-अपनी कोर्ट में तीन-तीन की दो कतारो मे खडे होते है। तीन खिलाडी तो नेट से दस फुट की दूरी पर एक लाइन मे खडे होते है, और बाकी तीन उनसे बीस फुट पीछे एक लाइन मे खडे होते है। पहली पक्ति को हमला करने की रेखा कहते है और दूसरी पक्ति को बचाव की रेखा।



दाहिने कोने का एक खिलाड़ी सर्विस करता है।

किस टीम को कोर्ट के चुनाव का अधिकार हो, यह बात धनपुतली या सिक्के को उछाल कर तय की जाती है। जो टीम जीतती है, वह कोर्ट चुनती है और दूसरी टीम को पहली सर्विस मिलती है। सर्विस पाने वाली टीम के बचाव रेखा के खिलाड़ियो में से, दाहिने कोने का एक खिलाड़ी, बाए हाथ में गेंद लेकर उसे दाहिने हाथ की हथेली से मार कर नेट से बिना टकराए नेट के उस पार भेजता है। गेंद के इस तरह फेंके जाने को ही सर्विस कहते हैं। अगर गेंद नेट से टकरा जाए या दूसरी कोर्ट की सीमा के बाहर गिरे, तो सर्विस दूसरी टीम को मिल जाती है। अगर सर्विस की गेंद नेट को पार करने से पहले सर्विस करने वाली टीम के खिलाड़ी से छू जाए, तो भी सर्विस दूसरी टीम को मिल जाती है।

टीमो के कप्तान पहले से ही यह तय कर लेते है कि खेल शुरू होने पर कौन खिलाडी किस जगह पर खड़ा होगा। हर खिलाडी, अपनी सीमा में रह कर, आगे-पीछे दाए-बाए हट कर, गेंद को इस तरह उछालता है कि या तो गेंद दूसरी कोर्ट मे चली जाए या उसकी ही टीम के किसी दूसरे खिलाडी को मिल जाए, ताकि वह उसे इस ढग से नेट के उस पार फेंके कि दूसरी टीम के खिलाडी गेंद को लौटा न सके। दूसरी टीम के खिलाडी अगर गेंद को न लौटा पाए और गेंद उनके कोर्ट मे गिर जाए, तो सर्विस करने वाली टीम एक नम्बर जीत लेती है। लेकिन सर्विस करने वाली टीम अगर गेंद न वापस कर पाए और गेंद उसके कोर्ट में गिर पड़े, तो वह केवल अपनी सर्विस गवाती है। गेंद को दूसरी ओर लौटाने मे तीन खिलाडियो से अधिक के हाथ गेंद पर नही लगने चाहिए और यह भी जरूरी है कि उनके हाथ बारी-बारी से गेंद पर लगे। टीमो के नम्बर गिनने मे सर्विस करने वाली टीम के नम्बर पहले बताए जाते है, जैसे 12 10। इसका मतलब हुआ कि सर्विस करने वाली टीम के 12 नम्बर है और दूसरी के 10।

जब तक एक टीम की सर्विस लगातार चालू रहती है, तब तक दोनो टीमो के खिलाडी अपनी-अपनी जगह पर ही खेलते रहते है। लेकिन सर्विस बदलने पर जिस टीम को सर्विस मिलती है, उस टीम के खिलाडी बाए से दाहिने एक-एक जगह आगे खिसक जाते हैं। इसी तरह फिर सर्विस बदलने पर दूसरी टीम के खिलाडी अपनी जगह बदलते

है। यह [illegible] और खिलाड़ी को [illegible] जगह से खेलने का [illegible] मिल जाता है।

वालीबाल [illegible] है। एक सेट 15 नम्बरों का होता है। जो टीम 15 नम्बर पहले बना ले, वह जीत जाती है। इसके बाद दोनों टीम पाले बदल लेती हैं।

[illegible] सेट के [illegible] में विजयी मानी जाती है। मगर किसी सेट में दोनों टीमों के [illegible] नम्बर आ जाएँ तो जो टीम उसके बाद एक साथ दो नम्बर [illegible], वह जीत जाती है।

कोर्ट बदलने के बाद अगर एक टीम के खिलाड़ी आगे-पीछे होने की तरतीब बिल्कुल ही बदल दें, तो भी कोई हर्ज नहीं होता। तीन सेट के मैच में अगर दोनों टीम एक-एक सेट जीतें तो तीसरे सेट में टीम के आठ नम्बर जीतने के बाद कोई भी टीम रेफरी से कोर्ट बदलने की प्रार्थना कर सकती है।

वार के स्वागत के लिए तैयार

अगर गेंद एक टीम के किसी खिलाड़ी को भी न छूकर उसके बाहर गिर जाए, तो उस टीम को एक नम्बर मिल जाता है। लेकिन अगर सर्विस दूसरी टीम की हो, तो उसे सर्विस मिल जाती है। लेकिन अगर उस टीम के किसी खिलाडी से छू जाने के बाद गेंद बाहर गिरे, तो दूसरी टीम की सर्विस कायम रहती है और उसे एक नम्बर का लाभ भी हो जाता है।

खेलते समय गेंद कमर के ऊपर कही भी लगे, तो कोई हर्ज नही है। मगर गेंद को रुकना नही चाहिए। उसे तुरन्त उछालना चाहिए। सर्विस मे नेट से टकरा कर गेंद को रुकना नही चाहिए। ऊपर से नेट को छूता हुआ जाने पर भी सर्विस ठीक नही मानी जाती। रुकने पर तो सर्विस छिन जाती है, पर ऊपर से नेट को छूकर जाने मे दुबारा सर्विस करनी पडती है। सर्विस के बाद गेंद लौटाने की कोशिश मे यदि गेंद दो बार तक

नेट से टकरा कर एक तरफ रह जाए और तीसरी वार नेट को ऊपर से छूती हुई पार हो जाए, तो भी कोई हर्ज नही है। मगर यदि तीसरी वार भी टकरा कर रह जाए, तो सर्विस या नम्बर का नुक्सान होता है। अगर गेद सर्विस करने वाली टीम के कोर्ट मे तीसरी वार टकरा कर रह जाए, तो केवल सर्विस जाती है और यदि दूसरी टीम के कोर्ट मे रह जाए, तो वह एक नम्बर हारती है। किसी खिलाडी को तो नेट कभी भी नही छूना चाहिए।

वालीवाल का खेल

यदि एक टीम के दो खिलाडी एक साथ गेद को छू दे, तो गेद को एक ही बार छूना माना जाएगा। अगर दोनो कोर्टो का एक-एक खिलाडी गेद को नेट के ऊपर एक साथ छू दे, तो उसके बाद किसी भी कोर्ट मे गेद का आना नए सिरे से माना जाएगा और कोर्ट की टीम को उस गेद मे दुवारा 3 वार हाथ लगाने का अधिकार मिल जाएगा।

यदि कोई भी टीम किसी नियम को तोड़ दे, तो दूसरी टीम को नम्बर मिल जाता है। टाइम आउट मे कोई खिलाड़ी नियम के विरुद्ध कोर्ट से निकले, तो भी यही नतीजा होता है।

अगर खेल पाच सेट का हो, तो पहले तीन सेट तक हर सेट के बाद दो मिनट की छुट्टी होती है, जिसमे खिलाड़ी या दूसरे लोग भी कोर्ट के बाहर-भीतर आ-जा सकते है। उसके वाद चौथे सेट के अन्त मे पाच मिनट की छुट्टी होती है।

वालीवाल के खेल मे कई अग्रेजी शब्दो का प्रयोग होता है। उन्हे ठीक से समझे विना खेल का पूरा आनन्द नही उठाया जा सकता।

(1) **डेडबाल** गेद की उस हालत को कहते है जब उसके गिरने या छूने से किसी तरफ का नम्बर नही घटता-वढ़ता। यह तब होता है, जब किसी टीम को एक प्वाइट मिल गया हो और नई सर्विस न हुई हो। उस बीच मे खेल रुक जाता है। रुके हुए खेल मे गेद को 'डेडबाल' कहा जाता है।

(2) टचबाल उस समय होता है, जब कोई खिलाड़ी गेंद को छू भर दे। टचबाल से बहुधा हार जीत में बदल जाती है। मान लीजिए एक कोर्ट में से फेंकी गेंद दूसरी कोर्ट के बाहर गिरने वाली है। अगर वह बाहर गिर जाए, तो गेंद फेंकने वाली टीम एक प्वाइंट गवाएगी। लेकिन अगर सीमा से बाहर गेंद गिरने से पहले ही दूसरी टीम का कोई खिलाडी उसे छू भर दे, तो फेंकने वाली टीम को एक प्वाइंट मिल जाएगा। कोई गेंद बिल्कुल ठीक जा रही हो, लेकिन फेंकने वाली टीम का ही कोई खिलाडी उसे अनुचित रीति से छू दे, तो एक प्वाइंट दूसरी टीम को मिल जाएगा।

(3) होल्डिंग : अगर गेंद खिलाड़ी के हाथ लगते ही फौरन न उछले और कुछ देर हाथो में रुक जाए तो उसे 'होल्डिंग' कहते हैं। सर्विस करते समय सर्विस करने वाले के अलावा और कोई गेंद की होल्डिंग करे, तो दूसरी टीम को एक प्वाइंट मिल जाता है।

(4) ब्लाकिंग : दूसरी टीम द्वारा मारे गए गेंद को जाल के पास रोकने को ब्लाकिंग कहते हैं।

(5) फाउल : नियम विरुद्ध खेलने को 'फाउल' कहते हैं।

(6) मैच खिलाने वाले जज को रेफरी कहते हैं। वह नियमो के अनुसार खेल को जारी रखता या रोकता है। वह बताता है कि किसने कब फाउल किया। यदि कोई खिलाडी शरारत करे, तो वह उसको फील्ड से निकाल सकता है। खेल के सिलसिले में हर बात के फैसले का अधिकार केवल रेफरी को होता है। रेफरी के फैसले को बदलने का अधिकार किसी को नही होता :

भारत में बहुत-से लोग गेंद को एकदम दूसरी कोर्ट में पहुचा देते है। यह तरीका गलत है। ससार भर में खेल खेलने का जो ढग है, उसमें गेंद को 'पास' देकर नेट के पास खड़े खिलाडी के पास पहुचाते हैं, ताकि वह उसे दूसरी कोर्ट में इतने जोर से मारे कि वह उस कोर्ट के खिलाड़ियो से उठ न सके। जो टीमें पास नही दे सकतीं, बहुधा उन्हे हार का ही मुह देखना नसीब होता है।

वालीबाल का खेल गावो और शहरो के लिए समान रूप से आसान है। इसी से इसकी लोकप्रियता बढती जा रही है।

(2) ट्रैक एण्ड फील्ड

ट्रैक ऐण्ड फील्ड नाम से कई खेलो का एक साथ बोध होता है। इसमे अनेक प्रकार की दौडे, कूद और हर्डलिग शामिल है। ये खेल जिस रूप मे आजकल खेले जाते है, उस रुप मे इन खेलो की नीव सन् 1894 मे फ्रास के बैरन द का वर्तिन ने डाली थी। उन्होंने सोचा था कि इन खेलो के बहाने खिलाडी, विद्वान, और राज्य के अधिकारी एक-दूसरे से मिल-जुल सकेंगे। पर 'ट्रैक ऐण्ड फील्ड' के खेलो का चलन भारत में कुछ ही समय से हुआ है। गवर्नमेंट कालेज लाहौर के प्रिंसिपल श्री एच० सी० बक ने भारत मे सबसे पहले इन खेलो को शुरु किया था। इसमे पटियाला के राजा भूपेन्द्र सिह और दौराबजी ताता ने बडी मदद की थी। ट्रैक ऐण्ड फील्ड के कुछ खेलो का नीचे वर्णन किया जाता है।

(1) छोटी दौड़

100 मीटर, 200 मीटर और 400 मीटर की दौडे छोटी दौड मानी जाती है। यूरोप और अमरीका के खिलाडियो मे कई अच्छे दौडने वाले है, जिनके दौडने मे एक खास कला होती है। भारतीय दौड़ने वालो मे अभी इस कला की कमी है। छोटी दौडे लाइनें खीच कर उनके बीच मे दौडी जाती है। दो लाइनो के बीच मे एक खिलाडी दौड़ता है।

भारत मे अब तक सबसे तेज दौडने वाले ने 10 4 सेकड मे 100 मीटर की दौड पूरी की है। पर ससार मे यह दौड 10 1 सेकड मे पूरी की जा चुकी है। पिण्टो, वी० के० राय और मिल्खा सिह भारत में सबसे तेज दौड़ने वाले माने जाते है।

400 मीटर की दौड छोटी दौडो मे सबसे कठिन मानी जाती है क्योकि इसमे काफी दूर तक दम साधना पडता है। अमरीका के ओटिस डेविस और जर्मनी के श्री काफमान ने 400 मीटर की दौड सबसे कम समय मे 44 9 सेकड मे पूरी की थी।



ओलिम्पिक खेलों में 100 मीटर की दौड़

(2) मझोली दौड़

400 मीटर से 1500 मीटर तक की दौड़ मझोली दौड़ कही जाती है। इसमें खिलाडी पर दो लाइनो के बीच दौडने की पाबन्दी नही होती। कई लोग एक साथ दौड सकते है। भारत मे 400 मीटर की दौड़ मे मिल्खा सिह का और 1500 मीटर की दौड मे महेन्द्र सिह का रिकार्ड है। संसार के अच्छे दौडने वालो मे विट्फील्ड, मेरन्सा, बैनिस्टर, लैंडी आदि के नाम लिए जाते है।



थोडी दूरी की दौड़ शुरू करते समय



दौड़ने के लिए तैयार चार्ली पैडाक



(3) लम्बी दौड़

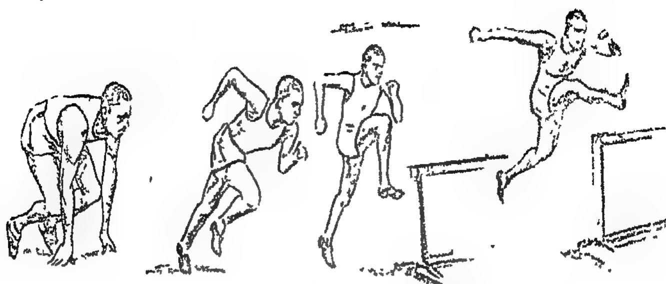
लम्बी दौड वह है, जिसमे 5 हजार से 10 हजार मीटर की दौड होती है। इन दौडों मे दम साधने के अलावा अधिक तेजी की भी जरूरत पडती है, क्योकि सबसे कम समय मे पूरा फासला तय करने वाला ही जीतता है। यही नही, कम-से-कम समय मे फासला तय करने का पिछला रिकार्ड तोड़ने वाले खिलाडी का दुनिया मे नाम भी होता है।

'मैरेथन' नाम की खास लम्बी दौड है, जो 26 मील की होती है। 'मैरेथन' यूनान का एक सिपाही था, जो लडाई की खबर अपनी चौकी तक पहुचाने के लिए 26 मील तक बहुत तेज दौडा था और चौकी पर पहुच कर खबर देने के बाद मर गया था। उसी वीर सिपाही की याद में यह दौड शुरू की गई है।

'मैरेथन' दौड को छोड़ कर दूसरी सब लम्बी दौड़ें 400 मीटर गोलाई वाले मार्ग के कई चक्कर लगा कर पूरी की जाती है।



दौड़ते समय टांगों की अवस्था



हर्डल दौड

हर्डल (रुकावट)

हर्डल शब्द अंग्रेजी का है। इसका अर्थ 'रुकावट' है। यह भी एक प्रकार की दौड है, जिसमे दौडने वाले को मार्ग में कई रुकावटें छलांगते हुए दौड जारी रखनी पडती है। हर्डल कई किस्म के होते है। पुरुषो के लिए 110 और 440 मीटर की तथा स्त्रियो के लिए 80 मीटर की हर्डल दौडें होती है।

हर्डल दौडे 110 मीटर से 880 मीटर तक की होती है। 80 मीटर की दौड़ केवल स्त्रियो और बच्चो के लिए होती है। हर्डल दौडो मे रास्ते में कई हर्डल या रुकावटे होती है। हर्डल लकडी या लोहे के बने होते है और 4 फुट चौडे तथा साढे तीन फुट ऊंचे होते है। इनके पीछे 8 पौंड का वजन रखा होता है। हर्डल को कतरा कर या गिरा कर निकलने का नियम नही है।

भारत में श्री चन्द्र, जगमोहन सिह और जगदेव सिंह हर्डल दौड के सबसे अच्छे खिलाड़ी माने जाते है।

रिलेज

इन खेलो मे केवल चार की 100 और 400 मीटर की दो दौडे होती है। चार आदमियो की एक टोली होती है। चारो खिलाडी एक के बाद एक दौडते है। एक

हर्डल दौड समाप्ति पर



फुट का एक डंडा हर खिलाड़ी को एक के बाद एक रास्ते में पकड़ाया जाता है। बिना डंडा लिए कोई नहीं दौड़ सकता। डंडा बदलने की कुशलता और तेजी पर ही टीम की जीत निर्भर है। इस खेल में बहुत अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है।

कूद

(1) लम्बी कूद

दौड़ और हर्डल की तरह कूद के खेल भी कई तरह के होते हैं। चार तरह की कूदें संसार भर में प्रचलित हैं।

संसार में सबसे लम्बी छलांग का रिकार्ड अमरीका के आर० बास्टन का है, जिसने सन् 1962 में 27 फुट 1½ इंच लम्बाई की छलांग लगाई थी।

(2) ऊंची कूद

अभी कुछ समय पहले तक ऊंची कूद का खेल दो खम्भों में बराबर ऊंचाई पर डोरी बांध कर खेला जाता था। लेकिन आजकल लकड़ी के खम्भों और सूत की डोरी के बजाय अल्मीनियम के सामान का इस्तेमाल होने लगा है। कूद कर खिलाड़ी के गिरने की जगह पर 13 फुट लम्बा और 13 फुट चौड़ा अखाड़ा-सा खोद दिया जाता है, जिसमें भुरभुरी मिट्टी या महीन बुरादा भर दिया जाता है।

चार्ल्स डूमस और यूरी स्टेपनोव ऊंची कूद में संसार के अच्छे खिलाड़ी माने जाते हैं। दोनों 7 फुट से अधिक ऊंचाई कूद कर पार कर चुके हैं। संसार में सबसे ऊंची कूद का रिकार्ड रूस के वी ब्रुमेल का है, जिसने 7 फुट 4 इंच की ऊंची छलांग लगाई है।

(3) हाप, स्टेप, एण्ड जम्प

यह खेल लम्बी कूद से बहुत हद तक मिलता-जुलता है। फर्क सिर्फ इतना है कि इस कूद में पहले एक कदम पर उछला जाता है। इसके बाद एक कदम लेकर तब छलांग मारी जाती है। कूदते समय जिस तख्ते पर पैर रखने होते हैं, उससे 30 फुट के फासले पर अखाड़े जैसा गड्ढा होता है, जिसमें खिलाड़ी छलांग लगाता है। भारत में महेन्द्र सिंह

इस कूद में 50 फुट 3 इच की लम्बाई तक कूद चुके है। दुनिया में पोलैण्ड के जे० श्मिग्न का इस खेल मे 55 फुट $10\frac{1}{2}$ इच का रिकार्ड है।

(4) पोल वाल्ट

यह एक प्रकार की ऊंची कूद है, जिसमें एक बास की मदद ली जाती है। कूदने वाला बास लिए हुए दौड़ता है और अखाड़े के पास रखे बक्से में बास टिका कर उसी के सहारे अधिक-से-अधिक ऊंचाई तक उठता हुआ बास को अलग फेंक कर कूद जाता है। निश्चित ऊंचाई पर एक डंडा बंधा होता है। उसी के ऊपर बास छोड़ कर खिलाडी उस पार कूद कर अखाडे में गिरता है।

यह कूद देखने मे बडी मनमोहक लगती है। भारत में अभी इसका अधिक प्रचार नही है। इसीलिए भारत में इसके अच्छे खिलाडी भी नही है। फिनलैण्ड के पी० निकुला 16 फुट $2\frac{1}{2}$ इन्च की ऊंचाई कूद कर दुनिया में नाम कमा चुके है।

फेंक

(1) गोला फेंकना

यह खेल आदमी की दूर तक फेंकने की शक्ति और योग्यता की जाच के लिए खेला जाता है।

पुरुषो को 16 पौंड का गोला और स्त्रियो को 8 पौंड 13 औंस का गोला फेंकना पडता है। 7 फुट व्यास के एक घेरे के अन्दर खडे होकर या घेरे के भीतर दौड़ कर गोले को फेंकना पडता है।

भारत मे अभी तक डी० ईरानी सबसे अधिक दूरी तक गोला फेंकने वाले माने जाते है। ससार मे अमरीका के डी० लांग अन्य सब खिलाडियो को पछाड़ चुके है। उनका गोला 65 फुट $10\frac{1}{2}$ इच दूर गिरा था।

(2) चक्का फेंकना

इस खेल में गोले के बजाय लकड़ी या लोहे का बना चक्का फेंका जाता है, जिसका वजन 4 पौंड 4 औंस होता है। इसको 8 फुट व्यास के एक घेरे में रह कर फेंकना होता है। स्त्रियों के लिए चक्का छोटा और हल्का होता है।

यह खेल सबसे पहले यूनान में आरम्भ हुआ था, जिसे बाद में सभी देशों ने अपना लिया।

भारत में प्रद्युम्न सिंह और उत्र मोहिनी इस खेल के चैम्पियन हैं।

(3) भाला फेंकना

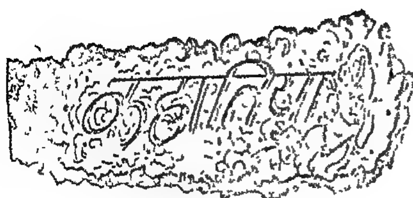
इस खेल में यह देखा जाता है कि कौन कितनी दूर भाला फेंक सकता है। पुरुषों को साढ़े 8 फुट लम्बा भाला फेंकना होता है, जिसका वजन 1 पौंड 12 औंस होता है। स्त्रियों का भाला छोटा और हल्का होता है। फेंकने वाला कुछ दूर भाग कर भाला फेंकता है। भारत में अवतार सिंह पहले पुरुष हैं, जो 200 मीटर से ऊपर की दूरी पर भाला फेंकने में सफल हुए हैं। भारतीय स्त्रियों ने इस खेल में भाग लेना कुछ ही समय में शुरू किया है और भारत में ई० जे० डेवनपोर्ट का 145 फुट 5 इंच की दूरी पर भाला फेंकने का रिकार्ड है।

संसार में इस समय 12 पुरुष ऐसे हैं, जो 260 फुट से भी दूर तक भाला फेंक चुके हैं। इटली के सी० लीवोर का 284 फुट 7 इंच की दूरी पर भाला फेंकने का रिकार्ड है।

(4) लंगर फेंकना

यह बड़ा प्राचीन खेल है। प्राचीन काल में पानी के जहाज लंगर डाल कर रोके जाते थे। अब भी बड़ी-बड़ी नावों को लंगर डाल कर ही रोकते हैं। लंगर इतना भारी होता है कि तेज लहरों या नदी के बहाव के मुकाबले में भी जहाज या नाव को एक जगह रोके रहे। लंगर फेंकने का अभ्यास करने के लिए ही यह खेल शुरू किया गया था।

आजकल लंगर फेंकने के खेल में लोहे की 4 फुट लम्बी जंजीर में बंधे एक लोहे के गोले का इस्तेमाल होता है। गोले का वजन 16 पौंड होता है। जंजीर को पकड़ कर गोले को नचाते हैं और फिर उसे दूर फेंकने की कोशिश करते हैं। फेंकने वाले को 8 फुट व्यास के घेरे के भीतर ही रह कर लंगर को फेंकना पड़ता है। भारत में देवीदयाल 166 फुट 10 इंच की दूरी पर लंगर फेंक चुके हैं। अमरीका के खिलाड़ी एच० कानली 230 फुट 9 इंच की दूरी तक लंगर फेंक चुके हैं।



(1)

हिन्दी

पंच परमेश्वर

जुम्मन शेख और अलगू चौधरी में गाढ़ी मित्रता थी, साझे में खेती होती थी। कुछ लेन-देन में भी साझा था। एक को दूसरे पर अटल विश्वास था। जुम्मन जब हज करने गए थे, तब अपना घर अलगू को सौंप गए थे, और अलगू जब कभी बाहर जाते, तो जुम्मन पर अपना घर छोड़ देते थे। उनमें न खान-पान का व्यवहार था, न धर्म का नाता, केवल विचार मिलते थे। मित्रता का मूल मन्त्र भी यही है।

इस मित्रता का जन्म उसी समय हुआ, जब दोनों मित्र बालक ही थे; और जुम्मन के पूज्य पिता, जुमराती, उन्हें शिक्षा प्रदान करते थे। अलगू ने गुरुजी की बहुत सेवा की, खूब रकाबियां मांजी, खूब प्याले धोए। उनका हुक्का एक क्षण के लिए भी विश्राम न लेने पाता था, क्योंकि प्रत्येक चिलम अलगू को आध घण्टे तक किताबों से अलग कर देती थी। अलगू के पिता पुराने विचार के मनुष्य थे। उन्हें शिक्षा की अपेक्षा गुरु की सेवा-शुश्रूषा पर अधिक विश्वास था। वह कहते थे कि विद्या पढ़ने से नहीं आती; जो कुछ होता है, गुरु के आशीर्वाद से। बस, गुरुजी की कृपादृष्टि चाहिए। अतएव यदि अलगू पर जुमराती शेख के आशीर्वाद अथवा सत्संग का कुछ फल न हुआ, तो यह मान कर सन्तोष कर लूंगा कि अलगू के विद्योपार्जन में मैंने यथाशक्ति कोई बात उठा नहीं रखी। विद्या उसके भाग्य ही में नहीं थी, तो कैसे आती?

मगर जुमराती शेख स्वयं आशीर्वाद के कायल न थे! उन्हें अपने सोटे पर अधिक भरोसा था, और उसी सोटे के प्रताप से आज आसपास के गांवों में जुम्मन की पूजा होती थी। उनके लिखे हुए रेहननामे या बैनामे पर कचहरी का मुहर्रिर भी कलम न उठा

सकता था। हलके का डाकिया, कांस्टेबिल और तहसील का चपरासी—सब उनकी कृपा की आकांक्षा रखते थे। अतएव अलगू का मान उसके धन का कारण था, तो जुम्मन शेख अपनी अनमोल विद्या से सबके आदर पात्र बने थे।



: 2 :

जुम्मन शेख की एक बूढ़ी खाला (मौसी) थी। उसके पास कुछ थोड़ी-सी मिलकियत थी; परन्तु उसके निकट सम्बन्धियों में कोई न था। जुम्मन ने लम्बे-चौड़े वादे करके वह मिलकियत अपने नाम लिखवा ली थी। जब तक दानपत्र की रजिस्ट्री न हुई थी, तब तक खालाजान का खूब आदर-सत्कार किया गया। उन्हें खूब स्वादिष्ट पदार्थ खिलाए गए। हलवे-पुलाव की वर्षा-सी की गई; पर रजिस्ट्री की मुहर ने इन खातिरदारियों पर भी मानो मुहर लगा दी। जुम्मन की पत्नी—करीमन—रोटियों के साथ कड़वी बातों के कुछ तेज-तीखे सालन भी देने लगी। जुम्मन शेख भी निठुर हो गए। अब बेचारी खालाजान को प्रायः नित्य ही ऐसी बातें सुननी पड़ती थीं—

बुढ़िया न जाने कब तक जिएगी। दो-तीन बीघे ऊसर क्या दे दिया, मानो मोल ले लिया। बघारी दाल के बिना रोटियां नहीं उतरती। जितना रुपया इसके पेट में झोंक चुके, उतने से तो अब तक गांव मोल ले लेते।

कुछ दिन तक खालाजान ने सुना और सहा, पर जब न सहा गया, तब जुम्मन से शिकायत की। जुम्मन ने स्थानीय कर्मचारी—गृहस्वामिनी—के प्रबंध में दखल देना उचित न समझा। कुछ दिन तक और यों ही रो-धोकर काम चलता रहा। अन्त में एक दिन खाला ने जुम्मन से कहा—बेटा, तुम्हारे साथ मेरा निबाह न होगा। तुम मुझे रुपये दे दिया करो, मैं आप पका-खा लूंगी।

जुम्मन ने धृष्टता के साथ उत्तर दिया—रुपये क्या यहां फलते हैं?—खाला ने नम्रता से कहा—मुझे कुछ रूखा-सूखा चाहिए भी कि नहीं।—जुम्मन ने गम्भीर स्वर में जवाब दिया—तो कोई यह थोड़े ही समझा था कि तुम मौत से लड़ कर आई हो!



खाला ने जुम्मन से शिकायत की।

खाला बिगड गई, उसने पचायत करने की धमकी दी। जुम्मन हँसे, जिस तरह कोई शिकारी हिरन को जाल की तरफ जाते देख कर मन-ही-मन हँसता है। वह बोले--हा, जरूर पचायत करो। फैसला हो जाए। मुझे भी यह रात-दिन की खटपट पसन्द नही।

पचायत मे किसकी जीत होगी, इस विषय में जुम्मन को कुछ भी सन्देह न था। आसपास के गावो मे ऐसा कौन था, जो उसके अनुभवो का ऋणी न हो, ऐसा कौन था, जो उसको शत्रु बनाने का साहस कर सके? किसमे इतना बल था, जो उसका सामना कर सके? आसमान के फरिश्ते तो पचायत करने आवेंगे नही।

: 3 :

इसके बाद कई दिन तक बूढी खाला हाथ मे एक लकडी लिए आसपास के गावो मे दौडती रही। कमर झुक कर कमान हो गई थी। एक-एक पग चलना दूभर था, मगर बात आ पडी थी। उसका निर्णय करना जरूरी था।

विरला ही कोई भला आदमी होगा, जिसके सामने बुढिया ने दुख के आसू न बहाए हों। किसी ने तो यो ही ऊपरी मन से हू-हा करके टाल दिया, और किसी ने इस अन्याय पर जमाने को गालिया दी, कहा—कब्र में पाव लटके हुए है, आज मरे, कल दूसरा दिन, पर हवस नही मानती। अब तुम्हे क्या चाहिए? रोटी खाओ और अल्लाह का नाम लो। तुम्हें अब खेतीबारी से क्या काम? कुछ ऐसे सज्जन भी थे, जिन्हे हास्य रस के रसास्वादन का अच्छा अवसर मिला। झुकी हुई कमर, पोपला मुह, सन के-से बाल, इतनी सामग्रिया एकत्र हो, तब हँसी क्यो न आवे? ऐसे न्यायप्रिय, दयालु, दीनवत्सल पुरुष बहुत कम थे, जिन्होने उस अबला के दुखडे को गौर से सुना हो और उसको सात्वना दी हो। चारो ओर से घूम-घाम कर बेचारी अलगू चौधरी के पास आई, लाठी पटक दी और दम लेकर बोली—बेटा, तुम दम भर के लिए मेरी पचायत में चले आना।

अलगू—मुझे बुला कर क्या करोगी ? कई गाव क आदमी तो आवेगे ही।

खाला—अपनी विपत तो सबके आगे रो आई। अब आने-न आने का अख्तियार उनको है।

अलगू—यो आने को आ जाऊगा, मगर पचायत मे मुह न खोलूगा।

खाला—क्यों बेटा ?

अलगू—अब इसका क्या जवाब दू ? अपनी खुशी । जुम्मन मेरा पुराना मित्र है । उससे बिगाड नही कर सकता।

खाला—क्या बिगाड के डर से ईमान की बात न कहोगे ?

हमारे सोए हुए धर्म ज्ञान की सारी सम्पत्ति लुट जाए, तो उसे खबर नही होती, परन्तु ललकार सुन कर वह सचेत हो जाता है। फिर उसे कोई नही जीत सकता। अलगू इस सवाल का कोई उत्तर न दे सका, पर उसके हृदय मे ये शब्द गूज रहे थे—

"क्या बिगाड के डर से ईमान की बात न कहोगे ?"

: 4 :

सध्या समय एक पेड के नीचे पचायत बैठी। शेख जुम्मन ने पहले से ही फर्श बिछा रखा था। उन्होने पान, इलायची, हुक्के, तम्बाकू, आदि का भी प्रबध किया था। हां, वह स्वय अलबत्ता अलगू चौधरी के साथ ज़रा दूर पर बैठे हुए थे। जब पचायत में कोई आ जाता था, तब दबे हुए सलाम से उसका स्वागत करते थे। जब सूर्य अस्त हो गया और चिडियो की कलरवयुक्त पचायत पेडो पर बैठी, तब यहा भी पंचायत शुरू हुई। फर्श की एक-एक अगुल जमीन भर गई, पर अधिकाश दर्शक ही थे। निमन्त्रित महाशयो मे से केवल वे ही लोग पधारे थे, जिन्हे जुम्मन से अपनी कुछ कसर निकालनी थी। एक कोने मे आग सुलग रही थी। नाई तावडतोड चिलम भर रहा था। यह निर्णय करना असम्भव था कि सुलगते हुए उपलो से अधिक धुआ



संध्या समय पंचायत बैठी।



निकलता था या चिलम के दमों से। लड़के इधर-उधर दौड़ रहे थे, कोई आपस में गाली-गलौज करते और कोई रोते थे। चारों तरफ कोलाहल मच रहा था। गाँव के कुत्ते इस जमाव को भोज समझ कर झुंड-के-झुंड जमा हो गए थे।

पच लोग बैठ गए, तो बूढ़ी खाला ने उनसे विनती की—

पचो, आज तीन साल हुए, मैंने अपनी सारी जायदाद अपने भानजे जुम्मन के नाम लिख दी थी। इसे आप लोग जानते ही होंगे। जुम्मन ने मुझे ताह्यात रोटी-कपडा देना कबूल किया। साल भर तो मैंने इसके साथ रो-धोकर काटा। पर अब रात-दिन का रोना नही सहा जाता। मुझे न पेट की रोटी मिलती है और न तन का कपड़ा। बेकस बेवा हू। कचहरी-दरबार नहीं कर सकती। तुम्हारे सिवा और किससे अपना दुख सुनाऊ? तुम लोग जो राह निकाल दो, उसी राह पर चलू। अगर मुझमे कोई ऐब देखो, तो मेरे मुह पर थप्पड़ मारो। जुम्मन मे बुराई देखो, तो उसे समझाओ, क्यो एक बेकस की आह लेता है। मै पंचों का हुक्म सिर-माथे पर चढाऊगी।

रामधन मिश्र, जिनके कई असामियो को जुम्मन ने अपने गाव में बसा लिया था, बोले—जुम्मन मिया, किसे पंच बदते हो? अभी मे उसका निबटारा कर लो। फिर जो कुछ पच कहेंगे, वही मानना पड़ेगा।

जुम्मन को इस समय सदस्यो में विशेषकर वे ही लोग दीख पडे, जिनसे किसी-न-किसी कारण उनका वैमनस्य था। जुम्मन बोले—पच का हुक्म अल्लाह का हुक्म है। खालाजान जिसे चाहे, उसे बदे। मुझे कोई उज्र नही।

खाला ने चिल्ला कर कहा—अरे अल्लाह के बन्दे! पचो का नाम क्यो नही बता देता? कुछ मुझे भी तो मालूम हो!

जुम्मन ने क्रोध से कहा—अब इस वक्त मेरा मुह न खुलाओ। तुम्हारी बन पडी है, जिसे चाहो, पच बदो।

खालाजान जुम्मन के आक्षेप को समझ गई, वह बोली—बेटा, खुद डरो! पच न किसी के दोस्त होते है, न किसी के दुश्मन, कैसी बात कहते हो! और तुम्हारा किसी पर विश्वास न हो, तो जाने दो, अलगू चौधरी को तो मानते हो? लो, मैं उन्ही को सरपच बदती हू।

जुम्मन शेख आनन्द से फूल उठे, किन्तु भावो को छिपा कर बोले—अलगू चौधरी ही सही, मेरे लिए जैसे रामधन वैसे अलगू।

अलगू इस झमेले मे फंसना नही चाहते थे। वे कन्नी काटने लगे, बोले—खाला, तुम जानती हो कि मेरी जुम्मन से गाढ़ी दोस्ती है।

खाला ने गम्भीर स्वर से कहा—बेटा, दोस्ती के लिए कोई अपना ईमान नही बेचता। पंच के दिल में खुदा बसता है। पंचो के मुंह से जो बात निकलती है, वह खुदा की तरफ से निकलती है।

अलगू चौधरी सरपंच हुए। रामधन मिश्र और जुम्मन के दूसरे विरोधियो ने बुढ़िया को मन मे बहुत कोसा!

अलगू चौधरी बोले—शेख जुम्मन! हम और तुम पुराने दोस्त है! जब काम पडा, तुमने हमारी मदद की और हमसे भी जो कुछ बन पड़ा, तुम्हारी सेवा करते रहे है; मगर इस समय तुम और बूढी खाला, दोनो हमारी निगाह में बराबर हो। तुमको पंचो से जो कुछ अर्ज करनी हो, करो।

जुम्मन को पूरा विश्वास था कि अब बाजी मेरी है। अलगू यह सब दिखावे की बाते कर रहा है। अतएव शान्त चित्त होकर बोले—पंचो! तीन साल हुए, खालाजान ने अपनी जायदाद मेरे नाम हिब्बा कर दी थी। मैने उन्हे ताहयात खाना-कपड़ा देना कबूल कर लिया था। खुदा गवाह है, आज तक मैने खालाजान को कोई तकलीफ नही दी। मै उन्हे अपनी मा के समान समझता हूं। उनकी खिदमत करना मेरा फर्ज है; मगर औरतो मे जरा अनबन है, इसमे मेरा क्या बस है? खालाजान मुझसे माहवार खर्च अलग मागती है। जायदाद कितनी है, यह पंचो से छिपी नही है। उससे इतना मुनाफा नही होता कि माहवार खर्च दे सकू। इसके अलावा हिब्बानामे में माहवार खर्च का कोई जिक्र नही। नही तो मै भूल कर भी इस झमेले मे न पड़ता। बस, मुझे यही कहना है। आइन्दा पंचो को अख्तियार है, जो फैसला चाहे, करे!

अलगू चौधरी को हमेशा कचहरी से काम पड़ता था। अतएव वह पूरा कानूनी आदमी था। उसने जुम्मन से जिरह शुरू की। एक-एक प्रश्न जुम्मन के हृदय पर हथौड़े की चोट की तरह पड़ता था। रामधन मिश्र इन प्रश्नो पर मुग्ध हुए जाते थे। जुम्मन चकित थे कि अलगू को हो क्या गया है! अभी यह अलगू मेरे साथ बैठा हुआ कैसी-कैसी बाते कर रहा था। इतनी देर मे ऐसा कायापलट

हो गया कि मेरी जड खोदने पर तुला हुआ है। न मालूम कब की कसर यह निकाल रहा है? क्या इतने दिनो की दोस्ती कुछ काम न आवेगी?

जुम्मन शेख तो इसी सकल्प-विकल्प मे पडे हुए थे कि इतने मे अलगू ने फैसला सुनाया—

जुम्मन शेख! पचो ने इस मामले पर विचार किया! उन्हे यह नीतिसगत मालूम होता है कि खालाजान को माहवार खर्च दिया जाए। हमारा विचार है कि खाला की जायदाद से इतना मुनाफा अवश्य होता है कि माहवार खर्च दिया जा सके। बस, यही हमारा फैसला है। अगर जुम्मन को खर्च देना मंजूर न हो, तो हिब्बानामा रद्द समझा जाए।

: 5 :

यह फैसला सुनते ही जुम्मन सन्नाटे मे आ गए। जो अपना मित्र हो, वह शत्रु का व्यवहार करे और गले पर छुरी फेरे, इसे समय के फेर के सिवा और क्या कहे? जिस पर पूरा भरोसा था, उसने समय पडने पर धोखा दिया। ऐसे ही अवसरो पर झूठे-सच्चे मित्रो की परीक्षा की जाती है। यही कलियुग की दोस्ती है। अगर लोग ऐसे ही कपटी, धोखेबाज न होते, तो देश मे आपत्तियो का प्रकोप क्यो होता। यह हैजा, प्लेग, आदि व्याधिया दुष्कर्मो के ही दण्ड है।

मगर रामधन मिश्र और अन्य पच अलगू चौधरी की इस नीतिपरायणता की प्रशसा जी खोलकर कर रहे थे—इसका नाम पचायत है! दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया। दोस्ती दोस्ती की जगह है, किन्तु धर्म का पालन मुख्य है। ऐसे ही सत्यवादियो के बल पृथ्वी ठहरी है, नही तो यह कब की रसातल को चली जाती।

इस फैसले ने अलगू और जुम्मन की दोस्ती की जड हिला दी। अब वे साथ-साथ बाते करते नही दिखाई देते। इतना पुराना मित्रता रूपी वृक्ष सत्य का एक झोका भी न सह सका। सचमुच वह बालू की ही जमीन पर खडा था।

उनमें अब शिष्टाचार का अधिक व्यवहार होने लगा। एक-दूसरे की आवभगत ज्यादा करने लगे। वे मिलते-जुलते थे, मगर उसी तरह, जैसे तलवार से ढाल मिलती है।



बैल पछाही जाति के सुन्दर,
बडे-बडे सींगों वाले थे।

जुम्मन के चित्त मे मित्र की कुटिलता आठो पहर खटका करती थी। उसे हर घडी यही चिन्ता रहती थी कि किसी तरह बदला लेने का अवसर मिले।

: 6 :

अच्छे कामो की सिद्धि मे बडी देर लगती है, पर बुरे कामो की सिद्धि मे यह बात नही होती; जुम्मन को भी बदला लेने का अवसर जल्द ही मिल गया। पिछले साल अलगू चौधरी बटेसर के मेले से बैलो की एक बहुत अच्छी जोडी मोल लाए थे। बैल पछाही जाति के सुन्दर, बडे-बडे सीगो वाले थे। महीनो तक आस-पास के गावो के लोग उनके दर्शन करते रहे। दैवयोग से जुम्मन की पचायत के एक महीने बाद इस जोडी का एक बैल मर गया। जुम्मन ने दोस्तो से कहा—दगाबाजी की सजा है। इन्सान सब्र भले ही कर जाए, पर खुदा नेक-बद देखता है।—अलगू को सदेह हुआ कि जुम्मन ने बैल को विष दिला दिया है। चौधराइन ने भी जुम्मन पर ही इस दुर्घटना का दोषारोपण किया। उसने कहा—जुम्मन ने ही कुछ कर-करा दिया है।—चौधराइन और करीमन मे इस विषय पर एक दिन खूब ही वाद-विवाद हुआ। दोनो देवियो ने शब्दबाहुल्य की नदी बहा दी। व्यग्य, वक्रोक्ति, अन्योक्ति और उपमा आदि अलकारो मे बाते हुई। जुम्मन ने किसी तरह शान्ति स्थापित की। उन्होने अपनी पत्नी को डाट-डपट

चौधराइन और करीमन में खूब वाद-विवाद हुआ।



M27DPD/62

कर समझा दिया। वह उसे उस रणभूमि से हटा भी ले गए। उधर अलगू चौधरी ने समझाने-बुझाने का काम अपने तर्कपूर्ण सोटे से लिया।

अब अकेला बैल किस काम का? उसका जोड बहुत ढूढा गया, पर न मिला। निदान यह सलाह ठहरी कि इसे बेच डालना चाहिए। गाव में एक समझू साहु थे, वह इक्का गाडी हाकते थे। गाव से गुड़-घी लाद कर मण्डी ले जाते, मण्डी से तेल-नमक भर लाते और गाव मे बेचते। इस बैल पर उनका मन लहराया। उन्होंने सोचा, यह बैल हाथ लगे, तो दिन भर मे बेखटके तीन खेप हो। आजकल तो एक ही खेप के लाले पड़े रहते है। बैल देखा, गाड़ी मे दौड़ाया, बाल-भौरो की पहचान कराई, मोल-तोल किया और उसे लाकर द्वार पर बाध दिया। एक महीने मे दाम चुकाने का वायदा ठहरा। चौधरी को भी गरज थी ही, घाटे की परवाह न की।

समझू साहु ने नया बैल पाया, तो लगे उसे रगेदने। वह दिन मे तीन-तीन, चार-चार खेपे करने लगे। न चारे की फिक्र थी, न पानी की, बस, खेपो से काम था। मण्डी ले गए, वहा कुछ सूखा भूसा सामने डाल दिया। बेचारा जानवर अभी दम भी न लेने पाया था कि फिर जोत दिया। अलगू चौधरी के घर था, तो चैन की वशी बजती थी। बैलराम छठे-छमाहे कभी बहली मे जोते जाते थे। वहां बैलराम का रातिब था साफ पानी, दली हुई अरहर की दाल और भूसे के साथ खली, और यही नही, कभी-कभी घी का स्वाद भी चखने को मिल जाता था। शाम-सवेरे एक आदमी खरहरे करता, पोछता और नहलाता था। वहां वह सुख-चैन, यहां कहा यह आठो पहर की खपन! महीने भर मे वह पिस-सा गया। इक्के का जुआ देखते ही उसका लहू सूख जाता था। एक-एक पग चलना दूभर था। हड्डिया निकल आई थी, पर था वह पानीदार, मार की बरदाश्त न थी।

एक दिन चौथी खेप मे साहुजी ने दूना बोझा लादा। दिन भर का थका जानवर, पैर न उठते थे। पर साहुजी कोड़े फटकारने लगे। बस, फिर क्या था, बैल कलेजा तोड़ कर चला, कुछ दूर दौडा और चाहा कि जरा दम ले लू, पर साहुजी को जल्द पहुचने की फिक्र थी, अतएव उन्होंने कई कोडे बडी निर्दयता से फटकारे। बैल ने एक बार जोर लगाया, पर अब की बार शक्ति ने जवाब दे दिया। वह धरती पर गिर पडा, और ऐसा गिरा कि फिर न उठा। साहुजी ने बहुत पीटा, टाग पकड कर खीचा, नथो में लकडी ठूंस दी, पर मृतक भी कही उठ सकता है? तब साहुजी को कुछ शक हुआ। उन्होंने बैल को गौर से देखा, खोल कर अलग

गिरा: और सोचने लगे कि गाड़ी कैसे घर पहुचे। बहुत चीखे-चिल्लाए; पर देहात का रास्ता बच्चो की आख की तरह साझ होते ही बद हो जाता है। कोई नजर न आया—आस-पास कोई गाव भी न था। मारे क्रोध के उन्होने मरे हुए बैल पर और दुर्रे लगाए, और कोसने लगे—अभागे! तुझे मरना ही था, तो घर पहुच कर मरता! ससुरा बीच रास्ते मे ही मर रहा! अब गाड़ी कौन खीचे?—इस तरह साहुजी खूब जले-भुने। कई बोरे गुड और कई पीपे घी उन्होने बेचे थे, दो-ढाई सौ रुपये कमर मे बधे थे। इसके सिवा गाडी पर कई बोरे नमक के थे, अतएव छोड कर जा भी न सकते थे। लाचार बेचारे गाड़ी पर ही लेट गए। वही रतजगा करने की ठान ली। चिलम पी, गाया, फिर हुक्का पिया। इस तरह साहुजी आधी रात तक नीद को बहलाते रहे। अपनी जान मे तो वह जागते रहे, पर पौ फटते ही जो नीद टूटी और कमर पर हाथ रखा, तो थैली गायब! घबरा कर इधर-उधर देखा, तो कई कनस्तर तेल भी नदारद। अफसोस मे बेचारे ने सिर पीट लिया और पछाडे खाने लगे। प्रात' काल रोते-बिलखते घर पहुचे। सहुआइन ने जब यह बुरी खबर सुनी, तब पहले रोई, फिर अलगू चौधरी को गालिया देने लगी—निगोडे ने ऐसा कुलच्छना बैल दिया कि जनम भर की कमाई लुट गई।

इस घटना को हुए कई महीने बीत गए। अलगू जब अपने बैल के दाम मागते, तब साहु और सहुआइन, दोनो ही झल्लाए हुए कुत्तो की तरह चढ बैठते और अड-बड बकने लगते—वाह! यहा तो सारे जन्म की कमाई लुट गई। सत्यानाश हो गया, इन्हे दामो की पड़ी है। मुर्दा बैल दिया था, उस पर दाम मागने चले है। आखो मे धूल झोक दी, सत्यानाशी बैल गले बाध दिया, हमे निरा पोगा ही समझ लिया? हम भी बनिया के बच्चे है, ऐसे बुद्धू कही और मिलेगे, पहले जाकर किसी गड्ढे मे मुह धो आओ, तब दाम लेना। न जी मानता हो, तो हमारा बैल खोल ले जाओ। महीना भर के बदले दो महीना जोत लो। और क्या लोगे?

चौधरी के अशुभचिन्तको की कमी न थी। ऐसे अवसरो पर वे भी एकत्र हो जाते और साहुजी के बर्राने की पुष्टि करते। परन्तु डेढ सौ रुपये से इस तरह हाथ धो लेना आसान न था। एक बार वह भी गर्म पड़े। साहुजी बिगड़ कर लाठी ढूढने घर चले गए। अब सहुआइन ने मैदान लिया। प्रश्नोत्तर होते-होते हाथापाई की नौबत आ पहुची। सहुआइन ने घर मे घुस कर किवाड़ बद कर लिए। शोरगुल सुन कर गाव के भलेमानस जमा हो गए। उन्होने दोनो को समझाया। साहुजी को

दिलासा देकर घर से निकाला । वे परामर्श देने लगे कि इस तरह से काम न चलेगा। पचायत कर लो । जो कुछ तय हो जाए, उसे स्वीकार कर लो । साहुजी राजी हो गए । अलगू ने भी हामी भर ली।

: 7 :

पचायत की तैयारिया होने लगी। दोनो पक्षो ने अपने-अपने दल बनाने शुरू किए। इसके बाद तीसरे दिन उसी वृक्ष के नीचे पचायत बैठी। वही सध्या का समय था । खेतो मे कौए पचायत कर रहे थे। विवादग्रस्त विषय यह था कि मटर की फलियो पर उनका कोई स्वत्व है या नही, और जब तक यह प्रश्न हल न हो जाए, तब तक वे रखवाले की पुकार पर अपनी अप्रसन्नता प्रकट करना आवश्यक समझते थे। पेड की डालियो पर बैठी शुकमण्डली मे यह प्रश्न छिडा हुआ था कि मनुष्यो को उन्हे बेमुरौव्वत कहने का क्या अधिकार है, जब उन्हे स्वय अपने मित्रो से दगा करने मे भी सकोच नही होता । पचायत बैठ गई, तो रामधन मिश्र ने कहा—अब देरी क्या है? पचो का चुनाव हो जाना चाहिए। बोलो चौधरी, किस-किस को पच बदते हो?

अलगू ने दीन भाव से कहा—समझू साहु ही चुन ले।

समझू खड़े हुए और कडक कर बोले—मेरी ओर से जुम्मन शेख ।

जुम्मन का नाम सुनते ही अलगू चौधरी का कलेजा धक्-धक् करने लगा, मानो किसी ने अचानक थप्पड मार दिया हो।

रामधन अलगू के मित्र थे। वह बात को ताड गए, पूछा—क्यो चौधरी, तुम्हे कोई उज्र तो नही?

चौधरी ने निराश होकर कहा—नही, मुझे क्या उज्र होगा?

* * *

अपने उत्तरदायित्व का ज्ञान बहुधा हमारे सकुचित व्यवहारो का सुधारक होता है! जब हम राह भूल कर भटकने लगते है, तब यही ज्ञान हमारा विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक बन जाता है।

पत्र सम्पादक अपनी शान्त कुटी मे बैठा हुआ कितनी धृष्टता और स्वतन्त्रता के साथ अपनी प्रबल लेखनी से मन्त्रिमण्डल पर आक्रमण करता है, परन्तु ऐसे अवसर आते है, जब वह स्वय मन्त्रिमण्डल मे सम्मिलित होता है। मण्डल के भवन मे पग धरते ही उसकी

लेखनी कितनी मर्मज्ञ, कितनी विचारशील, कितनी न्यायपरायण हो जाती है, इसका कारण उत्तरदायित्व का ज्ञान है। नवयुवक युवावस्था मे कितना उद्दण्ड रहता है। माता-पिता उसकी ओर से कितने चिन्तित रहते है! वे उसे कुल-कलंक समझते है; परन्तु थोडे ही समय मे परिवार का बोझ सिर पर पडते ही वह अव्यवस्थित चित्त, उन्मत्त युवक कितना धैर्यशील, कैसा शान्तचित्त हो जाता है, यह भी उत्तरदायित्व के ज्ञान का फल है।

जुम्मन शेख के मन मे भी सरपच का उच्च स्थान ग्रहण करते ही अपनी जिम्मेदारी का भाव पैदा हुआ। उसने सोचा, मै इस वक्त न्याय और धर्म के सर्वोच्च आसन पर बैठा हू। मेरे मुह से इस समय जो कुछ निकलेगा, वह देववाणी के सदृश है—और देववाणी मे मेरे मनोविकारो का कदापि समावेश न होना चाहिए। मुझे सत्य से जौ भर भी टलना उचित नही।

पंचों ने दोनों पक्ष से सवाल-जवाब करने शुरू किए। बहुत देर तक दोनो दल अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते रहे। इस विषय मे तो सब सहमत थे कि समझू को बैल का मूल्य देना चाहिए। परन्तु दो महाशय इस कारण रिआयत करना चाहते थे कि बैल मर जाने से समझू को हानि हुई। इसके प्रतिकूल दो सभ्य मूल के अतिरिक्त समझू को दण्ड भी देना चाहते थे, जिससे फिर किसी को पशुओ के साथ ऐसी निर्दयता करने का साहस न हो। अन्त मे जुम्मन ने फैसला सुनाया—

अलगू चौधरी और समझू साहु! पचो ने तुम्हारे मामले पर अच्छी तरह विचार किया। समझू को उचित है कि बैल का पूरा दाम दें। जिस वक्त उन्होंने बैल लिया था, उसे कोई बीमारी न थी। अगर उसी समय दाम दे दिए जाते, तो आज समझू उसे फेर लेने का आग्रह न करते। बैल की मृत्यु केवल इस कारण हुई कि उससे बडा कठिन परिश्रम लिया गया और उसके दाने-चारे का कोई अच्छा प्रबध नही किया गया।

रामधन मिश्र बोले—समझू ने बैल को जान-बूझ कर मारा है, अतएव उससे दण्ड लेना चाहिए।

जुम्मन बोले—यह दूसरा सवाल है। हमको इससे कोई मतलब नही।

झगडू साहु ने कहा—समझू के साथ कुछ रिआयत होनी चाहिए।

जुम्मन बोले—यह अलगू चौधरी की इच्छा पर निर्भर है। वह रिआयत करे, तो उनकी भलमनसी।

अलगू चौधरी फूले न समाए, उठ खडे हुए और जोर से बोले—पंच परमेश्वर की जय !

इसके साथ चारो ओर से प्रतिध्वनि हुई—पंच परमेश्वर की जय !

प्रत्येक मनुष्य जुम्मन की नीति को सराहता था। इसे कहते हैं न्याय ! यह मनुष्य का काम नही, पंच मे परमेश्वर वास करते हैं, यह उन्ही की महिमा है। पंच के सामने खोटे को कौन खरा कह सकता है ?

थोडी देर बाद जुम्मन अलगू के पास आए और उनके गले लिपट कर बोले—भैया, जब से तुमने मेरी पंचायत की, तब से मैं तुम्हारा प्राणघातक शत्रु बन गया था, पर आज मुझे ज्ञात हुआ कि पंच के पद पर बैठ कर न कोई दोस्त होता है, न दुश्मन। न्याय के सिवा उसे और कुछ नही सूझता। आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की जबान से खुदा बोलता है।—अलगू रोने लगे। इस पानी से दोनो के दिलो का मैल धुल गया। मित्रता की मुरझाई हुई लता फिर हरी हो गई।



अंग्रेजी

(2) खोया हुआ बालक

वसन्त का त्योहार था। तंग गलियो और मोहल्लों-टोलो की ठंडी परछाइयों में से नकादक कपडे पहने लोगो के दल-के-दल एक के ऊपर एक उड़े चले आ रहे थे। लगता था, जैसे किसी मठ से उजले खरगोशो के दल-के-दल उबल पड़े हों। नगर द्वार के बाहर रुपहली धूप के उफनते ज्वार मे हुमकते वे मेले की ओर बढ रहे थे। कुछ पैदल चल रहे थे, कुछ घोड़ो पर सवार थे, और कुछ पालकियो या बैलगाड़ियो मे बैठे हिचकोले खा रहे थे। एक नन्हा बच्चा अपने माता-पिता के पैरो के बीच से भागता-निकलता, जिन्दगी और किलकारियों से छलछला रहा था। हँसी-खुशी से भरपूर सुबह का सुहावना समय सबका स्वागत कर रहा था और बिना झिझक उन्हें फूलो और गीतो से झूमते हुए खेतो में निकल आने का निमन्त्रण दे रहा था।

रास्ते के दोनो ओर लगी हुई दुकानो के मनोहर खिलौनो मे उलझ कर जब वह लड़का पिछड़ जाता, तब उसके माता-पिता पुकार उठते—"आओ बेटा, आओ!"

वह अपने माता-पिता की ओर दौड़ पड़ता। उसके पांव उनकी पुकार की आज्ञा का पालन करते, मगर उसकी आंखे पीछे छूटे हुए खिलौनो पर तब भी मंडराती रहती। और उस जगह पहुंचने पर जहा रुक कर वे उसका इन्तजार कर रहे थे, वह अपने दिल की चाह को न दबा पाता, हालांकि उनकी आखों मे इन्कार की वह पुरानी और सर्द घुड़क उसके लिए कोई नई चीज नही थी।

"मैं यह खिलौना लूंगा!"—उसने मनुहार की।

पिता ने सदा की भांति अपने उसी ढंग से आंखें तरेरी। लेकिन आज उन्मुक्त उमंगों से पिघल कर उसकी मां कुछ नरम थी, उसके हाथ मे अपनी उंगली थमाती हुई बोली—"जरा देखो तो बेटा, वह सामने क्या है?"

मन की न हो पाने का क्षोभ एक हल्की-सी सुबकी बन कर अभी उसके फड़कते होठो से अच्छी तरह निकल भी न पाया था कि सामने का दृश्य देख कर उसकी आंख

प्रसन्नता से खिल उठी और 'ओ—मा—आ' की अस्पष्ट-सी ध्वनि को उसके होठो पर उभरने का मौका नही मिला ।

धूल से भरे रास्ते पर वे अब तक चल रहे थे। टेढा-मेढा साप की तरह बल खाता वह उत्तर की ओर चला गया था। उसे छोड वे अब एक खेत की पगडडी पर आ गए।

खेतो मे सरसो फूली हुई थी। जहा तक नजर जाती थी, ऐसा मालूम होता था, जैसे समतल धरती पर पिघला हुआ सोना लहरा रहा हो—मानो पिघली हुई पीली रोशनी का एक दरिया हो, जिसमे हवा के प्रत्येक झोके के साथ लहरिया उमड रही हो, जो बीच-बीच मे भरी-पूरी और खूब प्रचुर धारा में छिछलती है, परन्तु फिर दूर रुपहली धूप के समुद्र की मरीचिका की ओर सतत दौडी चली जाती है। जहा वह खेत समाप्त होता था, वहा एक ओर मिट्टी के छोटे-छोटे घरो का एक समूह पीले कपडे पहने हुए नर-नारियो की भीड के कारण अलग उभर आया था। भीड मे से खुल कर सीटिया बजाने, टिटकारिया लेने, फुदकने, चहकने, गरजने और भन-भन करने की अजीब पचमेली आवाजो का प्रचण्ड स्वर झुरमुटो मे झूमता नीलकठी आकाश की ओर लपक रहा था। ऐसा मालूम होता था, जैसे शकर का अट्टहास दिग्दिगन्त को गुजा रहा हो।



मै यह खिलौना लूंगा ·····

बालक ने अपने माता-पिता की ओर सिर उठा कर देखा। अनन्त उल्लास और अद्भुत कौतुक के इस सागर से उसका रोम-रोम लहरा रहा था। उसके माता-पिता के चेहरे भी इस उल्लास से खिले थे। उसने इसका अनुभव किया और पगडडी छोड़ बछडे की भाति कुलाचे भरता खेत में दौड गया। उसके नन्हे पाव और भी दूर के खेतो की सुगध से मदमाती हवा के झकोरो की ताल के साथ थिरक रहे थे।

पतगो का एक झुड अपने चटक बैगनी पखो को फरफराता हवा में इधर-से-उधर तैर रहा था। कभी-कभी यह झुड फूलो के मधु की खोज में निकले किसी एकाकी काले भौरे या तितली की उड़ान का रास्ता काट जाता था। बालक टकटकी बाधे हवा मे

उनका पीछा करता और जब उनमे से कोई भौरा या तितली पंख समेट कर फूल पर बैठने को होती, तब उसे पकडने को लपकता। मगर जैसे ही वह उसे पकड़ने को होता, वैसे ही वह पख मार फरफरा कर हवा मे उड जाती। एक ढीठ काला भौरा, जो उसकी पकड मे नही आया था, उसके कान के इर्द-गिर्द गुंजार करता हुआ उसे लुभाने का प्रयत्न करने लगा। और ठीक उस समय, जबकि वह भौरा उसके होठ पर बैठने ही जा रहा था, उसकी मां ने चेतावनी के स्वर मे पुकारा—"आओ बेटा, आओ, इधर पगडंडी पर आ जाओ।"

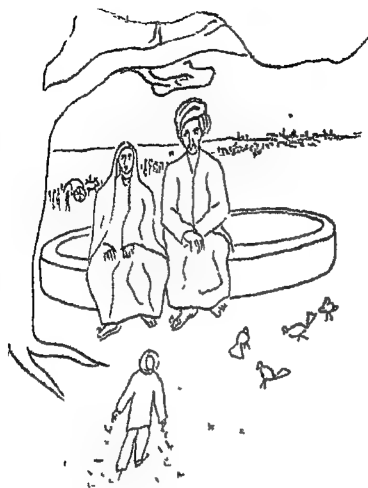
खुशी से छलछलाता वह अपने माता-पिता की ओर दौडा और थोडी देर उनके आगे-आगे चलता रहा। लेकिन शीघ्र ही वह फिर पीछे छूट गया। पगडडी के किनारे धूप का आनन्द लेने के लिए अनेक छोटे-छोटे कीट-पतग अपने-अपने छिपने के स्थानो से निकल-निकल कर झाक रहे थे। वह उनके साथ उलझ गया।

उसी जगह बरगद का एक बूढा पेड, बौर से लदे नीम, कटहल, जामुन, चपा और सिहस के पेडो पर अपनी शक्तिशाली भुजाए फैलाए खडा था। सुनहरे तेजपात और गुलाबी गुलमोहर की क्यारियो पर उसकी छाया ऐसे पड रही थी, जैसे दादी नन्ही बच्चियों को अपने आंचल की ओट मे किए हो। लेकिन इस ओट मे होते हुए भी लजाती हुई कलिया अपने अंगो को आधा खोले सूर्य-देवता को उन्मुक्त भाव से अपनी श्रद्धाजलियां अर्पित कर रही थी। उनके पराग की मीठी सुगध शीतल मद पवन के हल्के नन्हे झकोरों के साथ घुल-मिल रही थी। मंद पवन के नन्हे झकोरो से वे अपनी धीमी सासों में सुगन्ध रचा भी न पाते कि हवा का तेज झोंका उसे उडा कर ले जाता।

बालक के झुरमुट मे प्रवेश करते ही ताजा खिले फूलो की एक बौछार-सी उसके ऊपर बरस पड़ी। अपने माता-पिता की



वह तितली को पकड़ने दौड़ता



उसने कबूतरों की गुटुर-गूं सुनी ।

सुधि भूल कर वह दोनो हाथो से बरसती हुई पंखुड़ियो को बटोरने लगा। तभी कबूतरो की गुटुर-गूं उसे सुनाई दी और वह 'कबूतर ! कबूतर !' का शोर मचा अपने माता-पिता की ओर दौड़ा। उसके बेसुध हाथों से पखुड़ियां बिखर गई। उसके माता-पिता के चेहरो पर एक अजीब-सा भाव था। तभी किसी कोयल ने प्रेम में पगी तान छेड कर उसकी आत्मा के पख खोल दिए।

"आओ बेटे, आओ !" उन्होंने बच्चे को पुकारा, जो अब भाग कर बरगद के पेड के चारो तरफ उछल-कूद रहा था। उसे पकड कर वे फिर उसी तग और टेढी-मेढी पगडडी पर ले आए, जो सरसो के खेतो पर से मेले की ओर जाती थी।

जब वे गाव के निकट पहुचे, तब बालक ने और भी कई जन-सकुल पगडडियां देखी। ये सब मेले के भवर मे जाकर खो गई थी। और अब मेले-ठेले की जिस दुनिया में वह पैठ रहा था, उसकी रेल-पेल और हगामा देख उसने आकर्षण और विकर्षण, दोनो का एक साथ अनुभव किया।

फाटक के एक कोने में एक मिठाई वाला आवाज लगा रहा था—"गुलाब जामुन, रसगुल्ला, बर्फी, जलेबी !" उसकी दुकान के चारों ओर एक भीड़ जमा थी, जिसमें चादी-सोने के वरक से सजी रग-बिरगी मिठाइयो का ढेर लगा था। बालक आंखे फाड़ कर टकटकी लगाए देखता रहा और बर्फी के लिए, जो उसकी मन-भावनी मिठाई थी, उसके मुह में पानी भर आया। "बर्फी, मैं बर्फी लूंगा !"—वह धीरे से बुदबुदाया। लेकिन माग करते समय उसके मन मे यह भी धुधला-सा चेत था कि उसकी माग पर कोई ध्यान नही देगा, और उसके माता-पिता कहेंगे कि वह चटोरा है। इसलिए जवाब का इन्तजार किए बिना ही वह आगे बढ़ गया।



सब-के-सब गुब्बारों को अपना लेने की चाह उस पर हावी हो गई।

एक माली ने आवाज लगाई—"माला लो, माला, गुलमोहर की माला।" बालक ने महसूस किया कि थके पवन के पंखों पर तिरती आती सुगन्धों की मधुरता उसका दिल अपनी ओर खींच रही है। वह उस डलिया की ओर बढ़ा, जिसमें फूलों का ढेर लगा था और अर्धस्फुट स्वर में बुदबुदाया—"मैं वह माला लूंगा।" लेकिन वह भली-भांति जानता था कि उसके माता-पिता फूलों को खरीदने से इन्कार कर देंगे, और कहेंगे कि उंह, इनमें क्या रखा है! इसलिए जवाब का इन्तजार किए बिना वह फिर आगे बढ़ गया।

एक आदमी एक बांस पकड़े खड़ा था। बांस में बंधे पीले, लाल, हरे और बैंगनी रंग के गुब्बारे उड़ रहे थे। उनके रेशमी रंगों के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य से बालक का मन डोल गया और सब-के-सब गुब्बारों को अपना बना लेने की अदम्य चाह उस पर हावी हो गई। लेकिन वह भली-भांति जानता था कि उसके माता-पिता कभी गुब्बारे खरीद कर न देंगे, और कह देंगे कि इतना बड़ा हो गया, क्या गुब्बारों से ही खेलता रहेगा! इसलिए वह फिर आगे बढ़ गया।

एक मदारी सांप के आगे बीन बजा रहा था। सांप डलिया में कुंडली मारे इस शान से फन उठाए बैठा था, मानो वह फन न हो, हंस की गर्दन हो। इधर नन्हे झरने की पतली धारा की भांति संगीत की अदृश्य लहरियां उसके कानों में चुपचाप घर कर रही थी।

बच्चा मदारी की ओर बढ़ गया। लेकिन वह जानता था कि उसके माता-पिता मदारी के भोंडे संगीत को सुनने से मना करते हैं। और वह आगे बढ़ गया।

एक हिंडोला पूरे वेग से चक्कर लगा रहा था। उसमें झूलते नर-नारी और बच्चे किलकारियां भर रहे थे और मदमाती हँसी के साथ चिल्ला रहे थे। बालक एक-एक चक्कर को टकटकी लगाए देख रहा था। उसके चेहरे पर मुस्कान की गुलाबी रेखा खिल आई थी। उसकी आंखें चक्कर की गति के साथ घूम रही थी, उसके होंठ आश्चर्य से अधखुले रह गए थे। यहां तक कि उसे लगा, जैसे वह स्वयं भी उसके साथ चक्कर लगा



एक गहरी चीख उसके गले से उभरी

रहा है। पहले तो चक्कर बड़ा ही तेज मालूम हुआ। पर फिर वह धीमा होने लगा। शीघ्र ही दातो तले उगली दबाए बालक ने उसे रुकते देखा। इस बार उससे पहले कि हिंडोले पर बैठ कर चक्कर लगाने का सम्भावित आनन्द प्राप्त करने की उसकी अदम्य कामना माता-पिता की अन्तहीन अस्वीकृतियो का ध्यान आते ही ठंडी हो, साहस बटोर कर उसने प्रार्थना की—"पिताजी, मैं हिंडोले पर बैठना चाहता हू, मा, मैं "

कोई जवाब न मिला। वह माता-पिता की ओर देखने के लिए मुडा। वे वहा न थे। उसने पीछे घूम कर देखा। वहा भी उनका कोई पता न था।

एक खूब गहरी चीख उसके सूखे गले तक उभरी, अपने शरीर को झकझोर कर वह एकाएक उस जगह से दौडा, और भयभीत हो चिल्लाने लगा—"मा, ओ मा, पिताजी ' " गर्म और तेज आसू उसकी आखो से ढुलकने लगे। घबराहट मे वह कभी इस ओर और कभी उस ओर, सभी दिशाओ मे दौडता। उसे पता नही था कि किधर जाए। "मा, पिताजी " वह चिल्ला रहा था। थूक निगलते-निगलते उसका गला अब कुछ गीला और फटा-फटा-सा हो गया था। उसकी बसन्ती पगडी खुल कर नीचे लटक आई थी और उसके पसीने से तर कपडे जहा-तहा कीचड से लिथड गए थे। उसे अपना हल्का शरीर ऐसा भारी लग रहा था, जैसे वह सीसे का बना हो।

कुछ देर अधी दौड-भाग और इधर-उधर भटक लेने के बाद वह थक कर खडा हो गया। उसकी चीखे सुबकियो मे बदल गई। डबडबाई धुधली आखो से उसने देखा कि थोडी दूर हरी घास पर बैठे नर-नारी बाते कर रहे है। चमकीले पीले वस्त्रो के बीच आखें गडा-गडा कर उसने देखा, मगर उनमे उसके माता-पिता नही थे, जो केवल हँसने और गप लगाने के लिए ही हँस और बाते कर रहे थे। वह फिर तेजी से दौडा, इस बार एक मन्दिर की ओर, जहा लोगो की खूब भीड़ जमा थी। यहा जमीन का एक-एक चप्पा नर-नारियो से भरा था। फिर भी वह लोगो की टागो के बीच से निकला। नन्ही सुबकियो के साथ उसके मुह से निकल रहा था—"मा, ओ मा, ओ पिताजी " मन्दिर के द्वार के पास भीड बहुत घनी थी—भारी-भरकम और चौडे कधो वाले लोग लाल आखो से चिंगारिया छोडते एक-दूसरे को धकिया रहे थे। उनकी टागो के बीच से निकलने के लिए बेचारे बच्चे ने बड़ा सघर्ष किया, और अगर वह अपने गले का पूरा ज़ोर लगा कर

"पिताजी, ओ मा" पुकार कर चीखा-चिल्लाया न होता तो भीड़ के उन लोगों को अपने धक्का-मुक्की में गड़बड़ा कर उनके पैरों तले ही कुचल गया होता । उमड़ती भीड़ में एक आदमी ने उसकी चीख सुनी, और बड़ी कठिनाई से झुक कर बालक को अपनी गोद में उठा लिया ।

'तुम यहा कैसे आ गये, बच्चा ? तुम किसके बेटे हो ?"—उस आदमी ने भीड को चीरते हुए उससे पूछा । बच्चा अब पहले से भी अधिक जोर से रो पडा और उसके मुह से केवल यही शब्द निकल सके—"मै मा के पास जाऊगा ।"



उस आदमी ने इधर-उधर ले जाकर उसका दिल बहलाने की कोशिश की

उस आदमी ने इधर-उधर ले जाकर उसका दिल बहलाने की कोशिश की । "तुम घोडे पर चढोगे ?"—हिडोले की ओर बढते हुए उसने दुलार से पूछा । बच्चे का गला अब एक साथ हजार सिसकियों में फूट पडा । रह-रह कर एक ही आवाज उसके मुह से निकलती थी "मै मा के पास जाऊगा, पिताजी के पास जाऊगा ।"

वह आदमी अब उधर बढा, जहा मदारी बीन बजा कर साप नचा रहा था । "वह देखो, मदारी कितनी बढिया बीन बजा रहा है!" उसने बच्चे से अनुरोध किया । लेकिन बच्चे ने उगलिया डाल कर कान बद कर लिए, और दूने जोर से रोने लगा—"मै मा के पास जाऊगा, पिताजी के पास जाऊगा ।" फिर वह आदमी उसे गुब्बारे के पास ले गया—यह सोच कर कि शायद गुब्बारो के भडकीले रगो से बच्चे का ध्यान बट जाए और वह शान्त हो जाए । "वह सतरगी गुब्बारा लोगे ?"—उसने प्यार से बच्चे को फुसलाया । बच्चे ने उडते हुए गुब्बारो की ओर से आखे फेर ली और सिसकिया भरता रहा—"मै मा के पास जाऊगा, पिताजी के पास जाऊगा ।"

बच्चे को खुश करने की आकाक्षा से वह सदय व्यक्ति आग्रहपूर्वक उसे फाटक के पास ले गया, जहा माली बैठा था । "देखो न, इन सुन्दर फूलो की महक कितनी अच्छी है !

गले मे पहनने के लिए एक माला ले दू । पसद है न ?" बच्चे ने फूलो की डलिया की ओर से अपनी नाक घुमा ली, और फिर वही सिसकती बुदबुदाहट—"मा के पास जाऊंगा, पिताजी के पास जाऊगा ।"

बेचैन बच्चे को मिठाई देकर प्रसन्न करने की तरकीब सोच वह व्यक्ति उसे मिठाई वाले की दुकान पर ले आया । "बताओ तो, कौन-सी मिठाई लोगे, मेरे मुन्ना !"—उसने पूछा । बच्चे ने मिठाई की दुकान की ओर से अपना मुंह मोड लिया और सिसकियां भरता हुआ वही कहता रहा—"मै मा के पास जाऊगा, पिताजी के पास जाऊंगा !"



(1) स्वामी दयानन्द

जीवन मे आए दिन ऐसी छोटी-मोटी घटनाए होती रहती है, जो वड़ी अर्थसूचक होती है, पर हम उनकी ओर ध्यान नही देते । उदाहरण के लिए, हिन्दू परिवार का हर आदमी अक्सर देखता है कि देवताओ की मूर्तियो पर चढाए गए प्रसाद को चूहे खाते रहते है । इस पर न वडे ध्यान देते है, न वच्चे । पर इसी छोटी-सी वात ने किशोर मूलशकर को स्वामी दयानन्द सरस्वती बना दिया ।

महापुरुष और साधारण लोगो मे यही एक वडा अन्तर होता है कि साधारण लोग छोटी-छोटी वातो को यह कह कर टाल देते है कि ऐसा तो होता ही रहता है । पर महापुरुप उन पर सोचते है और उनकी तह मे जाने की कोशिश करते है । वे किसी वात को केवल इसलिए नही मान लेते कि ऐसा परम्परा से होता आया है ।

वालक मूलशकर के पिता शिव के भक्त थे । वे हर साल शिवरात्रि के दिन व्रत रखते और अपने घर वालो से रखवाते थे । एक वार शिवरात्रि के दिन शिवजी की मूर्ति पर प्रसाद चढा । तेरह वरस के वालक मूलशकर को वताया गया कि शिवजी प्रसाद का भोग करेगे । रात का समय था । सव लोग सो गए थे । पर व्रत की थकान के वावजूद मूलशकर जाग रहा था । उसने देखा कि शिवजी पर चढे प्रसाद को एक चूहा वार-वार



स्वामी दयानन्द

खा रहा है। मूलशंकर के मन में प्रश्न उठा कि क्या शिवजी में इतनी भी शक्ति नहीं है कि चूहे से अपने प्रसाद की रक्षा कर सकें? यह देख कर उसके मन को ठेस लगी। उसका मन विद्रोह कर उठा, उसकी आत्मा पुकार उठी कि यह पत्थर का शिव, उसकी पूजा और व्रत सब ढकोसला है। और उसने निश्चय किया कि वह घर-बार, माता-पिता, धन-दौलत सब कुछ छोड़ कर सच्चे शिव का पता लगाएगा। वही बालक मूलशंकर आगे चल कर स्वामी दयानन्द सरस्वती कहलाया।

बम्बई के उत्तर में गुजरात प्रदेश के एक हिस्से को काठियावाड़ या सौराष्ट्र कहते हैं। उसी काठियावाड़ में मोरवी नाम की एक रियासत थी, उस रियासत के टंकारा नाम के नगर में सन् 1834 में मूलशंकर का जन्म हुआ था।

मूलशंकर के पिता का नाम कर्शन जी था। वह साहूकारा करते थे और कहा जाता है कि वहां के मुसलमान व्यापारी उनसे हजारों रुपये कर्ज लेते थे। कर्शन जी के पास रुपया था, जमीन-जायदाद थी और वह रियासत में जमादार भी थे। जमादार का पद आजकल के तहसीलदार के बराबर होता था। जमादार ही रियासत की फौज का भी इन्तजाम करता था।

कर्शन जी शंकर के कट्टर भक्त थे। उन्होंने डेमी नदी के किनारे कुबेर-नाथ महादेव का एक मन्दिर भी बनवाया था, जो अब तक वहां मौजूद है। 8 वर्ष

चूहा प्रसाद खा रहा था...



[illegible] उम्र में मूलशकर का जनेऊ हुआ। उसके वाद ही कर्सन जी उनको पूजा-पाठ करने और उपवास रखने के लिए मजबूर करने लगे। मूलशकर की मा उतने छोटे बच्चे से उपवास रखवाने के विरुद्ध थीं। मां और बाप के बीच कहा-सुनी हुई और बात उस समय टल गई।

मूलशकर की पढाई-लिखाई पांच वर्ष की उम्र से ही शुरू हो गई थी और कुछ ही दिनों में उन्हें संस्कृत के बहुत-से श्लोक याद हो गए थे। 14 वर्ष की उम्र होते-होते उन्होंने संस्कृत भाषा और व्याकरण अच्छी तरह सीख लिया था। कहते हैं कि पूरा यजुर्वेद उन्होंने जवानी याद कर लिया था और उन्हे दूसरे वेदो के भी बहुत-से मन्त्र जवानी याद हो गए थे। मूलशकर की बुद्धि तेज थी और उन्हे विद्या से प्रेम था।

इसी समय वह घटना हुई, जिससे मूलशकर का मन दुनिया से उचटने लगा और जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है। मूलशकर तव 13 वर्ष के थे। पिता की आज्ञा से उन्होंने शिवरात्रि का व्रत रखा। दिन भर वह पिता और दूसरे लोगो के साथ शहर के वाहर एक शिव मन्दिर मे पूजा के लिए गए। शिवरात्रि की पूजा रात मे चार वार की जाती है। यह नियम है कि पूजा करने वाले को रात भर जागना चाहिए। मूलशकर ने पहली वार व्रत रखा था। नियम का पालन करने के लिए वह वरावर जागते रहे। लेकिन उनके पिता और पुजारी लोग आधी रात की पूजा के वाद मन्दिर के वाहर जाकर मीठी नीद का आनन्द लेने लगे। मन्दिर मे अकेले मूलशकर जाग रहे थे। थोडी देर वाद एक चूहा निकला और शिवजी की मूर्ति पर चढाए गए प्रसाद को कुतर-कुतर खाने लगा। मूलशकर पुराणो मे शकर के तेज और वीरता की वहुत-सी कथाए पढ चुके थे। चूहे को वार-वार मूर्ति का अपमान करते और पुजारियो को मीठी नीद सोते देख कर उनके मन मे यह वात घर कर गई कि न तो मन्दिर की मूर्ति मे सच्चे शिवजी थे और न सो जाने वाले लोग शिवजी के सच्चे भक्त थे। उसी समय उन्होंने तय किया कि वह सच्चे शिव का पता लगाएगे और कभी किसी मूर्ति की पूजा नही करेगे। पिता को जव उनके विचार मालूम हुए, तव वह वहुत विगडे। उन्होंने मूलशकर को एक सिपाही के साथ घर भेज दिया। उन्होंने सख्ती के साथ मूलशकर को ताकीद की कि व्रत न तोडना। परन्तु मूलशकर ने आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया और व्रत तोड दिया।

उसी जमाने मे एक और घटना हुई, जिसका मूलशकर के जीवन पर गहरा प्रभाव पडा। एक वार मूलशकर एक मित्र के यहा किसी उत्सव मे शरीक होने गए थे। वहां अचानक उन्हे खवर मिली कि उनकी वहन की मृत्यु हो गई है। मूलशकर जव घर से चले

थे, तब उनकी बहन बिल्कुल अच्छी थी। बहन की अचानक मृत्यु की खबर सुन कर उनके हृदय पर गहरी चोट लगी। तीन ही वर्ष के बाद उनके परिवार मे एक और मौत हुई। इस बार उनके चाचा चल बसे। मूलशकर के मन मे बार-बार प्रश्न उठने लगा कि मृत्यु क्यो होती है और उसे कैसे जीता जा सकता है? अब उनके लिए सच्चे शिवजी का पता लगाना और भी आवश्यक हो गया था।

एक ओर मूलशकर के मन मे विचारो की ये आधिया उठ रही थी, दूसरी ओर उनके पिता ने बेटे का चौदहवा साल लगते ही उसके विवाह की ठान ली। पिता को अधिक पढाई-लिखाई पसद नही थी। वह लडके को थोडा पढा कर अपनी तरह जमादार बनाना चाहते थे। लेकिन मूलशकर काशी जाकर पढना चाहते थे। बहुत कहने-सुनने पर पिता कुछ दिनो के लिए मूलशकर की मगनी को रोक देने के लिए राजी हो गए। लेकिन मूलशकर को काशी भेजने से उन्होने साफ इन्कार कर दिया। उन्होने उनकी पढाई का दूसरा प्रबध किया। उनकी जमीदारी मे घर से कुछ ही मील दूर एक विद्वान पडित रहते थे। मूलशकर को उनके ही पास पढने भेज दिया गया।

इसके बाद पिता ने फिर पडित जी के पास से बेटे को वापस बुला लिया और विवाह की तैयारी शुरू कर दी। उधर मूलशकर विवाह करके गृहस्थी के झझट मे फसने के लिए बिल्कुल तैयार न थे। वह तो घर से दूर रह कर सच्चे शिव का पता लगाना चाहते थे। उनके विचारो के लिए वह परीक्षा की घडी थी। एक तरफ माता-पिता, घर-बार, धन-दौलत और विवाहित जीवन के आनन्द का मोह था और दूसरी तरफ मौत को जीतने और संसार के कल्याण के लिए सच्चे शिवजी को ढूढने की इच्छा। मूलशकर इस परीक्षा में सफल हुए। उधर उनके विवाह की तैयारिया हो रही थी, इधर वह सदा के लिए घर-बार छोड कर काटो की राह पर चल पडे। उनकी उम्र उस समय 22 वर्ष की थी।

घर छोड कर पहले वह एक भक्त सज्जन के पास गए, जो थोडी ही दूरी पर रहते थे। पर वह भक्त मूलशकर की ज्ञान की प्यास न बुझा सके। उसके बाद मूलशकर ने वैरागियो जैसे भगवा रग के कपडे पहने और 3 महीने तक यहा-वहा वैरागियो की टोलियो के साथ घूमते रहे। एक दिन वह एक मेले मे पहुचे, जहा उनके गाव के कुछ लोगो ने उनको पहचान लिया और उनके पिता को खबर कर दी। पिता उन्हे पकड कर फिर घर ले आए और उन पर सिपाहियो का पहरा बैठा दिया। तीन दिन पिता की कैद मे रह कर चौथे दिन वह फिर निकल भागे। उसके बाद वह फिर कभी घर न लौटे।

मूलशकर ने दूसरी और अन्तिम बार घर छोडने के बाद 8 वर्ष तक नर्मदा नदी के

किनारे योग और प्राणायाम का अभ्यास किया। उन्होंने अब ब्रह्मचारी का बाना पहन लिया था और उनका नाम दयानन्द पड चुका था। योग के बल पर, बाद के जीवन मे, उन्होंने एक बार चार घोडो की बग्घी को हाथ से रोक कर एक राजा साहब को चकित कर दिया था। एक दूसरे अवसर पर उन्होंने केवल एक अगूठे पर जोर देकर पूरे बदन को पसीना-पसीना कर लिया था। लेकिन इस योग से भी उनके मन को शान्ति न मिली। वह उत्तर भारत की ओर चल पड़े और बड़े-बड़े तीर्थो के चक्कर लगाते रहे। तीर्थो मे तरह-तरह के साधुओ का जमघट होता है। सधुओ के अलग-अलग सम्प्रदाय है, उनके अलग-अलग मत है। मूलशकर सभी तरह के साधुओ से मिले, उनसे अपने प्रश्नो के उत्तर पूछते रहे, उनसे वाद-विवाद करते रहे। पर 14 वर्ष बीत जाने पर भी उनको कोई सच्चा गुरु नही मिला।

स्वामी विरजानन्द

सच्चे गुरु की खोज मे दयानन्द मथुरा पहुचे। मथुरा मे एक विद्वान् सन्यासी रहते थे, जिनका नाम स्वामी विरजानन्द था। स्वामी विरजानन्दजी नेत्रहीन थे, पर विद्या और ज्ञान मे बहुत बढे-चढे थे। दयानन्द ने उन्ही को अपना गुरु बनाया। उनकी पाठशाला मे दयानन्द ने तीन वर्ष मे और बहुत कुछ सीखा। विरजानन्दजी ग्रथ पढाने के अलावा उपदेश भी दिया करते थे। उन उपदेशो मे समाज की कुरीतियो, साधुओ के पाखण्ड, छुआछूत की निन्दा, देश की गुलामी आदि की बाते होती थी। उन उपदेशो ने स्वामी दयानन्द को पक्का देशभक्त और निर्भीक समाज-सुधारक बना दिया।

विद्या पढ चुकने पर गुरु को दक्षिणा देने की प्रथा पुरानी है। दयानन्द के पास गुरु को देने के लिए कुछ न था। इसलिए उन्होने कुछ लौग ही गुरु-दक्षिणा मे भेट की। विरजानन्दजी ने उस दक्षिणा को अस्वीकार करते हुए कहा—"मै तो दक्षिणा मे तुम्हारा पूरा जीवन मागता हू। जब तक जीओ, तब तक सच्चे धर्म का प्रचार करो। पाखण्ड मिटाने के लिए काम करो और जरूरत पडने पर उसके लिए प्राण भी दे दो।" शिष्य दयानन्द ने गुरु की बात गाठ बाध ली।

स्वामी दयानन्द अपने गुरु के बडे भक्त थे। कहा जाता है कि कभी-कभी गुरुजी थोडी बात पर भी बिगड़ पडते थे। एक बार उन्होने नाराज होकर दयानन्द को लाठी से

मारा, जिसकी चोट का निशान उनके शरीर पर जीवन भर बना रहा। दयानन्द उस चोट के निशान को दिखा कर सदा अभिमान के साथ कहा करते थे कि "यह गुरुजी का प्रसाद है। इसी की बदौलत कुछ सीख सका हू।" स्वामी विरजानन्द की मृत्यु की खबर पाकर स्वामी दयानन्द बहुत दुखी हुए थे। अपने दुख को उन्होने इन शब्दो मे प्रकट किया था,—"आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।"

स्वामी दयानन्द गुरु और ज्ञान की तलाश मे तीर्थों और देश के बहुत-से भागो का चक्कर लगा चुके थे। अब उन्होने सच्चे धर्म के प्रचार के लिए पूरे देश का दौरा शुरू किया। उनकी बाते सुन कर बहुत-से लोग उनके मत को मानने वाले बन गए। लेकिन जहा एक ओर स्वामीजी के मत को मानने वालो की सख्या बढी, वहा दूसरी ओर बहुत-से लोग उनके विरोधी भी हो गए। स्वामीजी के विरोधियो मे आम तौर से मठो के महन्त, मन्दिरों के पुजारी, और नाच-रग मे मस्त रहने वाले राजा लोग थे। उन विरोधियो ने स्वामीजी को मार डालने की भी कोशिश की।

कर्णवास नाम के स्थान पर एक आदमी को स्वामीजी की हत्या करने को भेजा गया। पर जब वह स्वामीजी के सामने पहुचा, तब उसकी हिम्मत जवाब दे गई और वह उनके चरणों मे गिर कर माफी मागने लगा। कई और लोगो ने स्वामीजी के विरुद्ध चालें चली, पर किसी को सफलता न मिली। स्वामीजी अपने विरोधियो को सजा दिलाने के भी खिलाफ थे। वह कहा करते थे कि "मै लोगो को छुडाने आया हू, बधवाने नही।"

बडे-बडे विद्वानो से स्वामीजी की बहसे हुई। ये बहसे धार्मिक विषयो पर होती थी। ऐसी धार्मिक बहसो को शास्त्रार्थ कहते है। स्वामीजी के सामने शास्त्रार्थ मे कोई भी न टिक सका। विरोधी लोग स्वामीजी की बातो का जवाब न दे पाते थे। इसलिए



स्वामीजी के सामने शास्त्रार्थ में कोई न टिक पाता।

हार कर वे कहीं-कहीं ओछेपन पर उतर आते थे। एक बार सूरत मे स्वामीजी पर पत्थर बरसाए गए, जिस पर स्वामीजी ने कहा—"जनता मुझ पर पत्थर भी फेंके, तो मैं उसे फूल ही मानता हूं।"

अन्त मे, जो होना था, होकर रहा। 30 सितम्बर, सन् 1883 की बात है। उस दिन केवल एक रसोइया स्वामीजी की सेवा मे था। स्वामीजी जोधपुर मे थे। जोधपुर के राजा की ऐयाशी की बहुत निन्दा कर चुके थे, जिससे राज दरबार की वेश्याए चिढ गई थी। उन वेश्याओ ने स्वामीजी के विरोधियो से साठ-गाठ की और स्वामीजी के रसोइए को लालच देकर पटा लिया। रसोइए ने स्वामीजी को दूध मे शीशा पीस कर दे दिया। पता लगने पर स्वामीजी ने उलटे उसे कुछ रुपये दिए और नेपाल भाग जाने की सलाह दी, ताकि वह गिरफ्तार होने से बच सके।

जहर ने रातोरात असर किया। स्वामीजी की हालत बिगड़ने लगी। 16 अक्तूबर तक जोधपुर मे ही इलाज होता रहा। उसके बाद लोग स्वामीजी को आबू ले गए। वहां भी हालत न सुधरी। वहा से उन्हे अजमेर पहुचाया गया। वहां भी इलाज से कोई लाभ न हुआ। 30 अक्तूबर को हालत बहुत बिगड गई। तब स्वामीजी ने इलाज बद कर दिया। उसी दिन शाम को होठों पर मुस्कान लिए, मन्त्र पढते हुए और प्राणायाम करते हुए उन्होने शरीर त्याग दिया। उस दिन बड़ी दीवाली थी। स्वामीजी के चेहरे पर मरते समय भी तेज था। वह एक बार भी कराहे नही। यह देख कर लोगों को बडा अचम्भा हुआ। एक बडे नास्तिक श्री गुरुदत्त एम० ए० भी वहा मौजूद थे। उनका कहना था कि ईश्वर कोई चीज नही है। वह स्वामीजी की मौत का दृश्य देख कर बहुत प्रभावित हुए और उन्हें ईश्वर पर विश्वास हो गया।

जहर देने वाला रसोइया उनके कदमो पर गिर पड़ा।

एक देश के लिए एक भाषा की बात भी पहले उन्होंने ही सोची थी और हिन्दी को

राष्ट्रभाषा बनाने का उपदेश दिया था। उनका सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दी मे ही है। उसका अनुवाद ग्रब देश की लगभग हर भाषा मे हो चुका है। मुसलमानों और ईसाइयो के नेताओं से वह धर्म पर बहस करते थे। पर वह सम्प्रदायवादी नहीं थे।

स्वामीजी के समय मे देशप्रेम की भावना आम लोगों मे नहीं के बराबर थी। स्वामीजी ऐसे महापुरुष थे, जिनकी आंखें दूर तक देखती थीं। उन्होंने उस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि देश मे फैली हुई कुरीतियो का कारण बहुत हद तक हमारी गुलामी है। इसलिए उन्होने जन्म से गुजराती होते हुए भी धर्म-प्रचार और समाज-सुधार के साथ-साथ यह विचार भी अपने सामने रखा कि भारत एक देश है और पूरे देश को आजाद होना चाहिए। यही कारण है कि जब उन्होने आर्य समाज की नीव डाली और देश के हर हिस्से मे उसकी शाखाए खोली, तब अंग्रेज शासक चौकन्ने हो गए। आर्य समाज मे शरीक होने वाले लोगो की पुलिस उसी प्रकार निगरानी करने लगी, जैसे बाद मे कांग्रेस मे शरीक होने वालो की करती थी।

(2) रामानुजन

प्रथम महायुद्ध से भी पहले का समय था। देश पराधीन तो था ही, जल्दी आजादी मिलने की भी कोई सूरत सामने न थी। जो भारतीय बडी-बडी डिग्रिया प्राप्त कर बड़े-बड़े पदो पर नियुक्त थे, उनका भी कोई विशेष मान न था। ऐसी स्थिति में यह बात अनहोनी-सी लगती है कि एक गरीब ब्राह्मण का लडका दुनिया के नामी विद्वानो के बीच अपने ज्ञान और अपने देश की धाक जमा दे। पर रामानुजन गणित के ऐसे ही महान् पंडित थे। उनके पास किसी विश्वविद्यालय की कोई डिग्री नही थी। उनके पास किताबे खरीदने तक के लिए पैसे न थे। पर उनकी योग्यता देख कर विलायत के विद्वान् भी हक्के-बक्के रह गए।

मद्रास प्रदेश मे तंजौर नाम का एक जिला है। उस जिले में एक नगर कुंभकोणम् है। उस नगर के एक कुलीन और निर्धन परिवार मे सन् 1887 मे रामानुजन का जन्म हुआ। रामानुजन के पिता कपडे की एक दुकान मे मुनीम थे।

पिता ने बेटे को सात वर्ष की आयु मे हाई स्कूल मे पढने भेजा। तीन वर्ष मे ही गणित मे उनकी गति देख कर लोग अचम्भा करने लगे। दस वर्ष की आयु मे ही वह गणित के कठिन-से-कठिन प्रश्न चुटकी बजाते में हल कर देते। तेरह वर्ष की आयु मे तो उनकी योग्यता देख कर उनके अध्यापक चकित रह गए। एफ० ए० के विद्यार्थी को त्रिभुजों के सम्बन्ध मे एक कठिन विषय पढाया जाता है, जिसे त्रिकोणमिति (ट्रिग्नोमेट्री) कहते है। रामानुजन अभी दर्जा आठ मे ही पढ रहे थे कि उन्होने त्रिकोणमिति के कई गुर निकाल लिए। वह समझते थे कि वे गुर उनकी नई खोज थे। उन दिनो त्रिकोणमिति की एक पुस्तक पढाई जाती थी, जिसके लेखक श्री लौनी नाम के एक अग्रेज थे। वह किताब रामानुजन को कई वर्ष बाद देखने को मिली। उन्हे यह देख कर कुछ निराशा हुई कि उनकी खोज दुनिया को पहले से ही मालूम थी। रामानुजन को सोलह वर्ष की आयु तक गणित की कोई अच्छी पुस्तक देखने को भी नही मिली थी।

गणित के विद्यार्थियो को एफ० ए० के कोर्स मे कई नई चीजे सीखनी पड़ती है। 'अनन्त श्रेणी' भी इनमे से एक है। 1, 2, 3, 4 को हजारो अंको तक कोई भी जोड़ सकता है। इसी तरह एक, आधा,',चौथाई, आदि के सिलसिलो को भी जोड़ना या गुणा करना किसी हद तक सम्भव है। उस सिलसिले को, जिसके अगले अक का पिछले अक से एक निश्चित सम्बन्ध हो, श्रेणी कहते है। अनन्त श्रेणी उस श्रेणी को कहते है, जिसके अको की सख्या की अन्तिम सीमा निश्चित हो। रेडियो, इजीनियरी, बिजली, प्रकाश, चन्द्रमा, आदि की गति का हिसाब गणित के द्वारा ही लगाया जाता है। ऐसे हिसाब मे अक्सर अनन्त श्रेणी से काम लेना पड़ता है। अतः अनन्त श्रेणी के हल का कोई तरीका भी होना चाहिए। इसके कुछ तरीके एफ० ए०के विद्यार्थियों को बताए जाते है। लेकिन बहुत-सी अनन्त श्रेणिया ऐसी कठिन है कि उन्हे बडे-बडे गणित जानने वाले भी आसानी से हल नही कर सकते।

रामानुजन अभी इट्रेस पास भी नही हुए थे कि अनन्त श्रेणी से भिड गए। वह समय बडा विचित्र था। पराधीन भारत में अच्छी शिक्षा की ओर विदेशी सरकार का ध्यान न था। आज इस विषय पर बहुत अच्छी पुस्तकें मौजूद है। कई भारतीय विद्वानो ने अनन्त श्रेणी पर खोजे भी की है। उनकी पुस्तके भारत के हर अच्छे पुस्तकालय में मिलती है।



रामानुजन

विदेशी विद्वानो ने भी इस विषय पर बहुत कुछ लिखा है। उनकी पुस्तके भी भारत मे सबको मिल सकती है। लेकिन तब यह हालत नही थी। तब तक किसी भारतीय ने इस विषय पर कुछ लिखा ही न था और इस बारे मे खोज नही हुई थी कि संस्कृत में इस विषय की पुस्तके है या नही। अंग्रेजी मे विट्टेकर नाम के एक लेखक ने 'आधुनिक विश्लेषण' (मॉडर्न ऐनेलिसिस) नाम की एक अच्छी पुस्तक लिखी थी। पर वह भारत मे कही नही मिलती थी। अनन्त श्रेणी पर ब्रामविक की पुस्तक अच्छी मानी जाती है। यह पुस्तक भी उस समय तक नही लिखी गई थी। ऐसी दशा मे रामानुजन क्या पढ़ते? अपनी योग्यता कैसे बढाते? निर्धन थे, इसलिए विदेश से पुस्तके मगा नही सकते थे। किसी प्रकार उन्हे 'कार' की लिखी 'सिनापसिस' नाम की पुस्तक मिल गई। वह बहुत घटिया पुस्तक मानी जाती थी। आज उस पुस्तक को कोई पूछता तक नही। रामानुजन के जीवन के साथ उसका सम्बन्ध होने के कारण उसे बस याद भर कर लिया जाता है। लेकिन उसी पुस्तक ने रामानुजन को रास्ता दिखाया।

रामानुजन की जीवनी दो भारतीयो ने लिखी है। उनके नाम है —शेषु अय्यर और रामचन्द्र राव। उनका कहना है कि रामानुजन ने 'कार' की पुस्तक के कई गुर इट्रेंस पास करने से पहले ही सिद्ध कर दिखाए थे। 'कार' की पुस्तक मे 6,165 गुर है और सभी बहुत कठिन माने जाते है। इस विषय पर रामानुजन ने और कोई पुस्तक नही देखी थी। इसलिए उन्हे अपने हर हल पर नई खोज का गुमान होता था। और यह सच भी था कि रामानुजन सचमुच दुनिया को कई नई खोजे दे गए। अनन्त श्रेणी के बारे में उनकी खोजे सदा अमर रहेगी।

दिसम्बर, सन् 1903 मे रामानुजन ने मैट्रिक पास किया। उन दिनो मद्रास प्रात मे अग्रेजी या गणित मे विशेष योग्यता दिखाने पर विद्यार्थियो को 'सुब्रह्मण्यम् छात्रवृत्ति' मिलती थी। रामानुजन ने भी गणित मे विशेष योग्यता दिखाई, इसलिए उन्हे भी यह छात्रवृत्ति मिली और जनवरी मे रामानुजन कुंभकोणम् के आर्ट कालेज की एफ० ए० कक्षा मे दाखिल हुए। अब उनका मन गणित छोड कर और किसी विषय मे नही लगता था। इसलिए वह अन्य विषयो मे कमजोर रह गए और फेल हो गए। उनका वजीफा बंद हो गया। लाज के मारे वह कालेज छोड कर घर से भाग निकले और काफी घूम-घाम कर सन् 1905 मे फिर कालेज लौटे। परन्तु उनकी हाजिरी कम हो गई थी, इसलिए उन्हे परीक्षा मे बैठने नही दिया गया। सन् 1906 मे वह मद्रास के पच्छिपावा कालेज मे भर्ती हुए। कुछ दिनो बाद वह बीमार पड गए और पढ़ाई छोड कर घर लौट आए। वह दिसम्बर 1907 मे एफ० ए० की परीक्षा मे प्राइवेट बैठे, लेकिन फेल हो गए। उनकी स्कूली शिक्षा यही समाप्त हो गई, लेकिन उनका गणित-प्रेम जीवन भर बना रहा। गणित छोड़ कर किसी अन्य विषय मे उनका मन कभी न लगा।

सन् 1909 मे उनका विवाह हो गया। अब उन्हे रोजी की चिन्ता हुई। लेकिन बिना डिग्री के नौकरी नही मिलती थी। किसी प्रकार सन् 1912 मे उन्हे मद्रास पोर्ट ट्रस्ट मे क्लर्की मिल गई। श्री रामस्वामी अय्यर और दोनो भारतीय जीवनी-लेखकों ने नौकरी पाने मे उनकी बडी सहायता की थी।

गणित में उनकी खोजे सन् 1911 मे छपी। उनको देख कर दुनिया भर के विद्वान दंग रह गए। सर फ्रांसिस स्प्रिग और सर गिलवर्ट वाकर नाम के दो अग्रेजो नें उन्हे विशेष छात्रवृत्ति दिलाई। सन् 1913 में प्रोफेसर हार्डी से रामानुजन का पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। प्रोफेसर हार्डी कैम्ब्रिज मे गणित की एक शाखा के प्रोफेसर थे। हार्डी ने एक पुस्तक मे उन सबका वर्णन किया है। उन पत्रो मे रामानुजन ने गणित के

120 गुरो को सिद्ध किया था। इन गुरो में से कुछ तो पहले ही सिद्ध हो चुके थे, उन्हे रामानुजन ने एक नए ढग से हल किया था। लेकिन कई गुरो के हल बिल्कुल नए थे। रामानुजन के नए हलो मे से कुछ पर बाद मे वाइली, फ्रिस्टन, टिक्सन, वाट्सन जैसे प्रसिद्ध गणितज्ञो ने खोजे की।

प्रोफेसर नेवाइल और प्रोफेसर हार्डी ने सन् 1914 मे रामानुजन को लदन बुला लिया। लदन मे रामानुजन को बहुत कुछ पढने-लिखने का मौका मिला। रामानुजन की कुछ खोजे छप चुकी है। छपी हुई खोजे 400 पृष्ठो से अधिक है। लेकिन उनकी इससे कही अधिक खोजे अनछपी पडी है।

सन् 1917 मे रामानुजन बीमार पड गए। इस बीमारी से वह कभी अच्छे न हुए। इसी बीमारी ने अन्त मे उनकी जान भी ले ली। लेकिन रामानुजन ने बीमारी मे भी परिश्रम करना बद न किया।

सन् 1918 मे वह ट्रिनिटी कालेज कैम्ब्रिज के फेलो बनाए गए। उसी साल इग्लैण्ड की रायल सोसाइटी ने भी उन्हे फैलो बनाया। यह एक बहुत बडा सम्मान था, जो उन दिनो भारतीयो को मुश्किल से ही मिलता था।

रामानुजन की अन्तिम और बहुत ही महत्वपूर्ण खोज को आजकल 'माकथीटा फकशन' कहा जाता है। इस खोज के छपने के दो मास बाद तैतीस वर्ष की आयु मे सन् 1920 मे रामानुजन इस दुनिया से उठ गए। उनकी आखिरी खोज का महत्व दुनिया ने पन्द्रह वर्ष बाद पहचाना। भौतिक विज्ञान, खगोल विज्ञान, परमाणु शक्ति सभी मे उसका महत्व है।

रामानुजन बडे धार्मिक व्यक्ति थे। देवी-देवताओ के वह बडे भक्त थे। पुनर्जन्म और परलोक मे उनका विश्वास था। वह कहा करते थे कि नामक्कल की देवी मुझे सपने मे गुर और उनके हल बता जाती है। बिस्तर से सोकर उठते ही वह हिसाब लगाना शुरू कर देते थे। उच्च कुलीन ब्राह्मणो जैसा खान-पान और रहन-सहन उन्होने लदन मे भी बनाए रखा। बीमारी मे भी उन्होने मदिरा, मांस, शोरबा, आदि नही छुआ। वह विलायत मे अपना भोजन खुद पकाते थे। वह बिना नहाए रसोई मे कभी नही जाते थे। विलायत मे भी रामानुजन उस समय की भारतीयता की जीती-जागती तस्वीर बन कर रहे।

उनके जीवन की एक घटना जानने लायक है। रामानुजन तब लंदन मे थे। वह पटनी के अस्पताल मे बीमार पडे थे। प्रोफेसर हार्डी अपनी मोटर मे बैठकर रामानुजन

को देखने आए। मोटर का नम्बर 1729 था। दोनो की वातचीत के दौरान सख्याओ की चर्चा चली। प्रोफेसर और रामानुजन का ध्यान मोटर के नम्बर पर गया। प्रोफेसर साहब का खयाल था कि वह सख्या बडी वेतुकी और वेकार किस्म की सख्या है, इसमे कोई खंड आदि नही बन सकते हैं। रामानुजन ने बिना एक क्षण रुके टोक दिया। उन्होने कहा—"जी नही, वह बडी दिलचस्प सख्या है। यह सख्या दो सख्याओ के घनफल का जोड है।" प्रोफेसर कलम-कागज लेकर बैठ गए और कुछ देर हिसाव लगाने के बाद उन्होने हार मान ली। हिसाव लगाने पर पता चला कि 12 और 1 का घनफल ($12^3+1^3=1729$) जोडा जाए, तो 1729 आएगा। रामानुजन ने फिर कहा कि ऐसी दो संख्याए और हैं। यह भी सही था, क्योकि $10^3+9^3=1729$ होता है। आम तौर पर इतने बडे हिसाव जवानी लगा लेना वहुत कठिन होता है। प्रोफेसर हार्डी चक्कर में आ गए। उन्होने अपनी पुस्तक मे लिखा है कि प्रत्येक संख्या रामानुजन की मित्र थी।

विदेशियो ने लिखा है कि 19वी और 20वीं शताब्दी मे रामानुजन की जोड का कोई दूसरा गणितज्ञ नही हुआ। पुराने गणितज्ञो मे यूलर और जैकोवी का वडा मान है। रामानुजन उन्ही के बराबर माने जाते है। गणित के बहुत-से गुर रामानुजन ने ऐसे निकाले हैं, जिन्हें आज तक कोई सिद्ध नही कर पाया है। इन गुरो का हल करने की जो विधियां उन्होंने निकाली, वे उनकी अपनी थी। वे विधिया वहुत पेचीदा हैं। सरल विधियों की खोज की जा रही है।

गणित की सेवा करके रामानुजन ने न केवल भारत का मान वढाया, बल्कि दुनिया भर के विज्ञान की सेवा भी की। पढने-लिखने का अवसर असल मे उन्हे लदन मे 5 वर्ष के लिए मिला। अग्रेजी के अतिरिक्त उन्हें और कोई विदेशी भाषा नही आती थी। उन्होने वहुत कम उम्र पाई। उनके पास कोई डिग्री नही थी। फिर भी वह इतना वड़ा काम कर गए, जितना 19वी और 20वी सदी मे कोई नही कर पाया। रोगर्स नाम के एक गणितज्ञ रामानुजन से पहले हो चुके हैं। बीजगणित के विद्यार्थियो को रोगर्स के कई गुर पढाए जाते हैं। लेकिन आज उन गुरों में रोगर्स के साथ रामानुजन का भी नाम जुडा हुआ है। उन गुरों को 'रोगर्स-रामानुजन-साध्य' कहा जाता है। रामानुजन से पहले उन्हें कोई नही हल कर पाया था। लागरे को आज का वहुत वड़ा गणितज्ञ माना जाता है। वह रामानुजन के वाद है। एक खास अनन्त श्रेणी का

जोड लागरे के नाम से प्रचलित है । पर वह अनन्त श्रेणी रामानुजन के गुरो की वदौलत ही हल हो सकी ।

रामानुजन की मृत्यु पर एक विदेशी विद्वान ने कहा है "रामानुजन के काम के महत्व के वारे मे अलग-अलग मत हो सकते है । उनके काम को जाचने की कसौटिया भी अलग-अलग हो सकती है । अभी तक यह नही मालूम कि भविष्य मे गणित की धारा पर उनके कामो का क्या प्रभाव होगा । यदि वह कुछ दिन और जीवित रहते, तो कही अधिक महान् होते । लेकिन कुछ भी हो, उनकी गम्भीरता, लगन और मौलिकता वेजोड है । यह कहा जा सकता है कि यदि उन्हे नियमित शिक्षा की साधारण सुविधाए मिलती, तो गणित की दुनिया को जो कुछ उन्होने दिया, उससे कही अधिक दे सकते । लेकिन तब वह केवल विलायती छाप के एक प्रोफेसर होते । दुनिया स्वतन्त्र, परिश्रमी और स्वय अपने भरोसे पर काम करने वाले रामानुजन को खो देती ।"

रामानुजन को न पढने की सुविधा प्राप्त थी, न उनके पास पुस्तके खरीदने के लिए पैसे थे, न उन्होने लम्बी उम्र ही पाई, फिर भी वह केवल अपनी जी तोड मेहनत की वदौलत गणित के आकाश पर तारा वन कर चमके । ये सब सुविधाए उनको प्राप्त होती, तो न जाने गणित की विद्या को उन्होने कितना आगे वढाया होता । उनका जीवन हर गरीब भारतीय के लिए मेहनत और अपने काम के लिए लगन का नमूना है । विना धन, विना साधन, विना सहारे, केवल अपनी प्रतिभा के बल पर गरीब-से-गरीब आदमी भी क्या कुछ नही कर सकता, रामानुजन के जीवन से हमे यही सीख मिलती है ।

(1)

सुखी गृहस्थ जीवन



आदमी को शरीर के सुख के साथ-साथ मन का भी सुख चाहिए। मन के सुख के लिए आदमी को दूसरो से प्रेम, आपसी विश्वास, मेल-मिलाप और सगति चाहिए। आदमी खाना-कपडा आदि शारीरिक सुख की चीजे पाने के लिए मेहनत करता है और आम तौर से उस मेहनत का फल वह उन लोगो के साथ मिल कर भोगता है, जिन्हे वह अपना समझता है और जिनसे उसका प्रेम का नाता होता है। इसलिए आदमी घर या परिवार बना कर रहता है। घर या परिवार समाज की बुनियाद है। घर ही वह जगह है, जहा आदमी को शरीर और मन, दोनो का सुख प्राप्त हो सकता है।

घर का महत्व

किन्तु हर घर मे तन और मन, दोनो के सुख के पूरे साधन नही होते। साधन हो, तो भी यह जरूरी नही है कि उनके होने भर से ही आदमी को सुख प्राप्त हो जाए। ऐसे अनेक परिवार है, जहा सामान की कमी नही है। फिर भी समय पर चीज नही मिल पाती। इसलिए सुखी जीवन के लिए यह भी जरूरी है कि घर का प्रबध अच्छा हो। उदाहरण के लिए, सभी घरो मे कपडा सीने की सूई होती है। यदि उस सूई को एक स्थान पर सदा एक ही डिब्बे मे रखा जाए, तो जरूरत पड़ने पर अधेरे मे भी वह आसानी से मिल सकती है। किन्तु यदि सूई रखने का स्थान निश्चित न हो, तो काम पडने पर वह तुरन्त न मिल पाएगी। फल यह होगा कि जिसको सूई की आवश्यकता होगी, उसे झुझलाहट होगी और गुस्सा आएगा। यदि चीजे कम भी हो, पर ठीक ढग से रखी और बरती जाए, तो उनसे सबको सुख मिल सकता है।

घर का प्रबंध

जिस घर का प्रबंध ठीक नहीं होता, उस घर में सुख-शान्ति नहीं रहती और जिस घर में सुख-शान्ति नहीं होती, वहां बच्चों [illegible] और मानसिक [illegible] पैदा हो जाती है। सुखी घर में ही बच्चों की बुद्धि का ठीक विकास होता है। इसलिए सुखी गृहस्थी के लिए जरूरी है कि गृहिणी सभी घर की [illegible], [illegible] और घर का प्रबंध करने में कुशल हो। गृहिणी का सबसे पहला कर्तव्य यह है कि वह परिवार के जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाए रखे। उसे घर का प्रबंध इस तरह करना चाहिए कि घर-परिवार के हर [illegible] सुख और आनन्द का केन्द्र बन जाए। जहां पति-पत्नी के बीच आपसी प्रेम और समझौते की भावना नहीं होती, जहां सहयोग की जगह झगड़े चलते रहते हैं और हर समय तू-तू मैं-मैं होती रहती है, वहां घर के सब लोग दुखी और परेशान रहते हैं, वहां बच्चों का जीवन नष्ट हो जाता है।

जहां सहयोग की जगह झगड़े चलते रहते हैं...

घर में तरह-तरह की चीजों की जरूरत पड़ती रहती है। उन्हें जुटाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। इसलिए धन कमाना गृहस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। स्त्री और पुरुष मिल कर परिवार की नींव रखते हैं। परिवार का [illegible] और उस को चलाने की भी जिम्मेदारी उन्हीं पर होती है। परिवार की आवश्यकता पूरी करने के लिए धन कमाना मुख्य रूप से पुरुष की जिम्मेदारी होती है। आम तौर से पुरुष के पैदा किए हुए धन से ही जरूरत की चीजें खरीदी जाती है। पर उस धन का सदुपयोग करना स्त्री का काम होता है। केवल धन जुटाने से ही काम नहीं चलता। धन का ठीक उपयोग भी उतना ही आवश्यक है, जितना धन पैदा करना। यह कहना कठिन है कि एक मामूली सुखी गृहस्थी के लिए कितना धन कमाना जरूरी है। अलग-अलग देशों में यह हिसाब लगाया गया है कि कितने धन में साधारण खाना-कपड़ा और मामूली आराम मिल सकता है। पर उतना धन हर आदमी पैदा कर ले, इसका कोई पक्का रास्ता अभी तक अधिकतर देशों में नहीं निकल पाया है। हर देश में कुछ लोग कम और कुछ लोग अधिक धन पैदा करते हैं। इसलिए परिवारों का रहन-सहन भी उनकी आमदनी के

अनुसार होता है। जिसकी जैसी आमदनी होगी, वैसा ही उसका रहन-सहन होगा। पर घर के प्रबंध मे चीजो के जमा करने, उन्हे कायदे से रखने और बरतने का सबसे अधिक महत्व है।

स्त्री अपने नए घर मे

स्त्री जब पत्नी बन कर अपने नए घर मे आए, तब उसको उस घर का रग-ढग भली-भांति समझ लेना चाहिए। यदि गृहिणी अपने नए घर को न समझ कर मायके के रग-ढग पर ही चलती रहे, तो घर का रग भग हो जाता है। उनके नए परिवार मे पति-पत्नी के अलावा पति के माता-पिता, भाई-भाभी, बहन, सभी शामिल होते है। धीरे-धीरे बच्चो की सख्या भी बढती जाती है। इन सबकी आवश्यकताएं और मागे अलग-अलग होती है, जिन्हे गृहिणी को अपने पति की आमदनी के अनुसार पूरा करना पडता है। इसलिए गृहिणी मे यह गुण होना चाहिए कि वह शान्ति, सहानुभूति, समझदारी और धीरज के साथ घर वालो की आवश्यकताओ को समझे और उन्हे पति की आमदनी के अनुसार पूरा करने के उपाय सोचे। ऐसा करने मे कठिनाइया आ सकती है। पर उन कठिनाइयो को हँसी-खुशी पार करना ही गृहिणी का सबसे बडा गुण है। इस गुण के बिना कोई स्त्री अच्छी गृहिणी नही बन सकती।

कजूसी और किफायत

कजूसी और किफायत मे बहुत अन्तर है। बेकार खर्च को रोकना किफायतशारी है, और जरूरी चीजो पर खर्च न करना कजूसी है। जब परिवार के लोगो की उचित मागे कजूसी के कारण पूरी नही होती, तब उन्हे गुस्सा आता है। अच्छी गृहिणी सभाल कर खर्च करती है, पर कजूसी नही करती। इसी तरह अच्छी गृहिणी शान बघारने के लिए या दूसरो की होड मे फिजूलखर्ची भी नही करती। बेकार कामो मे रुपया उडा देने से वक्त पडने पर दूसरो के आगे हाथ फैलाना पडता है। कजूसी परिवार की सुख-शान्ति नष्ट कर देती है, तो फिजूलखर्ची भीख मगवाती है, जिससे सब चिन्ता के जाल मे फस जाते है। चिन्ता उन्हे क्रोधी और चिडचिडा बना देती है और घर अशान्ति का अखाडा बन जाता है। इसलिए चतुर गृहिणी इस तरह समझ-बूझ कर खर्च करती है कि न उस पर कजूसी का कलक लगे, न फिजूलखर्ची का दोष।

स्वास्थ्य

बीमारी परिवार के सुख का कोढ है । घर का एक भी व्यक्ति बीमार हो जाए, तो खर्च और चिन्ताए दोनो वढ जाती है । यदि कही दुर्भाग्य से वह घर का मालिक हुआ, तो घर की आमदनी भी वद हो जाती है । इसी तरह यदि कही गृहिणी बीमार हो जाए, तो घर का सारा प्रबध चौपट हो जाता है । इसलिए घर की सुख-शान्ति बनाए रखने के लिए घर वालो का तन्दुरुस्त रहना जरूरी है । और तन्दुरुस्ती ठीक रखने के के लिए और वातो के साथ-साथ नीचे लिखी तीन वातो का ध्यान रखना भी आवश्यक है ।

1 खाना सादा हो, मगर साफ-सुथरा हो, तो वह हितकर होता है । महगा होने से ही कोई खाना अच्छा नही हो जाता । खाने की साधारण चीजे यदि साफ-सुथरे ढग से पकी हुई हो, तो वे तन्दुरुस्ती को ठीक रख सकती है ।

2 खाने के वारे मे दूसरी वात यह है कि खाना खाने का समय निश्चित होना चाहिए । माताए अपने वच्चो को ज़वरन और वार-वार खाना खिलाती रहती है । इससे वच्चो का स्वास्थ्य विगड जाता है । वे वीमार रहते है, और घर वालो के लिए दुख का कारण वन जाते है । इसलिए कुशल गृहिणी वच्चो ही को नही, वल्कि परिवार के सव लोगो को निश्चित समय पर खाना देती है ।

3 गृहिणी को यह भी देखना चाहिए कि घर के लोग सोने, जागने और रोजाना के रहन-सहन मे स्वास्थ्य के नियमो का पालन करे । थोडा ध्यान देने से वच्चो मे ऐसी आदत डाली जा सकती है, जिससे वे स्वास्थ्य के नियमो के पावन्द वन जाए ।

नौकरो की समस्या

ज्यादातर घरो मे नौकर नही होते । विना नौकर के घर चलाना ज्यादा अच्छी वात है । इससे किसी का मोहताज नही रहना पडता और अपने ऊपर विश्वास वढता है । इसके अलावा जिन घरो मे नौकर होते है, वहा वे घर वालो को सुख पहुचाने के साथ-साथ दुख भी पहुचा सकते है । इसलिए गृहिणी को इतना चतुर होना चाहिए कि यदि नौकर हो, तो वह नौकरों से ठीक ढग से काम ले सके । बहुत-से झगडे ठीक समय पर काम करने और काम लेने से खत्म हो सकते है । अपनी आवश्यकता के अनुसार नौकर को सिखा लेना चाहिए । ऐसा करने मे गृहिणी को धीरज और सहानुभूति से काम लेना चाहिए । काम ऐसे ढग से और प्रेम से लेना चाहिए कि वह नौकर

स्वयं परोसा खाना

को खले नहीं। मिसाल के लिए, यदि घर में बरतन माजने के लिए महरी आती है, तो यह जरूरी है कि उसके आने से पहले ही घर के सब लोग खाना खा लें। महरी को और भी काम होते हैं, इसलिए उसको बिठाए नहीं रखना चाहिए। सबसे बड़ी बात यह है कि नौकर को भी आदमी समझना चाहिए। उससे गलती भी हो सकती है। इसलिए जरा-जरा-सी बात को राई का पहाड़ नहीं बनाना चाहिए।

मधुर व्यवहार

जिस तरह गृहिणी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि घर वालों की सब जरूरतें पूरी होती रहें, उसी तरह उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि सब प्रसन्न रहें। उसे पति और बच्चों के दिल बहलाने का विशेष ध्यान रखना चाहिए। काम-काज और बाहर के झंझटों से थका-हारा आदमी जब घर आता है, तब उसे स्त्री के मधुर व्यवहार और मीठी बातों से सुख मिलता है। यदि उस समय भी स्त्री अपने काम-धन्धों में ही फसी रहे या आते ही आदमी पर बरस पड़े, तो बाहर से मेहनत करके आया हुआ आदमी और भी परेशान हो जाता है। बार-बार ऐसा होने पर आदमी घर से दूर भागने लगता है और फिर अपना समय वहां बिताता है, जहां उसको खुशी मिलती है। कुछ नादान स्त्रियां भोजन करते-कराते समय दुनिया-जहान के बखेड़े लेकर बैठ जाती हैं और पति का भोजन जहर हो जाता है। गृहिणी को उचित अवसर देख कर ही पति से घरेलू कठिनाइयों की बात करनी चाहिए। कम-से-कम भोजन करते समय सबका प्रसन्न रहना जरूरी है।

परिवार से ही समाज बनता है। इसलिए यदि परिवार का जीवन सुखी न होगा, तो पूरे समाज का जीवन भी सुखी न होगा। परिवार में अधिकतर दुख इस कारण

(2) ऊन की बुनाई

स्त्रियों के लिए ऊन की बुनाई जानना आवश्यक है, क्योंकि एक तो घर के बुने हुए ऊनी कपड़े सस्ते और टिकाऊ होते हैं, और दूसरे बुनाई के द्वारा स्त्रियों के खाली समय का अच्छा उपयोग हो जाता है।

ऊन की बुनाई मे न किसी महगी मशीन की जरूरत पडती हैं और न दूसरे औजारो की । बस दो पतली-पतली सलाइया और कुछ ऊन हो, तो बाते करते, कथा सुनते, या रेल मे सफर करते हुए भी बुनाई हो सकती है ।

(1)

बच्चो के लिए ऊन नरम होनी चाहिए। बुनाई मे मोटी ऊन महीन के मुकाबले कुछ अधिक लगती है। किन्तु उसमे लाभ यह होता है कि मोटी ऊन की पोशाक बहुत फैलती है, इसलिए वह जल्दी छोटी नही पडती।

सलाइया कई प्रकार की होती है। लोहे की रगीन और लचकदार सलाइया अच्छी समझी जाती है। सलाई पकड़ने का ढग यह है कि सलाई का माथा बुनने वाले के शरीर की ओर हो और उसकी नोक बाहर की ओर।

ऊन बाजार मे गोले या लच्छियो के रूप मे मिलती है । लच्छियो को खरीद कर उनके गोले बना लेना चाहिए। गोले बनाते समय ऊन को कभी कस कर नही लपेटना चाहिए। इससे ऊन खराब हो जाती है।

गोले बनाने के बाद सलाई पर पोशाक की चौडाई के अनुसार कम या ज्यादा फन्दे डाले जाते है। फन्दे दो तरह से डाले जाते है। एक तरह के फन्दे एक ही सलाई पर हाथ से डाले जाते है, और दूसरी तरह के दोनो सलाइयो की मदद से डाले जाते है। एक सलाई पर चढाए गए फन्दे अच्छे रहते है। लगभग एक इच ऊन मे चार अथवा पाच फन्दे पड जाते है। किसी भी तरह से फन्दे डालने के लिए सबसे पहले सलाई पर एक सरकने वाली गाठ का फन्दा डालना चाहिए (चित्र स० 1)। एक सलाई से फन्दे डालते समय गोले को दाहिने हाथ की ओर से छोड देना चाहिए। बाए हाथ की ओर जितने फन्दे डालने हो, उसी हिसाब से काफी ऊन छोड कर पहला फन्दा डालना चाहिए।

(2)

उसके बाद एक सलाई से बाए हाथ की पहली अगुली पर बाईं ओर को ऊन का एक भाग चढा कर उसे बीच की अगुली से दबा लिया जाता है। फिर पहली अगुली से दाहिनी ओर बची ऊन के नीचे से सलाई निकाल कर दाहिने हाथ की, बीच की अगुली से सलाई पर ऊन को लपेट लिया जाता है (चित्र स० 2)।

(3)

(4)

तब बाए हाथ की पहली अगुली पर बने हुए ऊन के घेरे को सलाई की लपेट के ऊपर से निकाल कर गिराया जाता है और ऊन का सिरा खीच लिया जाता है। इस प्रकार दूसरा फन्दा बन जाता है (चित्र स० 3 और 4)। इसी तरह जितने फन्दे जरूरी हो, सलाई पर उतने फन्दे चढा लिए जाते है।

दो सलाइयो की मदद से फन्दे डालने के लिए पहले दोनो हाथो मे, एक-एक सलाई लेकर बाए हाथ की सलाई पर सरकने वाली गांठ लगाई जाती है। पर इस ढग से फन्दे

(5)

(6)

लगाने में बाई ओर ऊन छोडना आवश्यक नही है। गाठ लगा कर दाहिने हाथ की सलाई को बाए हाथ की सलाई के फन्दे मे डाला जाता है (चित्र स० 5)। फिर दाहिने हाथ से दाहिनी सलाई पर ऊन की एक लपेट लेकर (चित्र स० 6)। दाहिने हाथ से ही उस लपेट को फन्दे के नीचे से निकाल कर बाई सलाई पर चढा लिया जाता है (चित्र स० 7)।

(7)

तब दाहिने हाथ की सलाई बाहर निकाल कर दाहिने हाथ की तरफ के गोले की ओर ऊन का धागा खींच लेने से फन्दा पड जाता है। इसी प्रकार चाहे जितने फन्दे डाले जा सकते है।

फन्दे डालने के बाद फन्दे वाली सलाई को बाएं हाथ में और खाली सलाई को दाहिने हाथ मे लेकर बुनाई शुरू की जाती है। पहले दाहिने हाथ की सलाई को बाए हाथ की फन्दे वाली सलाई के पहले फन्दे के नीचे से नोक द्वारा डाल कर ऊपर की ओर निकालते हैं, और तब दाहिने हाथ से ऊन का धागा ऊपर करके दोनो सलाइयों की नोको के बीच में डाल लेते है। इसके बाद दाहिने हाथ की सलाई से बीच मे पड़ी हुई ऊन को धीरे-से आगे की ओर निकाल लेते है (चित्र सं० 8)। इस प्रकार खाली सलाई अथवा दाहिने हाथ की सलाई पर एक नया फन्दा पड़ जाता है। तब बाईं सलाई के जिस फन्दे मे से धागा लेकर दाहिनी सलाई पर नया फन्दा बनाया गया था, उस फन्दे को बाईं ओर सलाई से उतार लेते हैं। इस प्रकार एक-एक करके बाईं सलाई पर से सभी फन्दे दाहिनी सलाई पर नए-नए फन्दे बना कर ले लिए जाते है, और अन्त में बाईं सलाई खाली हो जाती है। इसके बाद खाली सलाई को दाहिने हाथ मे और फन्दों वाली सलाई को बाए हाथ मे लेकर पहले की तरह खाली सलाई पर नए फन्दे बनाए जाते हैं, और बुनाई होती जाती है। बुनते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि फन्दे न तो बहुत कसे हो, न बहुत ढीले, और सब फन्दे एक-से ही कसे या ढीले हो।

(8)

ऊपर बताए हुए ढंग को सीधे फन्दे की बुनाई कहते है। पर बुनाई का एक और ढग भी है, जिसको उल्टे फन्दो की बुनाई कहते है (चित्र सं० 9)। इसमें दाहिने हाथ की सलाई को बाएं हाथ की सलाई के पहले फन्दे मे ऊपर से नीचे की ओर डाल कर निकालते

(9)

है। फिर ऊन के धागे को दाहिनी सलाई के ऊपर से लेकर दोनो सलाइयो के बीच मे से निकाल कर वाई सलाई के फन्दे वाली ऊन के ऊपर लपेट लेते है। तव इस लपेट को दाहिने हाथ की सलाई द्वारा पुराने फन्दे के बीच से निकाल लेते है। इस प्रकार दाहिने हाथ की सलाई पर एक नया फन्दा वन जाता है। इसके बाद वाई सलाई वाले पुराने फन्दे को सरका कर गिरा देते है।

वुनाई खत्म हो जाने पर जितने फन्दे रह जाते है, उन्हे वद करना पडता है, नही तो धागा खिचते ही वुनाई खुलने लगती है। फन्दे वद करने के लिए पहले एक फन्दा वुन लेते है और उसे विना गिराए ही दूसरा फन्दा भी वुन लेते है। तव वाई सलाई से पहले वुने हुए फन्दे को दूसरे पर उतार कर नीचे गिर जाने देते है। इस प्रकार दाहिनी सलाई पर एक ही फन्दा रह जाता है। वार-वार ऐसे ही करते रहने पर जव वाई ओर की सलाई खाली हो जाती है और दाहिनी पर एक ही फन्दा रह जाता है, तव ऊन के धागे को दाहिनी सलाई पर वने फन्दे के वीच से निकाल कर खीच लेते है, और वुनाई वद हो जाती है (चित्र स० 10 और 11)।

ब्लाउज आदि के दोनो पल्लो को कन्धो पर से जोडने के वाद दोनो ओर के फन्दो को एक हाथ वुन कर वुनाई वद की जाती है। मोजे मे एडी के पास चौकोर वुनाई मे भी ऐसा ही किया जाता है। ऐसा करने के लिए वुनी जा रही पोशाक को

(10)

(11)

उन्हें उस ओर कर लेना चाहिए। फिर दोनों सलाइयों के फन्दे बराबर-बराबर लगा कर एक एक तीसरी सलाई से एक-एक फन्दा दोनों सलाइयों से लेकर उन्हें साथ-साथ बुनते जाना चाहिए। जब दो सलाइयों के फन्दों को बुन कर एक फन्दा तीसरी सलाई पर आ जाए, तब अगले दो फन्दे बुन लेने चाहिए। इसके बाद पहले फन्दे को बाईं सलाई की नोक द्वारा दूसरे फन्दे पर से उतार कर गिरा दिया जाता है। इसी प्रकार बन्द करते-करते जब एक फन्दा रह जाता है, तब ऊन के धागे के अन्तिम छोर को उस फन्दे में से निकाल कर सलाई को खींच लिया जाता है और धागे को खींच कर फन्दा कस दिया जाता है (चित्र सं० 12)।

बुनते-बुनते ऊन का धागा समाप्त हो जाने पर दूसरा धागा ऐसे जोड़ना चाहिए कि एक तो गांठ देखने में भद्दी न लगे, और दूसरे धोने में वह टूटे नहीं। इसके लिए जिन दो सिरों को जोड़ना होता है, उन्हें कई-कई इन्च तक लम्बाई में चीर लेते हैं और दोनों धागों की चारों फांकों को एक-दूसरे में मिला कर हल्का-सा बट लेते हैं। इस प्रकार बटी हुई और जुड़ी हुई ऊन से फिर बुनाई शुरू कर देते हैं।

(12)

ऊन और सलाइयों की किस्म बदल कर तरह-तरह के नमूने बनाए जा सकते हैं। किन्तु ज्यादातर नमूने बनावट की किस्मों में फर्क के कारण ही दिखाई देते हैं। बुनाई के कुछ नमूने ये हैं।

बनियाननुमा बुनाई : इसका उपयोग किसी भी पोशाक के बुनने में हो जाता है, किन्तु आम तौर से इसका उपयोग बनियान बुनने में ही किया जाता है। बनियाननुमा बुनाई बहुत आसान होती है। पहली सलाई में दो सीधे और दो उल्टे फन्दे बुनते हैं और दूसरी सलाई में एक फन्दा बिना बुने ही उतार लेते हैं। फिर दो सीधे और दो उल्टे बुनते हैं। फिर तीसरी सलाई में पहली की तरह और चौथी में दूसरी सलाई की तरह बुनते हैं। यही क्रम अन्त तक जारी रहता है, और चीज़ तैयार हो जाती है।

(13) (14)

(चित्र स० 13) । दो ओर से सीधी बुनाई । उसमें एक सलाई पूरी सीधी बुन लेते हैं और दूसरी उसी तरह पूरी उल्टी । इसी क्रम से बुनाई जारी रहती है । बुनाई खत्म हो जाने पर रंगीन ऊनी धागे और ऊन काढने की सूई से बुनी हुई चीज पर छोटे-छोटे फूल काढे जा सकते हैं (चित्र स० 14) ।

लहरदार बुनाई : इसमे पहली सलाई के नौ फन्दे सीधे और नौ उल्टे बुन लेते हैं । शुरू में उल्टी सलाई में एक फन्दा घटाते और सीधी सलाई मे बढाते जाते हैं । अन्त में जब एक ओर के पूरे नौ फन्दे उल्टे के स्थान पर सीधे या सीधे के स्थान पर उल्टे हो जाते हैं, तब बुनाई के पहले क्रम को उलट देते हैं । इस तरह उल्टे और सीधे फन्दो की लहरे पडती जाती हैं (चित्र स० 15) ।

छेद और गांठदार बुनाई : इसमें पहली सलाई में दो-दो फन्दे जोड के रूप मे बुन लेते हैं । फिर दूसरी सलाई मे सब फन्दे आगे ऊन करके सीधे बुनते हैं । यानी एक-एक फन्दा जो घटा था, इस बार बढ जाता है । तीसरी सलाई में सीधा बुन डालते हैं । इस तरह गाठ और छेद बन जाते हैं । अगर गाठें और छेद दूर-दूर रखने हो, तो इसके बाद एक सलाई पूरी उल्टी बुन कर तब फिर इस बुनाई को दोहरा लीजिए, या फिर तीसरी सलाई मे दोहराइए । यदि दूसरी बार नमूना डालते समय कुछ बदलना चाहें, तो पहला फन्दा सादा उतार कर फिर नमूना डाल दे, और फिर तीसरी बार नमूना डालते समय पहली बार की तरह बिना फन्दा उतारे ही नमूना डाल दें । इस प्रकार खडी गाठें और छेद भी बन सकते हैं (चित्र स० 16) ।

(15) (16)

फलियां डालना : अक्सर स्वेटर आदि की बुनाई में किनारी के रूप में फलिया डाली जाती हैं। आम तौर से यह बुनाई एक सीधा और एक उल्टा बुन कर तैयार होती है। एक सलाई सीधे बुन चुकने पर दूसरी सलाई में उल्टे बुनते जाते हैं और वस्त्र की लम्बाई के अनुसार किनारा (बार्डर) बना लेते हैं।

दो उल्टे, दो सीधे अथवा तीन या चार उल्टे-सीधे बुन कर भी फलिया बनाई जा सकती है। यदि आठ सीधे और दो उल्टे बुनते जाए, तो भी फलिया सुन्दर पड़ेगी। इसमे दूसरी तरफ से सीधे पर सीधा और उल्टे पर उल्टा बुनना चाहिए। यदि फलिया खड़ी न रख कर टेढ़ी डालनी हों, तो आठ सलाइया एक ओर पूरी सीधी और दूसरी ओर से पूरी उल्टी बुन कर, फिर सीधी तरफ से एक सलाई पूरी उल्टी बुन कर दूसरी ओर से पूरी सीधी बुनी जाएगी।

उभरी फलियो की बुनाई का नमूना दो लाइनो में पड़ेगा।

पहली लाइन मे दो फन्दे उल्टे बुने जाते हैं और अपनी तरफ से ऊन डालते हुए एक फन्दा सीधा बुनते हैं। इसके बाद एक लपेट देकर एक फन्दा और उल्टा बुनते हैं और दोबारा ऊन अपनी तरफ से डालते हुए एक फन्दा सीधा बुनते हैं। इसके बाद लपेट लेकर दुबारा दो फन्दे उल्टे बुनते हैं। इसी क्रम से बुनते जाते हैं।

दूसरी लाइन मे सीधे पर सीधे और उल्टे पर उल्टे बुनते हैं। नमूने के तीन फन्दो को एक साथ उल्टा बुन लेते है। उसी तरफ पट्टी पडती है। नमूना डालने से पहले और पीछे सलाई के इधर और उधर कुछ फन्दे सादे बुन लेते हैं (चित्र सं० 17)।

चौडी उभरी फलियों के लिए एक फन्दा उल्टा बुन लेते है। फिर ऊन आगे करके नीचे से बीच में सलाई डाल कर एक फन्दा छोड़ कर दूसरा फन्दा नीचे से सीधा बुनते है। फिर पहला फन्दा सीधा और उसके बाद एक फन्दा उल्टा बुनते हैं।

दूसरी सलाई मे पीछे से सीधे पर सीधा और उल्टे पर उल्टा बुनते है। बुनाई के दोनों फन्दे उल्टे बुनते है और इधर-उधर के सीधे (चित्र सं०18)।

(17) (18)

छेद वाली बुनाई : इसमे पहले तीन फन्दे सीधे बुनते है। तब ऊन को अपनी ओर करके एक फन्दा बिना बुने उतार लेते है। फिर ऊन ऊपर डालते हुए एक जोडा बुनते है। इसके बाद उतारे हुए फन्दे के अन्दर से जोडा बुना हुआ फन्दा उतार लेते है। तब अपनी तरफ फन्दा करके दोबारा तीन फन्दे सीधे बुनते है और तीन फन्दो मे बुनाई का नमूना डालते है। दूसरी सलाई पूरी-की-पूरी उल्टी बुनी जाती है। फिर बुनाई को तीसरी सलाई में पलट देते है। दोबारा यही क्रम फिर शुरू होता है। ऊन को पहले अपनी तरफ करके एक फन्दा बिना बुने उतार लेते है और ऊन को ऊपर से डालते हुए एक जोडा बुनते है। इसके बाद नए फन्दे को उतारे हुए फन्दे के अन्दर से उतारते है। तब अपनी ओर ऊन करके तीन सीधे बुनते है और तीन फन्दो पर बुनाई का नमूना डालते है। इसी क्रम से बुनते चलते है।

चोटी की बुनाई : इसमे पहले कुछ फन्दे सीधे बुन लेते है और एक उल्टा, फिर सामने ऊन करके दूसरा फन्दा नीचे से अन्दर करके सीधा बुनते है। इसके बाद पहला फन्दा ऊपर से सीधा बुनते है। इसी प्रकार सलाई पूरी बुन ली जाती है।

दूसरी सलाई मे उल्टे पर उल्टा और सीधे पर सीधा बुनते है। बुनाई के नमूने के फन्दो मे से दूसरे फन्दे पीछे, पहले उल्टे बुनिए। फिर पहला फन्दा भी उल्टा बुनिए। इस प्रकार चोटी पडती जाएगी। नमूने के इधर-उधर जितने चाहें, सीधे फन्दे बुन ले (चित्र स० 19 और 20)। स्वेटर बुनने के लिए जरूरत के अनुसार फन्दे डाल लीजिए। स्वेटर के आकार के अनुसार डेढ इच से चार इच तक का किनारा बुना जाता है। किनारा बुन लेने पर जरूरत के अनुसार दो-दो फन्दे दोनो ओर बढाए जा सकते है। अब जैसा भी स्वेटर बनाना हो, नमूना डाल कर बना लें। बच्चो के लिए जालीदार बुनाई नही करनी चाहिए। स्वेटर सदा नीचे से ही शुरू करना चाहिए। बगल से नीचे स्वेटर की जितनी लम्बाई रखनी है, उतनी बुन कर दोनो ओर से पहले चार, फिर तीन, फिर अगली सलाई मे दो फन्दे घटा देने चाहिए। मर्दो के स्वेटरो में तीन, दो और एक के हिसाब से फन्दे घटाए जा सकते हैं। गले की काट भी लगभग बगल की काट के साथ ही शुरू होती है। तिकोना गला बनाने के लिए बगल घटा चुकने पर सारे फन्दो के ठीक बीच से

(19) (20)

एक फन्दा घटा दे। अब तीन सलाई छोड कर दो-तीन वार दोनो ओर से एक-एक फन्दा घटाने का क्रम रखे। वाद मे सलाइयो का अन्तर कुछ अधिक करके घर घटाते जाइए। कन्धे जितने रखने हो, उतने ही फन्दे दोनो ओर वचा कर वगल की काट पूरी कर लीजिए। इसी प्रकार स्वेटर के आगे-पीछे के भाग वुन कर उन्हे कन्धो पर से जोड दीजिए। अब गले तथा वगलो के फन्दे उठा कर कसे हाथ से एक सीधा, एक उल्टा करके लगभग पौन इच की पट्टी वुन कर कस कर वंद कर दीजिए। स्वेटर को दोनो ओर से जोड दीजिए। यदि गला चौकोर करना हो, तो जितने फन्दे घटाने हो, वे सव एक ही वार मे घटा दीजिए, किन्तु उस अवस्था मे वगल की काट आधी वुन चुकने पर ही गला घटाया जाता है। अधिकतर महिलाओ को स्वेटर ही वुनना होता है। ब्लाउज वनाने के लिए अगले भाग को दो हिस्सो मे वुना जा सकता है और सामने पट्टी वुन कर चटपट वटन लगा कर उनके ऊपर फँसी वटन लगाए जा सकते है। आगे से खुला रखने पर पहनने मे सुविधा होती है। पूरी वाह का स्वेटर या ब्लाउज वनाना हो, तो वाहे अलग से वना कर जोडी जा सकती है। वाहो का आरम्भ कलाई से होता है। वहा किनारा वना चुकने के वाद धीरे-धीरे फन्दे वढाए जाते है और वगल के भाग तक आकर वगल की काट की तरह ही घटा देते है। विना वाहो के स्वेटर की वगल कुछ ज्यादा रहती है और पूरी वाहो के स्वेटर की कुछ कम होती है। आधी वाहो के ब्लाउज मे कुहनी के ऊपर से वाह वुनी जाती है।

नारी-लोक

(3) कढ़ाई का काम

सूई का काम जानना सवके लिए एक-सा जरूरी है। आजकल मशीनो द्वारा सिलाई की जाती है, फिर भी सूई का एक अपना स्थान है। पैवन्द लगाने मे, कपडो की मरम्मत करने मे, काज, वटन, रफू, कच्ची तथा पक्की तुरपाई, जरी, चिकन, कढ़ाई, इत्यादि मे सूई की ही मदद लेनी पड़ती है। मशीनो का प्रचार होते हुए भी हाथ

की सिलाई और जरी के कामो की कदर कम नही है। ब्लाउज के गले पर, सामने की पट्टी लगाने तथा साडी की किनारी आदि मे जहा मशीन द्वारा ठीक तरह से तुरपाई नही की जा सकती, वहा सूई का प्रयोग करना पडता है। सूई मे रगीन डोरे डाल कर अच्छे-से-अच्छे कपडो पर बडी सुन्दर कढाई की जाती है। इसके अलावा चुन्नी, पोत और मोतियो का बढिया काम भी सूई से ही किया जा सकता है।

कढाई मे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कढाई का नमूना कपड़े के अनुसार ही हो। छोटे रुमाल पर बहुत बडा फूल और पलग की चादर पर छोटे फूल नही जचेंगे। यह भी देखना आवश्यक है कि जिस रग के कपडे पर कढाई की जा रही है, उस पर कढाई मे इस्तेमाल किए जाने वाले रग फबते है या नही। कढाई मे पक्के रगो के डोरो का उपयोग करना चाहिए। कढाई करते समय सूई मे इतना लम्बा धागा नही डालना चाहिए कि धागे मे गाठे पड जाए। यह काम बहुत ही सधे हुए हाथो से होना चाहिए। कढाई न तो बहुत ढीली हो, न बहुत कसी। इससे धुलने मे आसानी होती है, और कढ़ाई खराब भी नही होने पाती। जब तक खूब अभ्यास न हो, फ्रेम पर कपड़ा चढाए बिना कढाई नही करनी चाहिए। सूई पकडते समय अगूठा नीचे और अगुलियां ऊपर रखना सही तरीका है और सबसे जरूरी है काढने की जगह पर काफी रोशनी का होना, नही तो आखे खराब हो जाने का अदेशा रहता है।

कढाई के लिए कुछ टाको का इस्तेमाल किया जाता है। बहुत-से नमूने सीधे टांके यानी सूई से थोडी-थोडी जगह छोड कर टाके लगाने से बन जाते है, लेकिन कुछ नमूनो मे लगातार एक तरकीब में धागे द्वारा किसी फूल की पखुडी अथवा पत्ती को भरना होता है। इसे सैटीन टाका कहते है (चित्र स० 21)।

(21)

(22) (23) (24)

जंजीर की तरह टांके लगा कर भी किनारे आदि वनाए जाते है (चित्र स० 22)। सुई द्वारा एक क्रम से पास-पास टांके लगाने पर एक सुन्दर नमूना वन जाता है (चित्र स० 23)। तिरछे टांके और बिल्कुल पास-पास बारीक टांके लगा कर भी कढाई की जाती है (चित्र स० 24)।

टांके लगाने के लिए सूई पर धागे के लगभग आठ-दस फेरे देकर सूई को अन्दाज से तनिक दूर रखें, उतना कि लपेट कपडे के ऊपर रह जाए और जितना चाहिए, उससे न तो ज्यादा जगह घिरे और न कम। फिर होशियारी से सूई को कपडे के नीचे की ओर निकाल लिया जाए। धागे के ऊपरी भाग की आखिरी लपेट पर टाका लगा दिया जाए। इस तरह गुलाब के अन्दर फूल वन सकते है। फिर उनके आसपास भराव-दार टाकों से पत्तिया आदि वनाई जा सकती है (चित्र सं० 25)।

सूई को एक जगह कपडे पर ऊपर की ओर निकाल लिया जाए। उसके आगे अडाकार धागे वना कर फिर उसी स्थान पर सूई ऊपर से नीचे डाली जाए। धागे के अडाकार सिरे को, सूई से नीचे निकाल कर तथा धागे को वीच मे लेकर ऊपर से नीचे ले जाकर टाक दिया जाए। इस तरह भी कढाई के सुन्दर नमूने वनाए जा सकते है (चित्र स० 26)।

(25) (26)

बटन के काज बनाने में जिग टांके का इस्तेमाल किया जाता है, वह भी कढाई में काम आता है (चित्र स० 27)।

(27) (28)

यदि बारीक कपडे पर रगीन धागे से निचली ओर से कढाई की जाए अथवा पेंसिल से खींचे हुए चित्र के भागो को भरा जाए, तो उसकी छाया सीधी ओर बहुत सुन्दर दिखाई देती है। इस प्रकार का काम इस्तिरी करने मे ठीक रहता है। इसे छाया-कार्य कहते हैं (चित्र स० 28)।

जिस रग का कपडा हो, उसी रग के धागे से जाली अथवा गुर्री बना कर जो काम किया जाता है, उसे चिकन का काम कहते हैं। लखनऊ की यह कला दूर-दूर तक प्रसिद्ध है (चित्र स० 29)।

(29)

सफेद या रगीन जाली पर सफेद अथवा रंगीन धागों से सहज ही सुन्दर नमूने वनाए जा सकते हैं। यह काम वड़ी जल्दी होता है। दूसरी सभी कढाइयो मे पहले कपडे पर पेंसिल से नमूना वनाना पडता है या कार्वन पेपर आदि रख कर नमूने को उतारना पडता है। लेकिन जाली पर क्रासस्टिच और तारकशी के काम मे केवल धागे गिन कर सरलता से काम हो जाता है (चित्र स० 30)। कपडे पर धागे गिन कर ठीक एक-दूसरे को काटते हुए दो धागे वनाने को क्रास कहते हैं। इन्ही क्रासो (अथवा काटो) का पूरा नमूना बनाना क्रासस्टिच का काम कहलाता है (चित्र स० 31)।

(30)

कपडे से धागे गिन कर धागे निकाल लेते हैं। फिर उसमे खाली हुई जगह के खडे धागो को लेकर जो कढाई की जाती है, उसे तारकशी या वीडिग कहते हैं। प्राय मेजपोश या रुमाल आदि के किनारो पर या जहा कही भी कपडे का किनारा मोडा जाए, वीडिग वड़ी सुन्दर लगती है। इसके वाद कई तरह के नमूने होते हैं (चित्र स० 32)। वीडिग के अलावा भी धागे निकाल कर तरह-तरह के काम किए जाते हैं। इसके लिए कभी पडे और और कभी खडे धागे निकाले जाते हैं (चित्र स० 33)।

(32) (33)

बच्चों की फ्राक आदि पर सूई से साधारण टांके लगा कर झालर आदि बनाई जाती है। यह झालर बहुत सुन्दर लगती है। (चित्र नं० 34)। डोरी की सहायता से बटन, काज, पट्टी, नाम के अक्षर या गिलाफ, आदि सूई की सहायता से उस पर बनाए जा सकते हैं।

गिलाफ में चारों तरफ दूसरे कपड़े की मगजी या गोट लगा कर इसे सुन्दर और मजबूत बनाया जा सकता है। मेजपोश आदि भी इसी ढंग से बनाए जा सकते हैं।

(34)

फ्राक अथवा ब्लाउज में चुन्नट डालने के लिए स्मोकिंग का काम किया जाता है। इस काम के लिए पहले यह अन्दाज कर लेना चाहिए कि कितना कपड़ा कम करना है। उतने कपडे की छोटी-छोटी चुन्नटे सूई से बना लेनी चाहिए। हर लाइन का धागा एक ओर छोडते जाना चाहिए। फिर जितनी चौडाई मे काम करना हो, उतनी जगह मे डोरे (कच्चे टाके) डाल कर उन सबके सिरो की ओर बाध लेना चाहिए, ताकि वे निकल न सके। फिर एक-एक लाइन को लेकर उनमे शुरू से सूई ऊपर-नीचे करते हुए टाके लगाने चाहिए। धीरे-धीरे नमूना डालना चाहिए। पूरा नमूना बन जाने पर कच्चे धागो के सिरो की गाठ खोल कर गाठो की ओर से उन्हे खीच कर अलग कर देना चाहिए। इस तरह सुन्दर नमूना बन जाएगा।

रगो के ठीक चुनाव से तरह-तरह की कढाई की जा सकती है। कढाई का काम धीरज और सहूलियत से करना चाहिए और यह ध्यान मे रखना चाहिए कि काम सुघडता से हो। गाठे ठीक लगानी चाहिए और धागो को तोड कर इधर-उधर लटकते हुए नही छोड देना चाहिए। बचे हुए सिरो को सिलाई या कढाई के भीतर ही खपा देना चाहिए, ताकि कढाई पीछे से भी गंदी और बेढगी न दिखाई दे।

M27DPD/62—7,500—21-5-65—Sec IV—GIPF